ॐ

तारादेवी पवैया ग्रंथमाला का उन्चालीसवा पुष्प

श्री समयसार कलश विधान

राजमल पवैया

सपादक

श्री डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री नीमच

अध्यक्ष अ भा दि. जैन विद्वत परिषद

प्रकाशक

भरत पवैया एम. काम. एल. एल. बी.

सयोजक

तारादेवी पवैया ग्रंथमाला

४४ इब्राहीमपुरा भोपाल - ४६२ 00१

प्रथम आवृत्ति	पर्यूषण पर्व वीर सवत् २५२२ सितम्बर १९९६	न्योछावर ३५/-

ॐ

पच परमागम विधानो के पश्चात् गौरवमयी अध्यात्म रस से ओत प्रोत **समयसार कलश विधान** सगर्व आपके कर कमलो मे प्रस्तुत है

भावी प्रकाशन

१. **श्री पद्मनन्दि श्रावकाचार विधान**
२. **श्री धर्मोपदेशामृत विधान**
३. **श्री समाधि शतक विधान**
४. **श्री कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा विधान**
५. **कसाय पाहुड विधान**
६. **तत्त्वानुशासन विधान**
७. **इष्टोपदेश विधान**

अन्य विधान लिखने के लिए आपके सुझाव सादर आमन्त्रित है ।

दूरभाष ५३१३०९ | तारादेवी पवैया प्रकाशन भोपाल | ४४ इब्राहीमपुरा ४६२००१

ॐ

आचार्य कुन्द कुन्द कृत समयसार के मर्मज्ञ आचार्य अमृत चंद्र सूरि रचित आत्म ख्याति टीका एवं समयसार कलश पर आधारित

निज समयसार दर्शन का उपाय
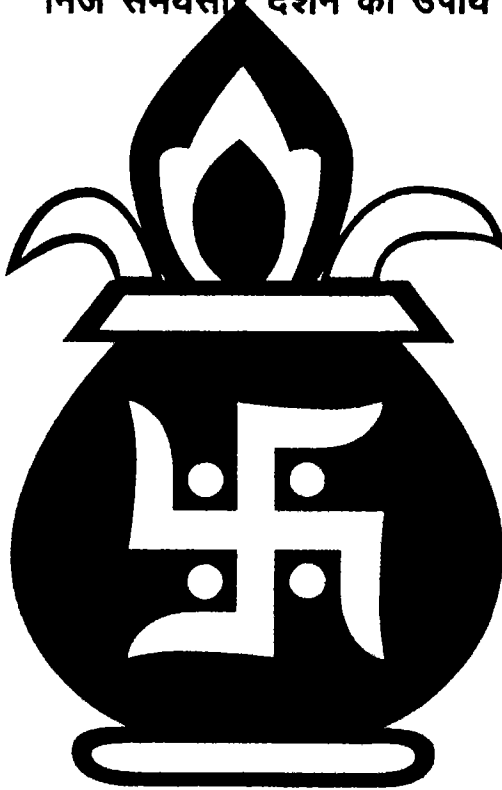
श्री समयसार कलश विधान

ॐ

श्री समयसार कलश विधान

विषय सूची

यह निकृष्ट पर परिणति तुझको, नर्क निगोद बताएगी ।
सर्वोत्कृष्ट स्वय की परिणति तुझे मोक्ष ले जाएगी ॥

प्रकाशकीय

प्रात स्मरणीय आचार्य कुन्द कुन्द के परम श्रेष्ठ परमागम समयसार विधान के बाद आचार्य अमृत चद्र सूरि के समयसार कलश पर आधारित श्री समयसार कलश विधान को प्रकाशित करते हुए हमारे हर्ष का पारावार नही है इसे लिखने के लिए सोनागिर मे रत्नकरड श्रावकाचार विधान की महान सफलता से प्रसन्न होकर जन समुदाय ने समयसार कलश विधान लिखने का आश्वासन लेखक से लिया था, फलस्वरूप अल्पावधि मे यह तैयार हो गया और छप भी गया आपके करकमलो मे यह विधान प्रस्तुत है अपनी महान गरिमा के साथ। विधान के प्रत्येक पृष्ठ पर लेखक द्वारा रचित सूक्तियॉ देकर अवकाश के क्षणो मे चिन्तन एव मनन की लाभदायक सामग्री दी गई है।

कपोजिग के लिए शुभ श्री आफ्सेट प्रोसेसर के श्री नीरज जैन धन्यवाद के पात्र हैं। सुन्दर प्रिटिग के लिए अजना प्रिन्टर्स के श्री योगेश सिंहल के हम आभारी हैं। ग्रथमाला के सरक्षको के भी उनके सहयोग के लिए हम कृतज्ञ हैं। यह विधान सभी को मगलमय हो इसी पवित्र भावना के साथ। विगत भूलो के लिए क्षमायाचना सहित।

इत्यलम् ।

पयूर्षण पर्व
वीर सवत् २५२२
सितबर १९९६
दूरभाष ५३१३०९

भरत पवैया
सयोजक
तारादेवी पवैया ग्रथमाला
४४ इब्राहीमपुरा
भोपाल-४६२ ००१

मैं निर्विकल्प हूँ शुद्ध बुद्ध, इतना तो अगीकार करो ।
शुद्धपयोग मय परम पारिणामिक स्वभाव स्वीकार करो॥

ॐ

तारादेवी पवैया ग्रंथमाला

संरक्षक सूची

प्रधान संरक्षक

११०१/- परम आदरणीय महामहिम राष्ट्रपति डा. शकर दयाल जी शर्मा राष्ट्रपति भवन नई दिल्ली

११०१/- भारत की प्रथम महिला परम आदरणीय श्री सौ. विमला शर्मा ध प. राष्ट्रपति डा शकर दयाल जी शर्मा, राष्ट्रपति भवन नई दिल्ली

सरक्षक

२१,०००/- श्री स्व माते श्वरी सुवा बाई ध. प स्व रतन लाल जी पहाडिया पीसागन की पुण्य स्मृति में श्री रिखब चद जी नेमी चद्र जी पहाड़िया परिवार

१०,०००/- श्री दि जैन मुमुक्षु मडल, झबेरी बाजार, बबई

५,०००/- श्री पूज्य कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली

११०१/- श्री डा. गौरीशकरजी शास्त्री एम.ए (ट्रिपल) सप्ततीर्थ पी एच डी. अध्यक्ष म.प्र.स्वतत्रता सग्राम सैनिक सघ भोपाल

११०१/- श्री सौ. डा. राजकुमारी देवी ध प. श्री डा. गौरीशकरजी शास्त्री भोपाल

११०१/- बाल. ब्र. पद्मश्री सुमतिबेन शहा सस्थापक श्राविका सस्थान सोलापुर द्वारा बा.ब्र. विद्युल्लता शहा सोलापुर

२५००/- स्व. बालचन्दजी, अशोक नगर द्वारा चौधरी फूलचन्दजी, बबई।

१६००/- श्री इन्द्रध्वज मण्डल विधान एव आध्यात्मिक शिक्षण शिविर, तलोद

११००/- श्रीमती बसन्ती देवी धर्मपत्नी स्व. डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन, भिण्ड

११००/- कु, लिटिल (पल्लवी) सुपुत्री पूर्णिमा धर्मपत्नी शैलेन्द्र कुमार जैन, भिण्ड

११००/- श्रीमती सुहागबाई धर्मपत्नी बदामीलाल जैन, भोपाल

११००/- श्री मोहनलाल जैन म. प्र. ट्रासपोर्ट, भोपाल

५०,००५/-

जो स्वरूप वेत्ता होता है, वही भाव श्रुत जल पीता है ।
सर्व द्रव्य गुण पर्यायो को, जान अमर जीवन जीता है ॥

११००/-	श्री हुकुमचन्द सुमतप्रकाश जैन, भोपाल
११००/-	श्रीमती सुशील शास्त्री धर्मपत्नी श्री के. शास्त्री, नई दिल्ली
११००/-	सौ. सुशीलादेवी धर्मपत्नी ताराचन्द जैन, इटावा
११००/-	श्री जैन युवा फेडरेशन मुरार से प्राप्त सम्मान राशि
११००/-	सौ. शशिप्रभा धर्मपत्नी महेशचन्द जैन, फिरोजाबाद
११००/-	सौ. प्यारीबाई धर्मपत्नी बाबूलाल जी विनोद, भोपाल
११००/-	स्व परमेश्वरी देवी धर्मपत्नी सत्यप्रकाशजी गुप्ता, भोपाल
११००/-	सौ. स्नेहलता धर्मपत्नी चन्द्रप्रकाश सोनी, इन्दौर
११००/-	सौ रानी देवी धर्मपत्नी सुरेशचन्द पाड्या, इन्दौर
११००/-	श्री दि. जैन महिला मडल, भोपाल से प्राप्त सम्मान राशि
१०००/-	श्री दि. जैन स्वाध्याय मदिर, राजकोट
१०००/-	देवलाली कवि सम्मेलन से प्राप्त सम्मान राशि
१०००/-	सौ. निर्मला धर्मपत्नी भरत पवैया, भोपाल
१०००/-	श्री भरत पवैया, भोपाल
१०००/-	श्री उपेन्द्र कुमार नगेन्द्र कुमार पवैया, भोपाल
१०००/-	श्री चौधरी फूलचन्दजी, बबई
१०००/-	श्री कुन्दकुन्द कहान स्मृति सभागृह, आगरा
१०००/-	श्री उम्मेदमल कमलकुमारजी बड़जात्या, बबई
१०००/-	श्री हुकुमचन्दजी सुमेरचन्दजी, अशोकनगर
१०००/-	सौ. राजबाई धर्मपत्नी राजमल जी लीडर, भोपाल
१०००/-	सौ. सुधा धर्मपत्नी महेन्द्रकुमार जी अलकार लाज, भोपाल
१०००/-	सौ. मधु धर्मपत्नी जितेन्द्र कुमार जी सराफ, भोपाल
११०१/-	सौ. कमलादेवी धर्मपत्नी खेमचन्द जैन सराफ, भिण्ड
११०१/-	सौ. मधु धर्मपत्नी डा. सत्यप्रकाश जैन, नई दिल्ली
५५५५/-	श्री परमागम दि. जैन मदिर ट्रस्ट, सोनागिर
११००/-	सौ. जिनेन्द्रमाला धर्मपत्नी हेमचन्दजी जैन, सहारनपुर
११००/-	सौ. श्री कान्तादेवी ध. प. शान्तिप्रसाद जैन, दिल्ली (राजवैद्य एड सस)
११००/-	सौ. रतनबाई धर्मपत्नी श्री सोहनलालजी जयपुर प्रिन्टर्स, जयपुर
११००/-	सौ. वैजयती देवी धर्मपत्नी बाबूलालजी पाडया लाला परिवार, इन्दौर

धर्मध्यान का क्रिया आचरण, अगर प्रशसा के हित है ।
तो अज्ञानी जन को ठगने, मे तू हुआ दत्त चित है ॥

११००/-	पूज्य कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली
२५०१/-	सौ. लाभुबेन ध. प. श्री अनिल कामदार, दादर
१०००१/-	पू कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली
११०१/-	सौ माणिकबाई धर्मपत्नी फूलचदजी झाझरी, उज्जैन
११०१/-	सौ सुनीता ध. प विनय कुमार जी जैन ज्वेलर्स, देहरादून
११००/-	सौ अनीता ध. प. मोहित कुमार जी मेरठ
११००/-	मौ गजराबाई ध प चौधरी फूलचद्रजी, बबई
११००/-	सौ. स्व. तुलसाबाई ध प. स्व बालचद्रजी अशोक नगर
११०१/-	सौ प्रेमबाई ध. प. शान्तिलाल जी खिमलासा
११०१/-	सौ स्नेहलता ध. प. देवेन्द्रकुमार जी बडकुल अरविन्द कटपीस, भोपाल
११०१/-	सौ शान्तिबाई ध प श्री श्रीकमलजी एडवोकेट, भोपाल
११०१/-	सौ. रेशमबाई ध. प. श्रीछगनलाल जी मदन मेडिको, भोपाल
११०१/-	श्रीमती जैनमती ध प स्व मदनलालजी भोपाल
११०१/-	सौ कमलाबाई ध प. श्री माणिकचद जी पाटोदी, लुहारदा
११०१/-	सौ. तेजकुवर बाई ध. प. श्री उम्मेदमल जी बड़जात्या दादर, बबई
१००१/-	श्री दि. जैन मुमुक्षु मडल नवरग पुरा अहमदाबाद
११०१/-	सौ. कोकिला बेन ध. प. श्री हिम्मतलाल शाह कहान नगर दादर, बबई
११०१/-	श्री सुरेशचदजी सुनीलकुमारजी, बेंगलोर
१०००/-	श्री पूज्य कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली
११०१/-	सौ. सविता जैन एम. ए. ध प. श्री उपेन्द्रकुमार पवैया, भोपाल
११०१/-	सौ. सुशीलादेवी ध प श्री चद्र जैन सुभाष कटपीस, भोपाल
१००१/-	श्री सौ. चद्रप्रभा, ध प. डा. प्रेमचदजी जैन ४ अरविन्द मार्ग, देहरादून
११०१/-	श्री आचार्य कुन्दकुन्द साहित्य प्रकाशन समिति, गुना
११०१/-	सौ. शान्तिदेवी ध. प श्री बाबूलालजी (बाबूलाल प्रकाश चद्र), गुना
११०१/-	सौ. उषादेवी ध. प. श्री राजकुमारजी (बाबूलाल प्रकाश चद्र), गुना
११०१/-	सौ. अशरफीदेवी ध. प. ज्ञानचंदजी धरनावादवाले, गुना
११०१/-	सौ. पद्मादेवी ध. प. श्री डा. प्रेमचद जी जैन, गुना
११०१/-	सौ. धनकुमारजी विजयकुमारजी, गुना

जीवन दृश्य बदल जाएगा, जब देखेगा निज की ओर।
अघ के बादल विघट जाएगे हो जाएगी समकित भोर ॥

११०१/-	सौ. आशादेवी ध. प. अरविन्द कुमारजी, फिरोजाबाद
११०१/-	सौ. श्री ज्ञानचंदजी मनोज कटपीस, भोपाल
११०१/-	सौ. रजनीदेवी ध. प. श्री नरेन्द्र कुमारजी जियाजी सूटिंग, ग्वालियर
२००१/-	सौ. मजुला बेन ध प श्री मणिलालजी, दादर
११०१/-	स्व. सुआबाई मातुश्री रिखवचद्र नेमीचद पहाडिया, पीसागन (अजमेर)
११०१/-	सौ. तुलसाबाई ध. प श्री नवलचदजी जैन, भोपाल
११०१/-	सौ रत्नाबाई ध प श्री सरदारमलजी बर्फी हाउस, भोपाल
११०१/-	श्री नवल कुमारी ध. प. स्व बाबूलालजी मोगानी, भोपाल
११०१/-	श्रीमती कमलश्री बाई ध प. स्व डालचदजी जैन, भोपाल
११०१/-	श्री परमागम मदिर ट्रस्ट, सोनागिर
११०१/-	श्री दि. जैन मुमुक्षु मडल, हिम्मत नगर
११०१/-	सौ मजुला ध प शान्तिलाल गाधी, मैनेजर, सेन्ट्रलबैंक, जोरहाट
११०१/-	श्रीमती सुखवती बाई ध.प. स्व. श्री बाबूलाल जी ठेकेदार, भोपाल
११०१/-	स्व श्रीमतीबाई ध. प कालूरामजी, सत्यम टेक्सटाइल, भोपाल
११०१/-	सौ. शकुन्तलादेवी ध. प. रतनलाल श्री सोगानी, भोपाल
२५००/-	सौ रमाबेन धर्मपत्नी मुमन भाई माणेकचद्र दोशी, राजकोट
११००/-	सौ. मीनादेवी एडवोकेट धर्मपत्नी डा. राजेन्द्र भारिल्ल, भोपाल
१०००/-	श्रीमती पुष्पा पाटोदी, मल्हारगज, इन्दौर
११००/-	श्री जेठाभाई एच. दोशी सेबिन ब्रदर्स, सिकदराबाद
११००/-	सौ. सुशीलाबाई धर्मपत्नी लक्ष्मीचद जैन विकास आटो, भोपाल
११००/-	सौ. मीना जैन धर्मपत्नी राजकुमार जैन सेन्ट्रल इन्डिया बोर्ड एन्ड पेपर मिल, भोपाल
११००/-	सौ. रजनी जैन धर्मपत्नी अरविन्द कुमार जैन अनुराग ट्रेडर्स, भोपाल
१०००/-	स्व. गुलाब बाई धर्मपत्नी स्व. पातीराम जी जैन, भोपाल
११००/-	सौ. शान्तिदेवी धर्मपत्नी श्री नरेन्द्र कुमार आदर्श स्टील, झासी
१०००/-	श्रीमती मातेश्वेरी चौधरी मनोज कुमार जैन माटुन्गा, बबई
११००/-	श्री कोकिलाबेन पकजकुमार पारिख दादर, बबई
११००/-	स्व. श्री ककुबेन रिखवदास जी द्वारा शान्तिलालजी दादर
११००/-	श्री हीराभाई चिमनलाल शाह प्रदीप सेल्स पाय धुनी बबई

जिस दिन तू मिथ्यात्व भाव को कर देगा पूरा विध्वस ।
प्रकट स्वरूपाचरण करेगा पाकर पूर्ण ज्ञान का अश ॥

११००/-	श्रीमती दक्षाबेन विनयदक्ष चेरिटेबल ट्रस्ट दादर, बबई
१०००/-	सौ. फैन्सीबाई धर्मपत्नी सेसमलजी कात्रज, पूना
११००/-	स्व. सौ. मिश्रीबाई धर्मपत्नी राजमल जी फर्म एस रतनलाल, भोपाल
११००/-	सौं हीरामणी धर्मपत्नी श्री मागीलालजी जैन , भोपाल
११०१/-	सौ पूनम जैन धर्मपत्नी श्री देवेन्द्र कुमार जैन, सहारनपुर
२१०१/-	श्री पडित कैलाशचद जी कुन्द-कुन्द कहान स्वाध्यायमदिर देहरादून
११०१/-	सौ मनोरमादेवी धर्मपत्नी श्री जयकुमार जी बज कोहेफिजा, भोपाल
११०१/-	श्री भवुतमलजी भडारी, बेंगलोर
११०१/-	श्री फूलचदजी विमलचद जी झाझरी, उज्जैन
११११११/-	स्व श्री जयकुमार जी की स्मृति में मेसर्स मनीराम मुशी लाल उद्योग समूह, फिरोजाबाद
११०१/-	सौ अनीता धर्मपत्नी राजकुमार जी, भोपाल
११०१/-	सौ मीनादेवी धर्मपत्नी चन्द्रप्रकाश जी, इटावा
११०१/-	सौ. मोतीरानी धर्मपत्नी कैलाश चद्र जी , भिण्ड
११०१/-	सौ ब्रजेश धर्मपत्नी अभिनदन प्रसाद जी, सहारनपुर
२१०१/-	सौ. रत्नप्रभा धर्मपत्नी मोतीचदजी लुहाडिया, जोधपुर
५१११/-	श्री केशरीचद जी पूनमचद जी सेठी ट्रस्ट, नई दिल्ली
११०१/-	सौ. मीनादेवी धर्मपत्नी केशवदेव जी, कानपुर
११०१/-	श्री श्यामलाल जी विजयर्गीय पी. वी. ज्वेलर्स, ग्वालियर
११०१/-	सौ. मधु धर्मपत्नी विनोद कुमार जी, ग्वालियर
११०१/-	स्व. कैलाशीबाई धर्मपत्नी स्व रतनचद जी, ग्वालियर
११०१/-	स्व रत्नादेवी धर्मपत्नी स्व. छुन्नामल जी , ग्वालियर
११०१/-	सौ. अरूणा धर्मपत्नी निर्मलचद जी, ग्वालियर
११०१/-	स्व. चमेलीदेवी धर्मपत्नी निर्मल कुमारजी एडवोकेट, ग्वालियर
११०१/-	स्व. रघुवरदयाल जी की स्मृति में खेमचद जी सत्यप्रकाश जी, भिण्ड
११०१/-	चि. अकुर पुत्र सौ. सुधा ध.प.सुनील कुमार जैन, भिण्ड
११०१/-	सौ. मायादेवी धर्मपत्नी सुभाष कुमार जी, भिण्ड
११०१/-	सौ. विमलादेवी धर्मपत्नी उत्तम चद जी बरोही वाले , भिण्ड
११०१/-	स्व श्री मूलचद भाई जैचद भाई भू. पूर्व मत्री तारगा जी

जिनमत की परिपाटी मे पहले सम्यक्दर्शन होता ।
फिर स्वशक्ति अनुसार जीवको व्रत सयम तप धन होता॥

११०१/-	श्री दोसी बसतलाल जी मूलचद जी , बबई
११०१/-	श्री कनुभाई एम. दोसी, बबई
११०१/-	श्रीमती लीलावती बेन छोटालाल मेहता, बबई
११०१/-	सौ निर्मलादेवी धर्मपत्नी छोटेलालजी एन. पाण्डे, बबई
११०१/-	श्री शान्तिलाल जी रिखवदास जी दादर, बबई
११११११/-	स्व. मातेश्वरी सुवाबाई धर्मपत्नी स्व. रतनलालजी, पीसागन की स्मृति में श्री रिखवचदजी नेमीचदजी पहाड़िया परिवार द्वारा
११०१/-	सौ. कृष्ण देवी ध प. श्री पदम चद्र जी आगरा
११०१/-	कुन्द कुन्द स्मृति भवन आगरा
२५०१/-	श्री शान्तिनाथ दि. जैन ट्रस्ट केकडी द्वारा श्री मोहनलाल कटारिया
११०१/-	श्री दि. जैन समाज, भीलवाडा
११०१/-	श्री रामस्वरूपजी महावीर प्रसाद जी अग्रवाल, केकडी
११०१/-	श्री लादूराम श्री ताराचदजी अग्रवाल, केकडी
२१०१/-	सौ. चमेली देवी धर्मपत्नी शिखरचद जी सर्राफ , विदिशा
११०१/-	सौ. सुषमादेवी धर्मपत्नी श्री डा. आर के. जैन, विदिशा
११०१/-	श्रीमती बदामी बाई धर्मपत्नी स्व. श्री बाबूलाल जी (५०१), भोपाल
११०१/-	स्व. शक्कर बाई धर्मपत्नी स्व. बिहारीलाल जी, बैरसिया
११०१/-	स्व. लक्ष्मीबाई धर्मपत्नी स्व. बशीलाल जी, भोपाल
११०१/-	सौ. रतनबाई ध.प. नन्नूमल जी भडारी, भोपाल
११०१/-	सुश्री बा .ब. पुष्पा बेन झाझरी, उज्जैन
११०१/-	श्रीमती ताराबाई झाझरी. ध.प. स्व. श्री राजमल जी झाझरी, गौतमपुरा
५००१/-	श्री दिगम्बर जैन मदिर, लशकरी गोठ, गोराकुन्ड, इन्दौर
११०१/-	सौ. चदन बाला ध.प. श्री प्रकाशचद जी भडारी, भोपाल
११०१/-	सौ. राजकुमारी ध.प. श्री महावीर प्रसादजी सरावगी, कलकत्ता
११०१/-	सौ. स्नेह प्रभा ध.प. श्री सुगन चद जी मानोरिया, अशोकनगर
२५०१/-	श्री भरतभाई खेमचद जेठालाल शेठ राजकोट
११०१/-	ब्र. सुशीला श्री, ब्र. कचनबेन, ब्र. पुष्पा बेन, सोनगढ
११०१/-	सौ. विमलादेवी ध.प. श्री बाबूलालजी, हाटपीपलावाले, भोपाल
११०१/-	श्रीमती विमलादेवी ध.प. स्व. श्री भगवानदासजी भडारी, गजबासोदा

दिव्यध्वनि की अविच्छिन्न धारा मे आती है यह बात ।
ध्रुव स्वभाव आश्रय से होता है प्रारम्भ नवीन प्रभात ॥

११०१/-	स्व कुमारी शिखा सुपुत्री श्री नीलकमल बागमलजी पत्रैया, भोपाल
११०१/-	सौ स्नेहलता ध.प. श्री जैनबहादुर जैन, कानपुर
२१०१/-	सौ. कन्नबाई ध.प. श्री सौभाग्यमलजी पाटनी, बबई
२५०१/-	श्री ताराबाई मातेश्वरी श्री मागीलालजी पदमचदजी पहाड़िया, इन्दौर
११०१/-	सौ. शशिबाला ध.प. श्री सतीश कुमारजी सुपुत्र श्री पन्नालालजी, भोपाल
११०१/-	श्री आनद कुमारजी देवेन्द्र कुमारजी पाटनी, इन्दौर
११०१/-	सौ. प्रभादेवी ध प. श्री गुलाबचदजी जैन, बेगमगज
११०१/-	श्री ममरतबेन ध.प. श्री चुन्नीलाल रायचद मेहता, फतेपुर
११०१/-	श्री ताराबेन ध प. स्व. धर्मरत्न बाबुभाई चुन्नीलाल मेहता, फतेपुर
११०१/-	कुमारी समता सुपुत्री श्री आशादेवी पाड्या सुपुत्री स्व. श्री किशनलालजी पाड्या, इन्दौर
११०१/-	स्व. श्री राजकृष्णजी जैन (श्री प्रेमचद्र जी जैन के पिता जी) दिल्ली
११०१/-	स्व. श्रीमती कृष्णादेवी ध. प. श्री स्व राजकृष्ण जी
११०१/-	स्व. श्रीमती पदमावती ध. प. श्री प्रेमचन्द्रजी जैन अहिसा मदिर (दिल्ली)
११०१/-	सौ. श्रीमती चन्द्रा ध प. श्री उमेश चन्द्र जी जैन द्वारा श्री सजीवकुमार राजीव कुमारजी, भोपाल.
११०१/-	सौ पाना बाई ध. प. श्री मोहल लाल जी सेठी गौहाटी (आसाम)
३००१/-	श्रीमती रत्नम्मा देवी ध. प. स्व. श्री रत्न वर्मा हैगडे मातेश्वरी राजर्षि श्री वीरेन्द्र हैग्गडे धर्माधिकारी धर्मस्थल (कर्नाटक)
१५००/-	आकाशवाणी एव दूरदर्शन केन्द्र, भोपाल से प्राप्त पारिश्रमिक
११०१/-	सौ. कलाबेन श्री हसमुख भाई वोरा, बम्बई
११०१/-	श्री स्वर्गीय जसवती बेन श्री प्रवीण भाई वोरा, बम्बई
११०१/-	सौ. पुष्पाबेन कान्तिभाई मोटाणी, बम्बई
११०१/-	पूज्य श्री स्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली ६४ ऋद्धि विधान के समय कवि सम्मेलन में
११०१/-	सौ. वसुमति बेन श्री मुकुन्दभाई खारा, बम्बई
११०१/-	श्री कटोरी बाई ध.प. स्व. जयकुमार जी जैन मातेश्वरी ब्रिगेडियर श्री एम के.जैन, दिल्ली

जीवन तरु तो आयु कर्म के बल पर ही हरियाता है ।
जब यह आयु पूर्ण होती है तो पल मे मुरझाता है ॥

११०१/-	स्वर्गीय पानाबाई ध.प. सत्यनारायण सरावगी मातेश्वरी राजूभाई, कानपुर
११०१/-	सौ. राजकुमारी ध.प. श्री कोमलचन्दजी गोधा जयपुर
२१०१/	सौ. रतनबाई ध.प. श्री सोहनलालजी जयपुर प्रिन्टर्स, जयपुर
११०१/-	प्रदीप सेल्स कारपोरेशन पायधुनी, बम्बई
११०१/-	सौ.कमलाबेन हिराभाई शाह, प्रदीप सेल्स पायधुनी,बम्बई
११०१/-	श्री दिलीप भाई प्रदीप सेल्स कार्पोरेशन, बम्बई
११००/-	प्रदीपभाई प्रदीप सेल्स कार्पोरेशन पायधुनी, बम्बई
११०१/-	सौ कुसुमबाई पाटनी ध.प. श्री शान्तिलालजी पाटनी, छिदवाडा
११०१/-	सौ मजु पाटनी ध.प श्री सतोषकुमार पाटनी बासिम
११०१/-	स्व कुसुम देवी ध.प. स्व श्री कोमल चद जी की स्मृति में अजय राज जी जैन भोपाल
११०१/-	सौ. इन्द्राणी देवी ध. प. श्री बागमल जी पवैया भोपाल
११०१/-	सौ. शकुन्तला ध. प. श्री धीरेन्द्र कुमार जी जैन भोपाल
११०१/-	स्व. पुतली बाई ध. प. स्व दीपचद जी पाड्या (अतुल पब्लिसिटी भोपाल)
११०१/-	श्री झकारी भाई खेमराज बाफना चेरीटेबिल ट्रस्ट खैरागढ
१११०१/-	सौ कमल प्रभा ध. प श्री मानिक चद जी लुहाडिया नई दिल्ली
१११०१/-	स्व. श्री उमरावदेवी ध. प. श्री जगनमल जी सेठी इम्फाल
११०१/-	सौ. आभा देवी ध. प प्रकाश चद जी जैन रायपुर
११०१/-	सौ. कमला देवी ध. प. श्री राधेश्याम जी अग्रवाल भोपाल
११०१/-	श्री अमर सिंह जी अमरेश समस्तीपुर (बिहार)
२५०१/-	श्रीमती रतन बाई ध. प. स्व. श्री केशरी मल जी पाड्या इन्दौर
११०१/-	सौ. मधु ध. प. श्री वीरेन्द्र कुमार जी जैन नई दिल्ली
२१०१/-	जैन जाग्रति महिला मडल गुना (म. प्र.)
११०१/-	सौ. ज्योति ध. प. श्री सुरेश चद जी जैन पारस स्टोर्स गुना
११०१/-	श्री शकुन्तला देवी ध प. स्व. श्री दरबारी लाल जी जैन दिल्ली
११०१/-	श्री सौ. रोहिणी देवी ध.प.श्री मनोहरजी श्री धनचद्रजी अथणे कोल्हापुर
११०१/-	श्री शान्तिदेवी ध.प. स्व. पाडे मूलचदजी जैन इटावा मातेश्वरी श्री वीरेन्द्र कुमार , सिलचर नरेन्द्र कुमार जी भोपाल
११०१/-	सौ. सुमनेश ध.प. श्री वीरेन्द्रकुमार जैन सिलचर (आसाम)
११००१/-	श्रीमत सेठ शितावराय जी लक्ष्मी चद जी साहित्योद्धारक फड विदिशा

जब निज स्वभाव परिणित की धारा अजस्र बहती है ।
अन्तर्मन मे सिद्धो की पावन गरिमा रहती है ॥

११०१/-	श्री सौ किरण चौधरी ध प श्री महेन्द्र कुमार जी चौधरी भोपाल
११०१/-	श्री सौ शशि ध प श्री आदित्य रजन जैन राज ट्रेक्टर्स बीना
११०१/-	श्री सौ चमेली बाई ध प श्री कस्तूर चद जी जैन सिलवानी वाले भोपाल
११०१/-	सौ कमलेश ध प गेदालाल जी सराफ चदेरी
११०१/-	श्री रामप्रसाद जी हजारीलाल जी भडारी भोपाल
११०१/-	श्री विश्वभर दास जी महावीर प्रसाद जी जैन सराफ दिल्ली
५००१/-	श्री फूलचद जी विमलचद जी झाझरी उज्जैन
११०१/-	श्री दि जैन शिक्षण समिति, रामाशाह मदिर, मल्हारगज, इन्दौर
११०१/-	सौ कुसुम अजय सोगानी मोटर हाऊस भोपाल
११०१/-	स्व शान्ताबेन ध प श्री शान्ति भाई जवेरी बबई
११०१/-	श्री बसती बाई ध प स्व श्री हरख चद जी छावडा बबई
११०१/-	सौ शशि ध प श्री अशोककुमारजी छावडा सूरत
११०१/-	स्व कान्ताबेन मोतीलालजी पारिख की स्मृति मे प्र रमा बेन पारिख देवलाली
११०१/-	श्री मदन लालजी अनिल कुमारजी जैन, अनिल बेगल्स, भोपाल
११०१/-	श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री मानिक चद जी जैन गुड बाले, भोपाल
११०१/-	श्री जिन प्रभावना ट्रस्ट प्रो सुमत प्रकाश जी जैन भोपाल
११११/-	श्री जैन स्वाध्याय मडल पढरपुर
११००१/-	श्री केशरी चद्र जी पूनम चद्र जी सेठी ट्रस्ट, नई दिल्ली
११०१/-	सौ प्रतिभा देवी ध प श्री मनोज कुमार जैन मुजफ्फर नगर
११०१/-	सौ ममता देवी ध फ श्री आदीश कुमार जी पीरागढी नई दिल्ली
११०१/-	प्रमिला देवी ध प श्री मागीलाल जी पहाडिया इन्दौर
११०१/-	श्री गोकल चद जी चुन्नी लाल जी की स्मृति मे सुपुत्र श्री मागी लाल जी पहाडिया इन्दौर
११०१/-	सौ सुधा ध प श्री प्रवीण कुमार जी लुहाडिया नई दिल्ली
११०१/	सौ पुष्पादेवी ध प श्री सतीश कुमार जी जैन नई दिल्ली
११०१/-	सौ रमा जैन ध प श्री दृगेन्द्र कुमार जी नई दिल्ली
११०१/	अशोक कुमार जी सुपुत्र श्री दरबारीमल जी नई दिल्ली
११०१/-	श्री स्व मेमोदेवी ध प श्री अजित प्रसाद जी पीतल वाले नई दिल्ली

इस मनुष्य भव रूपी नदनवन मे रत्नत्रय के फूल ।
पर अज्ञानी चुनता रहता है अधर्म के दुखमय शूल ॥

११०१/-	सौ कौशल्या देवी ध प श्री इन्द्र सेन जी शाहदरा दिल्ली
११०१/-	स्व निर्मला देवी ध प श्री पृथ्वी चद्र जी जैन नई दिल्ली
११०१/-	सौ विमला देवी ध प श्री विमल कुमार जी सेठी इन्दौर
११०१/-	सौ कमला देबी ध प वाणी भूषण प ज्ञान चद्र जी विदिशा
११०१/-	श्री कचन बाई ध प स्व हुकुम चद्र जी पाटनी मातेश्वरी आनद कुमार जी देवेन्द्र कुमार जी इन्दौर
११०१/-	श्री स्व सुन्दर बाई ध प श्री छोटेलाल जी पाडे झासी की स्मृति मे सुपुत्र श्री सुरेन्द्र कुमार जी
११०१/-	सिघई श्री सुन्दरलालजी सुभाष ट्रान्सर्पोट प्रा लि भोपाल
११०१/	स्व पडित आनदीलालजी जैन विदिशा
११०१/-	सौ ताराबाई ध प श्री राजमल जी मिट्ठूलाल जी नरपत्या, भोपाल
११०१/-	सौ कुसुम जैन ध प प्रो श्री महेश चन्द्र जी जैन गोहद
११०१/-	सौ आशा देवी ध प श्री पी सी जैन प्रबधक स्टेट बैक भोपाल
११०१/-	सौ धनश्री बाई ध प श्री कपूर चद्र जी जैन भोपाल
११०१/-	सौ सावित्री बाई ध प चौधरी सुभाष चद्र जी जैन भोपाल
११०१/-	श्री सौ मीना जैन ध प श्री सुरेश चद्र जी जैन भोपाल
११०१/-	स्व श्री आभा देवी ध प श्री सुरेन्द्र कुमार जी सौगानी भोपाल
११०१/-	सौ श्री चद्रकान्ता ध प श्री महेन्द्र कुमार जी जैन सामन सुखा भोपाल
११०१/-	सौ सविता देवी ध प श्री अरुणकुमारजी जैन, भोपाल
११०१/	सौ चम्पा देवी ध प श्री लक्ष्मी चद्र जी महावीर टेन्ट हाऊस, भोपाल
११०१/-	सौ वीणा देवी ध प श्री राजेन्द्र कुमार जी जैन आम्रपाली भोपाल
११०१/-	सौ विद्यादेवी ध प श्री देवेन्द्र कुमार जी सौगानी भोपाल
११०१/-	श्री देवेन्द्र कुमार जी पाटनी मल्हारगज इन्दौर
११०१/-	सौ शकुन्तला देवी ध प श्री पदम चद्र जी भोंच जयपुर
११०१/-	सौ भवरी देवी ध प श्री घीसालाल जी छावडा जयपुर
११०१/-	सौ कचन देवी ध प श्री जुगराज जी कासलीवाल कलकत्ता
११०१/-	सौ शान्ति देवी ध प पारसमल जी पाटनी अजमेर
११०१/-	सौ गुलाब देवी ध प श्री लक्ष्मी नारायण जी जैन शिवसागर आसाम
११०१/-	स्व प्रेमवती देवी ध प स्व सेठ मनीराम जी जैन फिरोजाबाद

एक दिन भी जी मगर तू ज्ञान बनकर जी ।
तू स्वय भगवान है भगवान बनकर जी ॥

११०१/-	सौ शान्ति देवी ध प स्व श्री सेठ मुन्शीलाल जी फिरोजाबाद
११०१/-	सौ विमला देवी ध प श्री सेठ चद्र कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/-	सौ शकुन्तला देवी ध प स्व श्री जय कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/-	सौ उर्मिला देवी ध प श्री अशोक कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/-	सौ शशिबाला देवी ध प श्री राजेन्द्र कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/-	सौ सुलोचना देवी ध प श्री सुरेशचद्र जी जैन फिरोजाबाद
११०१/-	सौ सुषमा देवी ध प श्री प्रमोद कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/-	सौ राजमती देवी ध प श्री उग्रसेन जी सर्राफ फिरोजाबाद
११०१/-	सौ निशादेवी ध प श्री प्रदीप कुमार जी सर्राफ फिरोजाबाद
११०१/-	सौ विमला देवी ध प श्री चद्रसेन जी जैन बडामुहल्ला फिरोजाबाद
११११/-	सौ सरोज देवी ध प श्री कोमल चद्र जैन बामौरा वाले भोपाल
११११/-	श्री पूनम चद्र जी वरदीचद्र जी पाटनी पारमार्थिक ट्रस्ट रतलाम
११११/-	सौ विमला देवी ध प स्व श्री सोहन लाल जी अग्रवाल रतलाम
११११/-	श्री गोपी जी लखमी चद्र जी अजमेरा रतलाम
११११/-	स्व कचन बाई जुहारमल जी एव स्व अनिल पाटौदी की स्मृति मे दिगबर जैन सोशल ग्रुप रतलाम
११११/-	सौ तारादेवी ध प श्री महेन्द्र कुमार मोठिया, रतलाम
११११/	सौ स्नेहलता ध प डॉ सुरेन्द्र कुमार जी जैन रतलाम
११११/	श्रीमती सूरज बाई ध प स्व मन्नालाल जी रावका जैन रतलाम
११११/-	श्रीमती विमला देवी ध प कैलाश चद्र जी पाटौदी रतलाम
११०१/-	श्री सरजू बाई मातेश्वरी श्री सुरेश चद्र जी जैन, भोपाल
११०१/-	स्व श्री लक्ष्मीबाई ध प श्री मिट्ठूलाल जी नरपत्या भोपाल
११०१/-	श्रीमती सतोष जैन ध प स्व श्री रतन कुमार जी जैन , जैन को हमीदिया रोड भोपाल
११०१/-	श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल अहमदाबाद चौंसठ ऋद्धि विधान के उपलक्ष्य मे
११०१/-	स्व फूलाबाई एव स्व श्रीपालजी (माता-पिता) की स्मृति मे, राजमल बागमल पवैया, भोपाल
११०१/-	श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

ॐ

श्री समयसार कलश विधान

भारत विख्यात आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य कानजी स्वामी

जिन्होंने कलश युक्त समयसार मंदिर पर समयसार प्रवचन रूपी ध्वाजारोहण कर अपने जीवन को धन्य किया

ॐ

श्री समयसार कलश विधान

कलश एव ध्वजायुक्त
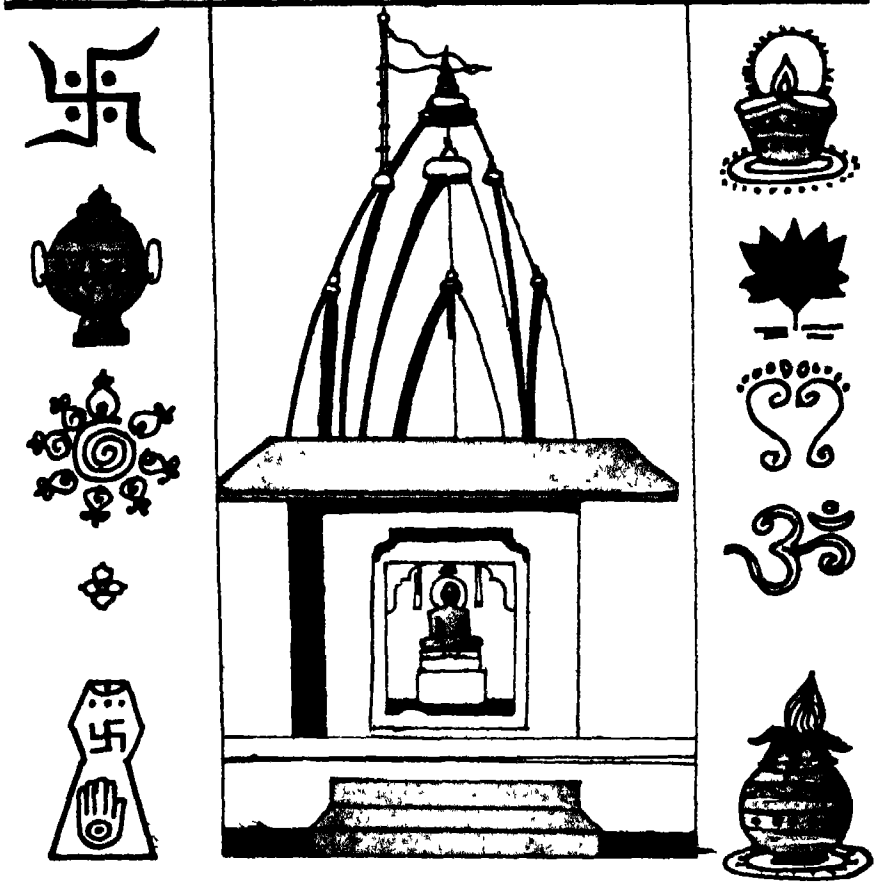
श्री समयसार मंदिर

नमः समयसाराय

तन प्रमाण उपचार कथन है लोकप्रमाण कथन भूतार्थ।
जो भूतार्थ आश्रय लेता वह पाता शिवमय परमार्थ ॥

प्राक्कथन

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे ॥

समय अर्थात् शुद्धात्म् सार अर्थात् द्रव्य कर्म, भाव कर्म और नौ कर्मो से भिन्न ऐसे समय स्वरूपी शुद्धात्मा को प्रथम कलश मे ही कहने वाले अर्थात् परिणति को आत्म सम्मुख कराने वाले आत्मानुभवी महान समर्थ आचार्य श्री अमृतचन्द्र स्वामी के समय सार कलश वास्तव मे अमृत के सागर है आध्यात्म ग्रन्थों में महान समर्थ आचार्य कुन्दकुन्द देव के ग्रन्थ सर्वोपरि माने जाते हैं और उसमे भी समयसार का तो कहना ही क्या । युग पुरुष कानजी स्वामी को इसकी खोज करने पर ३१ वर्ष की उम्र मे ग्रन्थ प्राप्त हुआ तो खोलते ही छठी गाथा सामने आई और अन्तर से आवाज आई ' यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है ।' इसीकी खोज में तो मैं वर्षो से था । मानो भूली भटकी परिणति स्व निज घर में आ गई हो । और १९ बार इस ग्रन्थाधिराज पर प्रवचन किये । इसी समयसार की ४१५ प्राकृत गाथाओं पर अमृतचन्द्राचार्य ने सस्कृत भाषा मे प्रौढ रचना की है । तथा टीका के साथ-साथ अनेक छन्दो में उसका नवनीत निकाल कर रख दिया है। कलशो में अमृत से भरे हुए यह २७८ कलश मानों अमृत के सागर है । जब विभिन्न छन्दों में इन कलशों को लयबद्ध पूर्वक पढते हैं तो मन मयूर नाच उठता है-मानों सुख स्वरूप आत्मा आत्मानुभूति मे ही तन्मय हो गया हो । विभिन्न छन्दों मे अनुष्टुप्, मालिनी, शार्दुलविक्रीडित, उपजाति, वसन्ततिलका, पृथ्वी, आर्या, स्वगता, मन्दाक्रान्ता, उपेन्द्रवज्रा, शिखरिणी, आदि अनेक छन्द का उपयोग किया है , इन कलशों पर पाण्डे राजमल जी ने हिन्दी टीका द्वारा एक-एक शब्द से अति गहराई में जाकर रहस्य खोला है ।

श्री शुभचन्द्राचार्य कृत परम अध्यात्म तरंगिणी में उक्त कलशों की सागोपाङ्ग सस्कृत टीका है तथा कविवर बनारसी दासजी ने नाटक समयसार का पद्यानुवाद

क्रिया शुद्ध स्वानुभव की हो तो प्रगटित होता सिद्ध स्वरूप।
दया दान पूजादि भाव की क्रिया मात्र ससार स्वरूप ॥

किया । इसके पश्चात् भी कई भव्य जीव इस समयसार ग्रथ और उसके रहस्य से वचित थे उन सभी के लिये वर्तमान मे अध्यात्म लेखनी के धनी सैकडो पूजन, भजन एव अनेको सफल विधानो के रचयिता कविवर प राजमलजी पवैया भोपाल ने सभी आचार्य विद्वानो एव गुरुदेव श्री के प्रवचनो का रहस्य समझकर उक्त सम्पूर्ण विषय वस्तु को छन्दो मे निबद्ध करके 'समयसार कलश विधान' की रचना कर दी है इसके पूर्व वे समयसार विधान की रचना कर चुके है। जिससे लोग, प्रवचनो मे, चर्चा मे, गोष्ठी मे, पूजन मे, विधान मे सभी के माध्यम से एकमात्र समय स्वरूपी शुद्धात्मा का ही अध्ययन चितन मनन करें । और, उस रूप अपना जीवन बनाए। २७८ कलशो मे प्रथम उसके विषय को बताया कि अब यह कहते है द्वितीय अमृतचन्द्राचार्य का मूल कलश दिया जो लयपूर्वक पढे । तृतीय उसका सरल सुन्दर भाव पूर्ण अर्थ दिया । चतुर्थ उसका सार रूप बीजाक्षर दिया । पचम मे उस कलश का सम्पूर्ण भासना भाषण पूर्वक विभिन्न छन्दो मे पद्य रचे गये तत्पश्चात् षष्ट्म मे ॐह्रीं के द्वारा उस अमृत राशि मयी मा जिनवाणी को अर्घ्य चढाया गया है इस प्रकार विभिन्न माध्यमो से समझाने का एकमात्र प्रयोजन आत्म तत्व/ वस्तु तत्व को समझाकर कल्याण के मार्ग मे लगाना है । सम्पूर्ण कलशो के माध्यम से पवैयाजी ने इसमे ज्ञान वैराग्य से पूर्ण जीव सिद्धान्त के रहस्य इसमे भर दिये है । जिसने एक बार यह विधान भाव भासना पूर्वक पढ लिया उसने समयसार के २७८ कलशो की विषय वस्तु को समझकर अपने स्वरूप को समझ लिया ।

आचार्य देव २३ कलश मे स्वय प्रेरणा देते हुए कहने है हे भाई किसी भी प्रकार मरकर (महापुरुषार्थ से) भी एक मुहुर्त मात्र के लिए शरीर को पडोसी बनाकर अपने आत्मतत्व को देख उसका तद्रूप अनुभव कर और शीघ्र ही मोहराग छोड । एक-एक शब्द में मानो अमृत झर रहा हो । कविवर पवैयाजी इसी प्रकार मा जिनवाणी के प्रति समर्पित रहते हुए स्व पर का कल्याण करे इसी भावना से।

१७ सितम्बर १९९६
(पर्यूषण पर्व)
प्रारम्भ

प. ज्ञानचन्द जैन
ज्ञानानद निवास
किला अन्दर, विदिशा (म.प्र)

तुम्हें शुद्ध होना है तो फिर मात्र आत्मा को जानो।
केवल ज्ञान परम निधि प्रगटित होगी यह निश्चयमानो॥

सम्पादकीय

जिस प्रकार भारतीय आध्यात्मिक रचनाओं मे "समयसार" अपूर्व हैं वैसे ही "समयसार कलश" अपूर्व निराला है। आचार्य अमृत चंद्र कृत यह रचना स्वात्मानुभव से प्रसूत तथा ज्ञानी के आत्म-विज्ञान से प्रमाणित हैं। शुद्ध वस्तु मात्र का निर्वचन करते हुए वह कहते हैं-

उदयति नय श्री रस्तमेति प्रमाण
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रम्।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मिन्
अनुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ॥९॥

इसका भावार्थ लिखते हुए प राजमल जी पाण्डे कहते हैं-"अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञान है। प्रत्यक्ष ज्ञान है अर्थात् वेद्य वेदक भाव से आस्वाद रूप है और वह अनुभव पर सहाय से निरपेक्ष है ऐसा अनुभव यद्यपि ज्ञान विशेष है, तथापि सम्यक्त्व के साथ अविनाभूत है, क्योकि यह सम्यग्दृष्टि के होता है, मिथ्यादृष्टि नहीं होता है ऐसा नियम है। ऐसा अनुभव होने पर जीव वस्तु अपने शुद्ध स्वरूप को प्रत्यक्ष रूप से आस्वादती है। इसलिए जितने काल तक अनुभव होता है उतने काल तक वचन व्यापार सहज ही बन्द रहता है क्योकि वचन व्यवहार तो परोक्ष रूप से कथक हैं। यह जीव तो प्रत्यक्ष रूप अनुभव शील है।

वास्तव मे चाहे बहिर्लोक हो या चाहे अन्तर्लोक दोनों में अनुभव प्रमाण स्वरूप है। पर पदार्थो के सयोगो मे तथा विभिन्न परिस्थितियों के योगायोगों मे कदाचित् भ्रम व सन्देह उत्पन्न हो सकता है किन्तु निज शुद्धात्मा की अनुभूति निर्भ्रान्त प्रत्यक्ष एव निर्विकल्प ही होती है। अत वह सदा एक रूप ही होती है। वहाँ पर रागादि विकल्प नहीं होते। विकल्प तो ब मिथ्या है। कारण यह है कि जीव का लक्षण तो शुद्ध चैतन्य रूप है, यह सब तो कर्म सयोग की उपाधि हैं। ऐसा निश्चय जिस काल में होता है उसी समय सभी विभाव भावों का त्याग हैं। शरीर सुख दुख जैसे हैं वैसे ही हैं परिणमों से त्याग है, क्योंकि स्वामित्वपना छूट गया है। इसी का नाम सम्यक्

कर्म विपाकोदय निमित्त पा होते रागद्वेष विभाव ।
अज्ञानी उनमें रत होता भूल वीतरागी निज भाव ॥

है।" (समयसार कलश, २९ की टीका) यह अन्तरग जीवन की यथार्थता है कि शुद्ध चेतना मात्र का स्वाद आए बिना अशुद्ध भाव रूप परिणाम छूटता नही है और अशुद्ध सस्कार छूटे बिना शुद्ध स्वरूप का अनुभव नहीं होता है। इसलिए जो कुछ हैं सो एक ही काल, एक ही वस्तु एक ही ज्ञान का ही स्वाद है।

परमात्म प्रकाश मे योगीन्द्रदेव ने कहा है

सुद्धुण बधइ कम्मु ॥२/७१॥

अशुद्ध भाव वाला जीव कर्म बॉधता है, लेकिन शुद्ध भाव से कर्म बन्ध नहीं होता। यहॉ पर 'शुद्ध' भाव का अर्थ है मिथ्यात्वरागादि रहित परिणाम । मिथ्यात्व रागादि विकल्प हैं। 'विकल्प' कहने से मिथ्यात्व रागादि का ग्रहण हो जाता है। इसी प्रकार विषय कषाय छोडने के लिए कहने से शुद्धात्म भावना का स्मरण हो जाता है। सम्पूर्ण "समयसार मे इस दृष्टि से एक ही कलश मे समस्त जिनागम का सार भरा पूरा हैं जो इस प्रकार है -

विजहति न हि सत्ता प्रत्यया पूर्व बद्ध
समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपा ।
तदपि सकलराग द्वेष मोह व्युदासा -
दवरति न जातु ज्ञानिन कर्म बन्ध ॥११८॥

भावार्थ इस प्रकार है, कोई अनादि काल का मिथ्यादृष्टि जीव काललब्धि को प्राप्त करता हुआ सम्यक्त्व गुण रूप परिणमा चारित्रमोह कर्म की सत्ता विद्यमान है, उदय भी विद्यमान है, पचेन्द्रिय विषय सस्कार विद्यमान है, भोगता भी है भोगता हुआ ज्ञान गुण के द्वारा वेदक भी है, तथापि जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव आत्म स्वरूप को नही जानता है, कर्म के उदय को आप कर जानता है, इससे इष्ट अनिष्ट विषय सामग्री को भोगता हुआ राग द्वेष करता है, इससे कर्म का बन्धक होता है, इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा को शुद्ध स्वरूप अनुभवता है। वह शरीर आदि समस्त सामग्री को कर्म का उदय जानता है, आए उदय को खपाता है । परन्तु अन्तरग में परम उदासीन है इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव को कर्मबन्

पुण्य धूल के लिए बावरे हीरा जनम गंवाता ।
रत्न राख के लिए जलाता फिर भव भव पछताता ॥

नही है। ऐसी अवस्था सम्यग्दृष्टि जीव के सर्व काल नही है।
यह जो कहा जाता है कि सम्यग्दृष्टि जीव के कर्म बन्ध नहीं है उसका कारण यही है कि सम्यग्दृष्टि के रजक परणिाम (राग) उद्वेग (द्वेष) प्रतीति का विपरीतपना ऐसे अशुद्ध भावो की विद्यमानता नहीं है उसके चारित्र मोह का उदय तो है, किन्तु कर्म के उदय मे वह रजायमान नही होता। आचार्य अमृत चद्र के शब्दो मे-

रागद्वेषविमोहाना ज्ञानिनो यदसम्भव ।
तत एव न बन्धोऽस्य ते हि बन्धस्य कारणम् ॥११९॥

वास्तव मे कर्म का उदय होने पर भी राग द्वेष मोह के परिणाम हों तो कर्म बन्ध होता है, अन्यथा जयसेन ने अपनी टीका मे इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है-

यदि रागी सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता है तो चतुर्थ पचमगुण स्थानवर्त्ती कुमारावस्था मे तीर्थंकर भरत, सगर चक्रवर्त्ती, रामचन्द्र, पाण्डव आदि सम्यग्दृष्टि नही होने चाहिए। क्योकि उनके राग स्पष्टत था। किन्तु ऐसा नहीं है। मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से मिथ्यात्वादि ४१ प्रकृतियो का उनके बन्ध नहीं होता इस प्रकार चतुर्थ गुणस्थानवर्त्ती जीवो के अनन्तानुबन्धी क्रोध मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व के उदय से होने वाली पाषाण रेखा के समान रागादिको का अभाव होता है। (समयसार गा २११-२१२ तात्पर्यवृतित्त)

इस प्रकार "समयसार" की भांति "समयसार कलश" ज्ञान और ज्ञानीकी विशेष व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। जिसे समझकर हम अज्ञान से निवृत होकर ज्ञानी हो सकते हैं- यही आत्म कल्याण का मार्ग है वस्तु विज्ञान के सारभूत निष्पन्द को अमृतचद्र सूरि ने जो भाषा तथा भावाभिव्यजना प्रदान की हैं वह भारतीय अध्यात्मविद्या को चिरकाल तक जीवित रखेगी। ऐसे महान आध्यात्मिक ग्रन्थ पर पूजा विधान की रचना के माध्यम से जम -जन तक जिन मन्दिरो में पहुँचाने तथा जन सुलभ बनाने में कविवर पवैया जी का योगदान भी स्तुत्य है। कवि के शब्दों

समयसार रस कलश भरो निज में ही जाओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥

अतरग बहिरग परिग्रह तजने का ही कर अभ्यास ।
इसके बिना नही तू होगा साधु कभी भी कर विश्वास ॥

या

भेद विज्ञान ज्योति करवत जब होती है निर्दय ।
जीव और पुदगल का भेद प्रकाशित होता है निश्चय ॥

या

जो होता परिणमित वही कर्त्ता कहलाता ।
जो परिणाम वही तो उसका कर्म कहाता ॥
जो परिणति है वही क्रिया है उसको जानो ।
वस्तु रूप से भिन्न नही है इसको मानो ॥

या

निज स्वरूप के दर्शन पाऊ आस्रव भावो को जयकर ।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊँ फिर हर्षित होकर ॥

या

सर्व विशुद्ध स्वभाव का हुआ मुझे अब ज्ञान ।
पूर्ण शुद्ध होकर प्रभो पाऊ पद निर्वाण ॥

इस प्रकार- अनेक छद महत्वपूर्ण हैं । पढने योग्य हैं ।

आशा है यह विधान 'समयसार' की गूढ तथा रहस्यपूर्ण बातो को सरलता से समझाने मे समर्थ सिद्ध होगा और सबसे अधिक लोकप्रियता प्राप्त करेगा। कवि का श्रम निश्चय ही इस रचना मे सफल तथा सार्थक सिद्ध हुआ है। वास्तव मे विद्वानो का परिश्रम विद्वान ही समझते हैं - यह लोकोक्ति पूर्णतया इस पूजा विधान पर चरितार्थ होती है ।

५ सितम्बर १९९६
२४३ शिक्षक कॉलोनी
नीमच (म प्र)

देवेन्द्र कुमार शास्त्री

सर्व चेष्टा रहित पूर्ण निष्क्रिय हो तू कर निज का ध्यान।
दृश्य जगत के भ्रम को तज दे पाएगा उत्तम निर्वाण ॥

विन्रम निवेदन

आचार्य अमृत चद्र सूरि की समयसार पर लिखी आत्मख्याति टीका एव उनके द्वारा रचित कलशो पर आधारित यह समयसार कलश विधान आपके सामने है, कितनी सफलता मिली आप जानें पर मुझे पूरा सतोष है, मेरे द्वारा इस महान कार्य का सम्पन्न होना मेरे लिए गौरव की बात है। अत्यन्त अल्पकाल मे यह सब अपने आप हो गया, मुझे तो जरा भी श्रम नही करना पडा। मेरे प्रिय विधानो में यह एक ही है।

यद्यपि इसमे मेरा कुछ कर्तृत्व नहीं है। यह तो आचार्य अमृत चद्र सूरि की कृपा का फल है। इसके बीजाक्षर एव ध्यानसूत्र के लिए महाराष्ट्र की क्षुल्लिका द्वय श्री सुशीलमति जी एव सुव्रता जी को शत शत धन्यवाद है। प्राक्कथन के लिए वाणी भूषण प ज्ञान चद जी एवं संपादन के लिए श्री डॉ देवेन्द्र कुमार शास्त्री जी को हार्दिक धन्यवाद। त्रुटियो के लिए क्षमा प्रार्थी हू। इसे आप रुचि पूर्वक पढे, आनद ले, अनुभव के पुरुषार्थ मे सफल हो।

इसी मगल भावना के साथ- आपके आशीर्वाद का इच्छुक । त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूं।

इत्यलम् ।

४४ इब्राहीमपुरा बोपाल

पयूर्षण वीर स २५२२
दूरभाष ५३१३०९

राजमल पवैया

देह अपावन जड पुदगल है तू चेतन चिद्रूपी ।
शुद्धबुद्ध अविरुद्ध निरजन नित्य अनूरूप अरूपी ॥

मंगलाष्टक

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिता सिद्धाश्च सिद्धीश्वरा:,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा: पूज्या उपाध्यायका:।
श्री सिद्धान्तसुपाठका: मुनिवरा: रत्नत्रयाराधका:,
पंचैते परमेष्ठिन: प्रतिदिन कुर्वन्तु ते मगलम् ॥१॥
श्रीमन्नम्रसुरासुरेन्द्र मुकुटप्रद्योत-रत्नप्रभा,
भास्वतपाद-नखेन्दव: प्रवचनाम्भोधीन्दव: स्थायिना:॥
ये सर्वे जिनसिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठका: साधव:,
स्तुत्या योगिजनैश्च पचगुरूव: कुर्वन्तु ते मगलम्॥२॥
सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममल रत्नत्रय पावन,
मुक्तिश्री नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रद:
धर्म: सूक्तिसुधा चैत्यमखिल चैत्यालय श्रयालय,
प्रोक्तं च त्रिविध चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मगलम् ॥३॥
सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायन विषमपि प्रीति विधत्ते रिपु:।
देवा यान्ति वश प्रसन्नमनस: कि वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगै: कुर्वन्तु ते मगलम् ॥४॥
ये सर्वोषधऋद्धय: सुतपसो वृद्धिगता पच ये
ये चाष्टांग महानिमित्तकुशला येऽष्टाविधाश्चारणा:।
पचज्ञानधरास्त्रयोऽपिबलिनो ये बुद्धि-ऋद्धीश्वरा:,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृत: कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥५॥
कैलासे वृषभस्य निवृतिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्य सज्जिनपते: सम्मेदशैलऽर्हताम्।
शेषाणमपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनय: प्रसिद्धविभवा: कुर्वन्तु ते मंगलम्॥६॥
ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ तथा,
जम्बू-शाल्मलि-चैत्याशाखिषु तथा वक्षार-रौप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहा: कुर्वन्तु ते मगलम् ॥७॥

सम्यक दर्शन ज्ञान चरित रत्नत्रय अपना लो ।
अष्टम वसुधा पचम गति मे सिद्ध स्वपद पा लो ॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवता जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जात. परिनिष्क्रमेण विभवो य: केवलज्ञानभाक्।
य: कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा सभावित: स्वर्गिभि:
कल्याणानि च तानि पच सतत कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥८॥
इत्थ श्री जिनमगलाष्टकमिद सौभाग्यसपत्पदं,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणां मुखात्
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धमार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रियते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥९॥

मंगल पंचक

गुण रत्नभूषा विगतदूषा: सौम्यभावनिशाकरा·
सद्बोध-भानुविभा-विभाषितदिक्चया विदषावरा:
नि.सीमसौख्यसमूहमण्डितयोगखण्डितरतिवरा:
कुर्वन्तु मगलमत्र ते श्री वीरनाथ जिनेश्वरा.॥१॥
सद्ध्यानतीक्ष्ण-कृपाणधारा निहतकर्मकदम्बका,
देवेन्द्रवृन्दनरेन्द्रवन्द्या: प्राप्त सुखनिकुरम्बका:
योगीन्द्रयोगनिरूपणीया. प्राप्तबोधकलापका:
कुर्वन्तु मगलमत्र ते सिद्धा: सदा सुखदायका ॥२॥
आचारपचकचरणचारणचुचव. समताधरा:
नानातपोभरहैतिहापितकर्मका: सुखिताकरा:
गुप्तित्रयीपरिशीलनादिविभूषिता बदतावरा:
कुर्वन्तु मगलमत्र ते श्री सूरयोऽर्जितशंभरा: ॥३॥
द्रव्यार्थ भेद विभिन्नश्रुतभरपूर्णतत्व निभालिनो
दुर्योगयोगनिरोधदक्षा: सकलवरगुणशालिन:
कर्त्तव्य देशन तत्परा विज्ञान गौरव शालिन:
कुर्वन्तु मगलमत्र ते गुरुदेवदीधितिमालनि: ॥४॥
सयमसमित्यावश्यका-परिहाणिगुप्तिविभूषिता:
पचाक्षदान्तिसमुद्यता: समतासुधापरिभूषिता:
भूपृष्ठविष्टरसायिनो विविधर्द्धिवृन्द विभूषिता:
कुर्वन्तु मगलमत्र ते मुनय: सदा शमभूषिता: ॥५॥

इस भव वन मे उलझे रहते तो जिनवर अरहत न होते।
ज्ञाता दृष्टा शुद्ध स्वरूपी मुक्तिकत भगवत न होते ॥

श्री प्रक्षाल पाठ

छंद-गीतिका

प्रक्षाल श्री जिन बिम्ब का नित हर्ष से सविनय करूँ ।
मूर्तिमान जिनेन्द्र प्रभु को भक्ति से वदन करूँ ॥
अरहत परमेष्ठी जिनेश्वर वीतराग स्वरूप है ।
सर्वज्ञ तीर्थंकर महा प्रभु परम सिद्ध अनूप है ॥
दिव्य ध्वनि दिन रात गूजे नाथ मेरे हृदय मे ।
ज्ञान धारा प्रवाहित हो आत्मा के निलय मे ॥
भेद ज्ञान महान दो प्रभु आप से है प्रार्थना ।
मुक्ति का सन्मार्ग पाऊँ मात्र यह है याचना ॥
आत्म धर्म महान मगलमय सभी को प्राप्त हो ।
विश्व का कल्याण हो प्रभु शान्ति जग में व्याप्त हो ॥
अहिसा हो आचरण मे सत्य हो व्यवहार मे ।
सब सुखी आनद मय हो दुख न हो ससार में ॥

अभिषेक पाठ

मैं परम पूज्य जिनेन्द्र प्रभु को भाव से वन्दन करूँ।
मन वचन काय, त्रियोग पूर्वक शीष चरणो मे धरूँ।।१।।
सर्वज्ञ केवलज्ञानधारी की सुछवि उर मे धरूँ।
निर्ग्रन्थ पावन वीतराग महान की जय उच्चरूँ।।२।।
उज्ज्वल दिगम्बर वेश दर्शन कर हृदय आनन्द भरूँ।
अति विनय पूर्व नमन करके सफल यह नरभव करूँ।।३।।
मै शुद्ध जल के कलश प्रभु के पूज्य मस्तक पर करूँ।
जल धार देकर हर्ष से अभिषेक प्रभु दी का करूँ।।४।।
मैं न्हवन प्रभु का भाव से कर सकल भव पातक हरूँ।
प्रभु चरणकमल पखारकर सम्यक्त्व की सम्पत्ति वरूँ।।५।।

जिनवाणी मे निश्चय नय भूतार्थ बताया ।
अभूतार्थ व्यवहार कथन उपचार जताया ॥

जिनेन्द्र स्तुति

छंद-गीतिका

अंत भव का निकट आया आपके दर्शन किये ।
पुष्प सम्यक् ज्ञान के प्रभु आपने मुझको दिये ॥
सदाचारी आचरण हे प्रभु सिखाया आपने ।
धर्म श्रावक तथा मुनि का बताया प्रभु आपने ॥
आपका उपकार स्वामी भूल सकता हू नही ।
मिला सत्पथ अब कुपथ पर कभी जा सकता नहीं ॥
शरण पाकर आपकी मै तत्त्व निर्णय करूँगा ।
नाथ समकित प्राप्त करके मोह भ्रम तम्र हरूँगा ॥
आज उर अम्बुज सहज जिन रवि किरण पाकर खिला।
जिन बिम्ब दर्शन का सुफल हे नाथ अब मुझको मिला॥

करलो जिनवर की पूजन

करलो जिनवर की पूजन, आई पावन घड़ी।
आई पावन घड़ी मन भावन घड़ी॥१॥
दुर्लभ यह मानव तन पाकर, कर लो जिन गुणगान।
गुण अनन्त सिद्धों का सुमिरण, करके बनो महान॥करलो.॥२॥
ज्ञानावरण, दर्शनावरणी, मोहनीय अतराय।
आयु नाम अरु गोत्र वेदनीय, आठों कर्म नशाय॥करलो.॥३॥
धन्य धन्य सिद्धों की महिमा, नाश किया ससार।
निज स्वभाव से शिवपद पाया, अनुपम अगम अपार॥करलो.॥५॥
रत्नत्रय की तरणी चढ़कर चलो मोक्ष के द्वार।
शुद्धातम का ध्यान लगाओ हो जाओ भवपार॥करलो.॥६॥

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु
अरिहंतों को नमस्कार है, सिद्धों को सादर वदन।
आचार्यों को नमस्कार है, उपाध्याय को है वन्दन॥१॥

निश्चयनय भूतार्थ आश्रय उपादेय है ।
अभूतार्थ व्यवहार कथन तो अरे हेय हैं ॥

और लोक के सर्वसाधुओं को है विनय सहित वन्दन।
पच परम परमेष्ठी प्रभु को बार-बार मेरा वन्दन॥२॥
ॐ ह्रीं श्री अनादि मूलमन्त्रेभ्यो नमः पुष्पाजलि क्षिपामि।
मगल चार, चार हैं उत्तम चार शरण में जाऊं मैं।
मन वच काय त्रियोग पूर्वक, शुद्ध भावना भाऊ मैं॥३॥
श्री अरिहत देव मगल हैं, श्री सिद्ध प्रभु हैं मगल।
श्री साधु मुनि मगल हैं, है केवलि कथित धर्म मगल॥४॥
श्री अरिहत लोक में उत्तम, सिद्ध लोक में है उत्तम।
साधु लोक में उत्तम है, है केवलि कथित धर्म उत्तम॥५॥
श्री अरिहत शरण में जाऊ, सिद्ध शरण में मैं जाऊ।
साधु शरण में जाऊ, केवलि कथित धर्मशरणा पाऊ॥६॥
ॐ ह्रीं नमो अर्हते स्वाहा पुष्पाजलि क्षिपामि।

अर्घ्य

जल गधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य धरूँ।
जिन गृह में जिन प्रतिमा सम्मुख सहस्त्रनाम को नमन करूँ॥
ॐ ह्री भगवत् जिन, सहस्त्रनामेभ्यो अर्घ्य नि ।
जल गधाक्षत, पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ धरुँ।
जिन गृह में जिनराज पच कल्याणक पाँचों नमन करुँ॥
ॐ ह्री जिन पच कल्याणकेभ्यो अर्घ्य ।
जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य करुँ।
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम जिन बिम्बों को नमन करुँ॥
ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सबधी कृत्रिम, अकृत्रिम जिनालय जिन बिम्बेभ्यो अर्घ्य ।
जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ करुँ।
जिन गृह में सर्वज्ञ दिव्यध्वनि जिनवाणी को नमन करुँ॥
ॐ ह्री श्री जिन मुखोद्भूत श्रुतज्ञानेभ्यो अर्घ्य ।
जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ करुँ।
जिन गृह में पाँचों परमेष्ठी के चरणों में नमन करुँ॥
ॐ ह्री श्री अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु पच परमेष्ठीभ्यो अर्घ्य ।

मिथ्यात्व जगत मे भ्रमण कराता है ।
सम्यक्त्व मुक्ति से रमण कराता है ॥

स्वस्ति मंगल

मगलमय भगवान वीर प्रभु मगलमय गौतम गणधर।
मगलमय श्री कुन्द कुन्द मुनि मगल जैन धर्म सुखकर।।१।।
मगलमय श्री ऋषभदेव प्रभु मंगलमय श्री अजित जिनेश।
मगलमय श्री सभव जिनवर मंगल अभिनदन परमेश।।२।।
मगलमय श्री सुमति जिनोत्तम मगल पद्मनाथ सर्वेश।
मगलमय सुपार्श्व जिन स्वामी मगल चन्द्राप्रभु चन्द्रेश।।३।।
मगलमय श्री पुष्पदत प्रभु, मगल शीतलनाथ सुरेश।
मगलमय श्रेयासनाथ जिन मगल वासुपूज्य पूज्येश।।४।।
मगलमय श्री विमलनाथ विभु, मगल अनन्तनाथ महेश।
मगलमय श्री धर्मनाथ जिन मगल शातिनाथ चक्रेश।।५।।
मगल कुन्थुनाथ जिन मगल मगल श्री अरनाथ गुणेश।
मगलमय श्री मल्लिनाथ प्रभु मगल मुनिसुव्रत सत्येश।।६।।
मगलमय नमिनाथ जिनेश्वर मंगल नेमिनाथ योगेश।
मगलमय श्री पार्श्वनाथ प्रभु, मगल वर्धमान तीर्थेश।।७।।
मगलमय अरिहत महाप्रभु, मगल सर्व सिद्ध लोकेश।
मगलमय आचार्य श्री जय मगल उपाध्याय ज्ञानेश।।८।।
मगलमय श्री सर्वसाधुगण , मगल जिनवाणी उपदेश।
मगलमय सीमन्धर आदिक, विद्यमान जिन बीस परेश।।९।।
मगलमय त्रैलोक्य जिनालय, मगल जिन प्रतिमा भव्येश।
मगलमय त्रिकाल चौबीसी, मगल समवशरण सविशेष।।१०।।
मगल पचमेरु जिन मदिर, मगल नन्दीश्वर द्वीपेश।
मगल सोलह कारण दशलक्षण, रत्नत्रय व्रत भव्येश।।११।।
मगल सहस्त्र कूट चैत्यालय मगल मानस्तम्भ हमेश।
मगलमय केवलि श्रुतकेवलि मगल ऋद्धिधारि विद्येश।।१२।।
मगलमय पाचो कल्याणक, मगल जिन शासन उद्देश।
मगलमय निर्वाण भूमि, मगलमय अतिशय क्षेत्र विशेष।।१३।।
सर्व सिद्धि मगल के दाता हरो अमंगल हे विश्वेश।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊ तब तक पूजूं हे ब्रह्मेश।।१४।।

पुष्पांजलि क्षिपामि

आत्म ज्ञान वैभव यदि हो तो सदाचार शोभा पाता है ।
पचरावर्तन अभाव कर चेतन मुक्ति गीत गाता है ॥

ॐ

श्री समयसार पूजन

स्थापना

ताटक

जय जय जय ग्रन्थाधिराज श्री समयसार जिन श्रुत वन्दन।
कुन्दकुन्द आचार्य रचित परमागम को सादर वन्दन॥
द्वादशांग जिनवाणी का है इसमे सार परम पावन।
आत्म तत्व की सहज प्राप्ति का है अपूर्व अनुपम साधन॥
सीमधर प्रभु की दिव्य ध्वनि इसमे गूज रही प्रतिक्षण।
इसको हृदयगम करते ही हो जाता सम्यक्दर्शन॥
समयसार का सार प्राप्त कर सफल करू मानव जीवन।
सब सिद्धो को वन्दन करके करता विनय सहित पूजन॥

ॐ ह्री श्री परमागम समयसाराय पुष्पाजलि क्षिपामि।

अष्टक

ताटक

निज स्वरूप को भूल आज तक चारोगति मे किया भ्रमण।
जन्ममरण क्षय करने को अब निज स्वभाव मे करू रमण॥
समयसार का करू अध्ययन समयसार का करू मनन।
कारण समयसार को ध्याऊ समयसार को करू नमन ॥१॥

ॐ ह्री श्री परमागम समयसाराय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

भव ज्वाला मे प्रतिपल जलजल करता रहा करुणक्रन्दन।
निज स्वभाव ध्रुव का आश्रय ले काटूगा जग के बधन॥
समयसार का करू अध्ययन समयसार का करू मनन।
कारण समयसार को ध्याऊ समयसार को करू नमन॥२॥

ॐ ह्री श्री परमागम समयसाराय ससारताप विनाशाय चन्दन नि ।

देह तो अपनी नहीं है देह से फिर मोह कैसा ।
जड अचेतन रूप पुद्गल द्रव्य से व्यामोह कैसा ॥

पुण्य पाप के मोहजाल में बढी सदा भव की उलझन।
सवरभाव जगा उर मे तो, भव समुद्र का हुआ पतन॥
समयसार का करू अध्ययन समयसार का करू मनन।
कारण समयसार को ध्याऊं समयसार को करू नमन॥३॥

ॐ ह्री श्री परमागम समयसाराय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

कामभोग बन्धन की कथनी सुनी अनन्तो बार सघन।
चिर परिचित जिनश्रुत अनुभूति न जागी मेरे अतर्मन॥
समयसार का करू अध्ययन समयसार का करू मनन।
कारण समयसार को ध्याऊ समयसार को करू नमन ॥४॥

ॐ ह्री श्री परमागम समयसाराय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

क्षुधा रोग की औषधि पाने का न किया है कभी जतन।
आत्मभान करते ही महका वीतरागता का उपवन॥
समयसार का करू अध्ययन समयसार का करू मनन।
कारण समयसार को ध्याऊ समयसार को करू नमन ॥५॥

ॐ ह्री श्री परमागम समयसाराय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।

भ्रम अज्ञान तिमिर के कारण पर मे माना अपनापन।
सत्य बोध होते ही पाई ज्ञान सूर्य की दिव्य किरण॥
समयसार का करू अध्ययन समयसार का करू मनन।
कारण समयसार को ध्याऊ समयसार को करू नमन ॥६॥

ॐ ह्री श्री परमागम समयसाराय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

आर्त रौद्रध्यानो मे पडकर पर भावो में रहा मगन।
शुचिमय ध्यान धूप देखी तो धर्मध्यान की लगी लगन॥
समयसार का करूं अध्ययन समयसार का करू मनन।
कारण समयसार को ध्याऊं समयसार को करू नमन ॥७॥

ॐ ह्री श्री परमागम समयसाराय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि

राग आग में जल जल तूने कष्ट अनत उठाए हैं ।
भाव शुभाशुभ के बंधन मे आंसू सदा बहाए हैं ॥

भव तरु के विषमय फल खाकर करता आया भाव मरण।
सिद्ध स्वपद की चाहजगी तो यह पर्याय हुई धन धन॥
समयसार का करू अध्ययन समयसार का करू मनन।
कारण समयसार को ध्याऊ समयसार को करू नमन ॥८॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय महा मोक्षफळ प्राप्तये फल नि ।

आश्रव बधभाव के कारण मिटा राग का एक न कण।
द्रव्य दृष्टि बनते ही पाया निज अनर्घ पद का दर्शन॥
समयसार का करू अध्ययन समयसार का करू मनन।
कारण समयसार को ध्याऊ समयसार को करू नमन॥९॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय अनर्ध्यपद प्राप्तये अर्ध्य नि स्वाहा।

जयमाला

दोहा

समयसार के ग्रन्थ की महिमा अगम अपार।
निश्चय नय भूतार्थ है अभूतार्थ व्यवहार ॥१॥

वीरछंद

दुर्नय तिमिर निवारण करण समयसार को करू प्रणाम।
हू अबद्ध स्पृष्ट नियत अविशेषअनन्यमुक्ति का धाम॥२॥
सप्त तत्व अरु नव पदार्थ का इसमें सुन्दर वर्णन है।
जो भूतार्थ आश्रय लेता पाता सम्यकदर्शन है ॥३॥
जीव अजीव अधिकार प्रथम मे भेदज्ञान की ज्योति प्रधान।
'जो पस्सदि अप्पाण णियद', हो जाता सर्वज्ञ महान ॥४॥
कर्ता कर्म अधिकार समझकर कर्ता बुद्धि विनाश करू।
'सम्मद्दसण णाणो एसो' निज शुद्धात्म प्रकाश करू॥५॥
पुण्य पाप अधिकार जान दोनों मे भेद नहीं मानू।
ये विभाव परिणति से हैं उत्पन्न बधमय ही जानूं ॥६॥
'रत्तो बंधदि कम्म', जानू उर विराग ले कर्म हरू।
राग शुभाशुभ का निषेध कर निज स्वरूप को प्राप्तकरूं॥७॥

ॐ

श्री समयसार कलश विधान

आध्यात्म योगी स्व. श्री १०८ वीर सागर जी महाराज की सुशिष्याएँ

समयसार कलश विधान के बीजाक्षर एवं ध्यानसूत्र की रचयिता

क्षुल्लिका द्वय श्री सुशीलमति जी एव सुव्रता जी (महाराष्ट्र)

ॐ

श्री समयसार कलश विधान

शुद्धात्म तत्त्व निज समयसार का सम्यक् स्वरूप

जो पस्सदि अप्पाण अबद्धपुट्ठ अणण्णमविसेस ।
अपदेससतमज्झ पस्सदि जिणसासण सव्व ॥

आत्मस्वभाव परभावभिन्न-
मापूर्णमाद्यतविमुक्तमेकम् ॥
विलीनसकल्पविकल्पजाल ।
प्रकाशयन शुद्धनयोभ्युदेति ॥

आत्म स्वरूप अनूप अनूठा इसकी महिमा अपरम्पार ।
इसका अवलंबन लेते ही मिट जाता अनंत संसार ॥

मैं आश्रव अधिकार जानकर राग द्वेष, अरु मोह हरूं।
भिन्न द्रव्य आश्रव से होकर भावाश्रव को नष्ट करूं ॥८॥
मैं सवर अधिकार समझकर सवरमय ही भाव करूं।
'अप्पाणं झायंतों' दर्शन ज्ञानमयी निज भाव करू॥९॥
मै अधिकार निर्जरा जानू पूर्ण निर्जरावन्त बनूं।
पूर्व उदय में सम रहकर मैं चेतन ज्ञायक मात्र बनूं ॥१०॥
'अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो' सारे कर्म झराऊंगा।
मै रतिवन्त ज्ञान मे होकर शाश्वत शिव सुख पाऊंगा ॥११॥
बन्ध अधिकार बन्ध की हो तो सकल प्रक्रिया बतलाता।
बिन समकित जप तप व्रत संयम बंध मार्ग है कहलाता॥१३॥
राग द्वेष भावों विरहित जीव बध से रहता दूर ।
'णिच्छय णया सिदापुणमुणिणो' अष्टकर्म करता चकचूर॥१३॥
जान मोक्ष अधिकार शीघ्र हीं नष्ट करुँविषकुम्भविभाव ।
आत्म स्वरूप प्रकाशित करके प्रकटाऊ परिपूर्ण स्वभाव॥१४॥
शुद्ध आत्मा ग्रहण करू मैं सर्वबध का कर छेदन।
निशंकित होकर पाऊंगा मुक्ति शिला का सिहासन॥१५॥
सर्व विशुद्ध ज्ञान का है अधिकार अपूर्व अमूल्य महान।
पर कर्तृत्व नष्ट हो जाता होता शिव पथ पर अभियान॥१६॥
कर्म फलों को मूढ भोगता ज्ञानी उनका ज्ञाता है
इसीलिए अज्ञानी दुख पाता ज्ञानी सुख पाता है। ॥१७॥
भाव वासना नौ अधिकारो से कर निज में वास करू।
'मिच्छत्त अविरमणकसाय जोग' की सत्ता नाशकरू॥१८॥
कुन्दकन्द ने समयसार मन्दिर का किया दिव्य निर्माण।
वीतराग सर्वज्ञ देव की दिव्य ध्वनि का इसमें ज्ञान ॥१९॥
सर्व चार सौ पन्द्रह गाथाए प्राकृत भाषा में जान।
सारभूत निज समयसार का ही अनुभव लूं भव्य महान॥२०॥

मोह कर्म का जब उपशम हो भेद ज्ञान कर लो ।
भाव शुभाशुभ हेय जानकर सवर आदर लो ॥

अमृतचन्द्राचार्य देव ने आत्मख्याति टीका लिखकर।
कलश चढाए दो सौ अठहत्तर स्वर्णिम अनुपम सुन्दर॥२१॥
श्री जयसेनाचार्य स्वामी की तात्पर्यवृत्ति टीका।
ऋषि मुनिविद्वानो ने लिक्खा वर्णन समयसार जी का ॥२२॥
ज्ञानी ध्यानी मुनियो ने भी तोरण द्वारा सजाये हैं।
समयसार के मधुर गीत गा वन्दनवार चढाए हैं॥२३॥
भिन्न-भिन्न भाषाओ मे इसके अनुवाद हुए सुन्दर।
काव्य अनेको लिखे गए हैं समयसार जी पर मनहर ॥२४॥
श्री कानजीस्वामी ने भी करके समयसार प्रवचन।
समयसार मन्दिर पर सविनय हर्षित किया ध्वजारोहण॥२५॥
समयसार पढ सम्यक्दर्शन ज्ञान चरित्र प्रगटाऊगा।
तिब्ब मद सहाव'क्षयकर-वीतराग पद पाऊगा॥२६॥
पच परावर्तन अभाव कर सिद्ध लोक मे जाऊगा।
काल लब्धि आई है मेरी परम मोक्ष पद पाऊगा॥२७॥
भक्ति भाव से समयसार की मैने पूजन की है देव।
कारण समयसार की महिमा उर मे जाग उठी स्वयमेव॥२८॥
'नम समयसाराय' स्वानुभव ज्ञान चेतनामयी परम।
एक शुद्ध टकोत्कीर्ण, चिन्मात्रपूर्ण चिद्रूप स्वय॥२९॥
नय पक्षो से रहित आत्मा ही है समयसार भगवान
समयसार ही सम्यकदर्शन समयसार ही सम्यकज्ञान ॥३०॥

ऊ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय पूर्णार्घ्य नि ।

दोहा

समयसार के भाव को जो लेते उर धार ।
निज अनुभव को प्राप्तकर हो जाते भवपार ॥

इत्याशीर्वाद:

जाप्य मंत्र - ऊँ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय नमः

निज तत्वोपलब्धि के बिन सम्यक्त्व नहीं होता ।
सम्यक्त्वोपलब्धि के बिन सिद्धत्व नहीं होता ॥

ॐ

श्री कुन्द कुन्द आचार्य पूजन

स्थापना

ताटंक

कुन्द-कुन्द आचार्य देव के चरण कमल में करू नमन।
कुन्द-कुन्द आचार्यदेव की वाणी के उर धरू सुमन॥
कुन्द-कुन्द आचार्य देव की भाव सहित करके पूजन।
निजस्वभाव के साधन द्वारा मोक्षप्राप्ति का करू यतन॥
'परिणामो बधो परिणामो मोक्खो' करू आत्मदर्शन।
सिद्ध स्वपद की प्राप्ति हेतु मैं निज स्वरूप में करूँ रमण॥

ॐ ह्री श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेवाय चरणाग्रेषु पुष्पाजलि क्षिपामि।

अष्टक

ताटंक

समयसार वैभव के जल से उर में उज्जवलता लाऊ।
'दसण मूलोधम्मो' सम्यक्दर्शन निज में प्रगटाऊं॥
कुन्द-कुन्द आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊ।
सब सिद्धो को वंदनकर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊं ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेवाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं नि ।

समयसार वैभव चन्दन से निज सुगन्ध को विकसाऊं।
'वत्थु सहावो धम्मो' सम्यकज्ञान सूर्य को प्रगटाऊ॥
कुन्द-कुन्द आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊं।
सब सिद्धो को वंदनकर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेवाय संसारतापविनाशनाय चन्दन नि ।

समयसार वैभव के उत्तम अक्षत गुण निज में लाऊं।
'चारित्त खलु धम्मो' सम्यक्चारित रथ पर चढ जाऊं॥
कुन्द-कुन्द आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊं।
सब सिद्धों को वदनकर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊ ॥३॥

ॐ ह्री श्री कुन्द-कुन्द आचार्यदेवाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि

जड को जड़ समझे बिन चेतन ज्ञान नहीं होता ।
पूर्ण शुद्धता हुए बिना कल्याण नहीं होता ॥

समयसार वैभव के पावन पुष्पो मे मैं रम जाऊ।
'दाण पूजा मुख्खयसावयधम्मो' शीलस्वगुण पाऊ॥
कुन्द-कुन्द आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊ।
सब सिद्धो को वदनकर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊ॥४॥

ॐ ह्री श्री कुन्द-कुन्द आचार्यदेवाय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि.

समयसार वैभव के मनभावन नैवेद्य हृदय लाऊं॥
जो जाणदि अरिहत' निजज्ञायक स्वभाव आश्रय पाऊ॥
कुन्द-कुन्द आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊ।
सब सिद्धो को वदनकर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊ ॥५॥

ॐ ह्री श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेवाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवद्य नि

समयसार वैभव के ज्योतिर्मय दीपक उर मे लाऊ।
दसण भट्टा-भट्टा' मिथ्या मोह तिमिर हर सुख पाऊ
कुन्द-कुन्द आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊ।
सब सिद्धो को वदनकर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊ ॥६॥

ॐ ह्री श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेवाय मोहान्धकाय विनाशनाय दीप नि

समयसार वैभव की शुचिमय ध्यान धूप उर मे ध्याऊ।
ववहारोभूदत्थो' निश्चय आश्रित हो शिव पद पाऊ॥
कुन्द-कुन्द आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊ।
सब सिद्धो को वदनकर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊ॥७॥

ॐ ह्री श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेवाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूप नि ।

समयसार वैभव के भव्य अपूर्व मनोरम फल पाऊ।
णियम मोक्ख उवायो' द्वारा महामोक्ष पद प्रगटाऊ॥ कुन्द-कुन्द
आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊ।
सब सिद्धों को वदनकर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊ॥८॥

ॐ ह्री श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेवाय महामोक्षफल प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

समयसार वैभव का निर्मल भाव अर्घ्य उरमे लाऊं।
'अहमिक्कोखलुसुद्धो' चिंतनकर अनर्घपद को पाऊं॥ कुन्द-कुन्द

ज्ञायक स्वभाव के सन्मुख हो पुरुषार्थ जीव जब करता है।
जड़ कर्मों की छाया तक को अतर्मुहूर्त में हरता है॥

आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊं।
सब सिद्धों को वंदनकर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊ॥९॥

ॐ ह्री श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेवाय अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं।

जयमाला

तांटंक

मगलमय भगवान वीर प्रभु मगलमय गौतम गणधर।
मगलमय श्री कुन्दकुन्द मुनि, मंगल जैन धर्मसुखकर॥१॥
कन्नड प्रांत बडा दक्षिण मे कोण्डकुण्ड था ग्राम अपूर्व
कुन्दुकुन्द ने जन्म लिया था दो सहस्त्र वर्षो के पूर्व॥२॥
ग्यरह वर्ष आयु थी जब तुमने स्वामी वैराग्य लिया।
श्रेष्ठ महाव्रत धारण करके मुनिपद का सौभाग्य लिया॥३॥
एक दिवस जगल मे बैठे घोर तपस्या में थे लीन।
कचन सी काया तपती थी आत्म ध्यान मे थे तल्लीन॥४॥
उसी समय इक पूर्व जन्म का मित्र देव व्यन्तर आया।
देख तपस्या रत भू पर आ श्रद्धा से मस्तक नाया॥५॥
ध्यानपूर्ण होने पर मुनि ने जब अपनी आखे खोलीं।
देखा देव पास बैठा है बोले तब हित मित बोली॥६॥
धर्म वृद्धि हो, धर्मवृद्धि हो, धर्म वृद्धि हो तुम हो कौन।
हर्षित पुलकित्त गद् गद् होकर तोड़ा तब व्यंतर ने मौन॥७॥
नमस्कार कर भक्ति भाव से पूर्व जन्म का दे परिचय।
पिछले भव मे परम मित्र थे क्षमा करें मेरी अविनय॥८॥
सीमधर स्वामी के दर्शन को विदेह भू जाता हूं।
यही प्रार्थना चले आप भी नम्र विनय मन लाता हूं॥९॥
चिर इच्छा साकार हुई मुनिवर ने स्वर्ण समय जाना।
बोले श्री जिनवाणी सुनकर मुझे लौट भारत आना॥१०॥

कर्म बध का रूप जानकर शुद्धातम का ज्ञान करो ।
पाप पुण्य की प्रकृति विनाशो निज स्वरूप का ध्यान करो॥

मुनि को साथ लिया उसने आकाश मार्ग से गमन किया।
तीर्थकर सर्वज्ञ देव को जा विदेह में नमन किया॥११॥
सीमधर के समवशरण को देखा मन मे हर्षाये।
जन्म जन्म के पातक क्षय कर अनुपम ज्ञान रत्न पाये॥१२॥
सीमधर प्रभु के चरणो मे झुककर किया विनय वन्दन।
प्रभु की शातमधुर छवि रखकर धन्य हुए भारत नन्दन॥१३॥
प्रभु से प्रश्न हुआ लघु मुनिवर कौन कहा से आये हैं।
खिरी दिव्यध्वनि कुन्दकुन्द मुनि भरतक्षेत्र से आये हैं॥१४॥
सीमधर ने दिव्य ध्वनि मे कुन्दकुन्द का नाम लिया।
भव भव के अघ नष्ट हो गए मुनि ने विनय प्रणाम किया॥१५॥
विनयी होकर कुन्द कन्द ने जिनवाणी का पान किया।
अष्ट दिवस रह समवशरण में द्वादशाग का ज्ञान लिया॥१६॥
अक्षय ज्ञान उदधि मन मे भर और हृदय मे प्रभु का नाम।
सीमधर तीर्थकर प्रभु को करके बारम्बार प्रणाम॥१७॥
फिर विदेह से चले और नभ पथ से भारत मे आये।
तीर्थकर वाणी का सार स्व मन मन्दिर मे लहराये॥१८॥
जो सुनकर आये जिनवाणी फिर उसको लिपि रूप दिया।
जगत जीव कल्याण कर निज, ऐसा शास्त्र स्वरूप दिया॥१९॥
राग मात्र को हेय बताया उपादेय निज शुद्धातम ।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर होता चेतन परमातम॥२०॥
समयसार मे निश्चय नय का पावन मय सदेश भरा।
श्री पचस्तिकाय को रचकर द्रव्य तत्व उपदेश भरा ॥२१॥
प्रवचनसार बनाया तुमने भेदज्ञान को बतलाया।
मूलाचार लिखा मुनिजन हित साधु मार्ग को दर्शाया॥२२॥
नियमसार की रचना अनुपम रयणसर गूंथा चितलाय।
लघु सामायिक पाठ बनाया लिखा सिद्धप्राभृत सुखदाय॥२३॥

श्री अष्टपाहुड षट्‌प्राभृत द्वादशानुप्रेक्षा के बोल।
चौरासी पहुड लिक्खे जो ज्ञात नही हमको अनमोल॥२४॥
ताड पत्र पर लिखे -ग्रथ तब सफल हुई चिर अभिलाषा।
जन जन की वाणी कल्याणी धन्य हुई प्राकृत भाषा ॥२५॥
जीवो के प्रति करुणा जागी मोक्ष मार्ग उपदेश दिया।
और तपस्या भूमि बनाकर गिरि कुन्दाद्रि पवित्र किया॥२६॥
अमृतचन्द्राचार्य देव की टीका आत्मख्याति विख्यात।
पद्मप्रभ मलधारि देव की टीका नियमसार प्रख्यात ॥२७॥
श्री जयसेनाचार्य रचित तात्पर्यवृत्ति टीका पावन।
श्री कानजीस्वामी के भी अनुपम समयसार प्रवचन॥२८॥
पद्मनन्दि गुरु वक्रग्रीव मुनि एलाचार्य आपके नाम।
गृद्धपृच्छ आचार्य यतीश्वर कुन्दकुन्द हे गुण के धाम॥२९॥
हे आचार्य आपके गुण वर्णन करने की शक्ति नहीं।
पथ पर चले आपके ऐसी भीतो अभी विरक्ति नहीं ॥३०॥
भक्ति विनय के सुमन आपके चरणो मे अर्पित हैं देव।
भव्य भावना यही एक दिन मै सर्वज्ञ बनू स्वयमेव ॥३१॥
'जीवादी सद्दहण सम्मत्तं' पाऊ प्रभु करू प्रणाम।
इन चरणो की पूजन का फल पाऊ सिद्धपुरी का धाम ॥३२॥

ॐ ह्री श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेवाय अनर्घ्यपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं नि स्वाहा।

दोहा

कुन्दकुन्द मुनि के वचन भाव सहित उरधार
निज आतम जो ध्यावते पाते ज्ञान अपार॥

इत्याशीर्वाद :

जाप्यमंत्र- ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्य देवाय नमः

रुचि विपरीत नाश करने को अब प्रतिकूल दृष्टि से ऊब।
निज अखण्ड ज्ञायक स्वभाव समशिव सुख सागर में ही डूब॥

ॐ

श्री अमृतचंद्राचार्य देव पूजन

स्थापना

छंद रोला

अमृत चद्राचार्य देव को सादर वन्दन ।
है उपाय पुरुषार्थ सिद्धि का निज आनद घन ॥
समयसार मंदिर पर तुमने कलश चढाए ।
लिख लघु तत्त्व स्फोट सु सस्तुति निज मे आए ॥
महाग्रथ पुरुषार्थ सिद्धि हित उपाय रचकर ।
एक सहस वर्ष पूर्व शिव पथ को सचकर ॥
आज आपकी पूजन कर उर समकित लाऊ ।
आप कृपा से सम्यक् ज्ञान हृदय उपजाऊ ॥

ॐ ह्रीं श्री अमृत चद्राचार्य देव अत्र अवतर अवतर सवौष्ट् ।
ॐ ह्रीं श्री अमृत चद्राचार्य देव अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन ।
ॐ ह्रीं श्री अमृत चद्राचार्य देव अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छद हरिगीता

चारित्र सम्यक्त्वाचरण ही हृदय धरना चारिए ।
अब मुझे शुद्धात्मा मे रमण करना चाहिये ॥
आत्म अनुभव जल चढाऊ जन्म मृत्यु विनाश हित ।
अमृतचंद्राचार्य पद वन्दन करूं हो भ्रम रहित ॥

ॐ ह्रीं श्री अमृत चंद्राचार्य ऋषिवरेभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

चारित्र सम्यक्त्वाचरण ही सर्व सुख का मूल है ।
भवातप ज्वर नाश कर्त्ता स्वयं के अनुकूल है ॥
आत्म अनुभव स्वचदन की महक उर को भाग गई ।
अमृतचद्राचार्य की मुद्रा हृदय को भा गई ॥

ॐ ह्रीं श्री अमृतचंद्राचार्य ऋषिवरेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं नि ।

जिसे सम्यक्त्व होता है उसे ही ज्ञान होता है ।
उसे चारित्र होता है उसे निर्वाण होता है ॥

निर्विकल्प प्रभावना से स्वपद अक्षय पाऊगा ।
चारित्र सम्यक्त्वाचरण अतिशीघ्र उर में लाऊंगा ॥
आत्म अनुभव शालि लाऊं शुद्ध भाव हृदय धरू ।
अमृतचद्राचार्य गुरु को भाव से वन्दन करूं ॥

ॐ ह्रीं श्री अमृतचंद्राचार्य ऋषिवरेभ्यो अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत नि ।

चारित्र सम्यक्त्वाचरण श्रेणी मुझे दिलवाएगा ।
शुक्ल ध्यान महान होगा यथाख्यात् सुहाएगा ॥
आत्म अनुभव पुष्प लाऊ बनू निष्कामी विभो ।
अमृतचद्राचार्य तुम को विनय से वदन प्रभो ॥

ॐ ह्रीं श्री अमृतचद्राचार्य ऋषिवरेभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्प नि ।

चारित्र सम्यक्त्वाचरण चिर तृप्ति दाता है परम ।
आत्म अनुभव रस पगे नैवेद्यं पाए है प्रथम ॥
विकट पीडा क्षुधा की अब सहन में असमर्थ है ।
अमृतचंद्राचार्य वाणी प्राप्त कर स्व समर्थ हूं ॥

ॐ ह्रीं श्री अमृतचद्राचार्य ऋषिवरेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

चारित्र सम्यक्त्वाचरण के दीप जगमग ज्योति मय ।
मोहतम का नाश करते जो सदा भवभीतिमय ॥
आत्म अनुभव दीप से हो प्रकाशित अतरग ।
अमृतचंद्राचार्य का मुझ पर चढा है ज्ञान रग ॥

ॐ ह्रीं श्री अमृतचद्राचार्य ऋषिवरेभ्यो मोहन्धकार विनाशनाय दीप नि ।

चारित्र सम्यक्त्वाचरण की धूप निज है धर्म मय ।
बिना इसके सकल सयम है सदा ही कर्म मय ॥
आत्म अनुभव धूप पाकर स्वयं ही निज पद वरें ।
अमृतचद्राचार्य के चरणाम्बुज वन्दन करू ॥

ॐ ह्रीं श्री अमृतचद्राचार्य ऋषिवरेभ्यो अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

चारित्र सम्यक्त्वाचरण ही मोक्ष सौख्य प्रदाय है ।
यही तो शिवमार्ग में अनुभूत मंगलदाय है ॥

पराए द्रव्य को अपना समझ कर दुख उठाता है ।
जगत की मोह ममता मे स्वय को भूल जाता है ॥

आत्म अनुभव रस भरे फल चढाऊगा आज देव ।
अमृतचद्राचार्य का बल मिलेगा मुझको सदैव ॥

ॐ ह्रीं श्री अमृतचद्राचार्य ऋषिवरेभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि ।

चारित्र सम्यक्त्वाचरण की दीप्ति भव दुख हार है ।
महाव्रत का जनक है यह पूर्ण शिव सुख कार है ॥
आत्म अनुभव अर्घ्य का ही किया है सचय विभो ।
अमृतचद्राचार्य बल से पद अनर्घ्य मिले प्रभो ॥

ॐ ह्री श्री अमृतचद्राचार्य ऋषिवरेभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

महाअर्घ्य

छद ताटक

हर पर्वत पर रत्न न मणिमय हर गज मे ना गज मुक्ता।
हर वन में चदन तरु दुलर्भ भू सर्वत्र न मुनि युक्ता ॥
सब सर्पो मे सुमणि नहीं है सब पृथ्वी उर्वरा नही ।
नही बरसते है सब बादल सबको ही निर्जरा नही ॥
निज कल्याण भाव के मणि स्तभ सुगुरु ऋषि नमन करू।
तजू जघन्याचरण अनैतिक पाप ताप सताप हरू ॥
आत्म प्रकाश महा कठिनाई से प्रकाश मे आता है ।
आता है तो नहीं मानता शीघ्र मोक्ष ले जाता है ॥
अत आज मै सर्वऋषीश्वर को करता हू सतत प्रणाम।
पूजन करके आत्म प्रकाश प्रकट कर पाऊगा ध्रुवधाम॥
अमृतचद्राचार्य देव को महाअर्घ्य अर्पित करके ।
मोक्षमार्ग पर अब आ जाऊ मिथ्या विभ्रम को हर के ॥

ॐ ह्री श्री अमृत चद्राचार्य देवाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय महाअर्घ्यं नि ।

जयमाला

छंद मत्त सवैया

शुद्धात्तम तत्त्व मे लीन श्रमण सयमी मोक्ष फल पाता है।
हो नियत शील आचरण युक्त निज परम विसिद्धि पोषता है॥

पुण्य से ही निर्जरा होती अगर तो ।
हो गया होता अभी तक मोक्ष कबका ॥

जो आत्म कमल की केसर मे राजित रहते आनंद सहित।
जन्मार्णव लोक मुक्ति पाते हो जाते हैं संसार रहित ॥
सर्वोत्तम ज्ञान पिंड पाकर जो पुन पुन होते सराग ।
कैसी समग्रधी है उनकी कैसे होगे वे वीतराग ॥
जो शुद्ध ज्ञान दीपक द्वारा मुनि बन करते हैं कर्मनाश।
है वन्दनीय शुद्धात्म तत्त्व केवल रवि करते हैं प्रकाश ॥
वह सहज तत्त्व जयवत सदा सम्पूर्ण अनाकुल ना दुर्लभ।
समकिती जीव को समता गृह है परम कलाभूषित सुसुलभ॥
निज गुण पा साधु प्रफुल्लित है है सतत निरतर आत्म लीन।
है शुद्ध ज्ञान गृह आवासी शिव निरावरण भव रज विहीन॥
जिन पति के पथ मे कहे गए तू भेद जाल को ले पिछान।
फिर इससे बाहर आने को पर भाव त्याग कर आत्म ध्यान॥
मोहान्धकार से बाहर आ भव भाव त्याग भज निज स्वभाव।
इस विधि से तेरे कर्मो का हो जाएगा पूरा अभाव ॥
पा अमृतचद्राचार्य देव की पावन वाणी का प्रताप ।
कर्मो का क्षय करने को मैं हर लू सारा ससार ताप ॥
श्री अमृतचद्राचार्य सूरि मुनि सघो के है चद्र श्रेष्ठ ।
उनकी पूजन करके हर ले ससार भाव सम्पूर्ण नेष्ठ ॥

ॐ ह्रीं श्री अमृत चद्राचार्य देवाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि ।

आशीर्वाद

दोहा

अमृतचद्राचार्य के वचन परम हितकार ।
अगीकृत करके हृदय पाओ ज्ञान अपार ॥

इत्याशीर्वाद :

पर कर्तृत्व विकल्प त्याग कर, सकल्पो को दे तू त्याग।
सागर की चचल तरग सम तुझे डुबा देगा तू भाग ॥

विधानों के मंडल मांडने की विधि

विधान करने वाले बधुओं के जब तब पत्र आते रहते हैं कि विधान का मडल माडने की विधि और उसका नक्शा विधानो में देना चाहिए। अत सभी विधानो के मडल माडने की विधि लिख रहे हैं । यह सरल विधि सभी विधानो के लिए मार्ग दर्शन देगी ।

१ प्रथम विधान का नाम लिखे ।

२ फिर गोलाकार या त्रिकोण अथवा चौकौण रेखाएं बनाए । स्थान के अनुसार

३ फिर विधान मे जितने अधिकार या पूजने हो उनके उतने खाने बनाए आवश्यकतानुसार छोटे या बडे ।

४ प्रत्येक खाने में उस अधिकार में जितनी गाथाए या श्लोक हो उनके उतने चिन्ह स्वस्तिक

श्री, ॐ, कलश, पुष्प आदि कोई भी हो सकते हैं ।

बस यह विधान का मडल तैयार हो गया ।

नीचे विधान का जाप्य मत्र लिख दे ।

मडल विविध चटकीले रगो का बनाए जो उत्तम हो ।

माडने पर द्रव्य न चढाए । धूप, अग्निमे न खेए, हरित पुष्प फल आदि न चढाए सभी द्रव्य शुद्ध प्रासुक ही चढाऐं ।

श्रीफल के स्थान पर गोला ही चढाएं ।

मडल को कलश ध्वज आदि वसु मगल द्रव्यो से सजाए बस मंडल बनाने की यही विधि है ।

विधान की विधि विधान आचार्य से कराये ।

जो अकषाय भाव के द्वारा सर्व कषाये लेगा जीत ।
मुक्ति वधू उसको वरने आएगी उर में धर कर प्रीत ॥

समयसार कलश

बीजाक्षर ध्यानसूत्र

लेखिका क्षुल्लिका श्री सुशीलमति जी (महाराष्ट्र)

समयसार कलश के हरेक श्लोक पर बीजाक्षर और ध्यानसूत्र दिये हैं । बीजाक्षर मे निजात्म स्वरूपाय नम के साथ जो विशेष धर्म दिया है उसकी मुख्यता से अखंड वस्तु को जानना ही बीजाक्षर का प्रयोजन है। नम का प्रयोजन नमस्कार से है । नमस्कार दो प्रकार का होता है १ अद्वैत नमस्कार जहा वंद्य वंदक भाव नही है ऐसी स्व को जानने की दशा । प्रत्यक्ष प्रमाण्य सहित स्व ज्ञानानद स्वभाव का अतीन्द्रिय आनद लूटना ही अद्वैत नमस्कार हैं । २ द्वैत नमस्कार यहॉ वद्य वदक भाव है । अरिहंत भगवान वंदन करने के योग्य वद्य हैं और मै वदना करने वाला वदक हूँ ऐसा द्वैत भाव जहॉ है । वह द्वैत नमस्कार है ।

जब समयसार कलश का विधान करना है तब श्लोक और श्लोक का अर्थ बोलकर बीजाक्षर बोलना । और बीजाक्षर मे नम के स्थान पर अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ऐसा बोलना और आगे बीजाक्षर और ध्यान मत्र कहकर वैसी प्रतीति करना । अतीन्द्रयानद भोगने का प्रक्टीकल/प्रयोग करना ।

विधान का अर्थ ही यह है कि विधान = विधा=विशेष, रूप से + अपना उपयोग स्वभाव मे धारण करना/ लगाना ही निश्चयनय से विधान हैं, और विकल्प की भूमिका मे सहज ही पूजा रूप से अर्घ्य चढाना हो जाता है ।

नम : समयसाराय

राजमल पवैया रचित शताधिक पुस्तकों में से कुछ पुस्तकें

१ चतुर्विंशति तीर्थंकर विधान
२ तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्र विधान
३ सम्मेद शिखर विधान
४ वृहद् इन्द्रध्वजमडल विधान
५ शान्ति विधान
६ विद्यमान बीस तीर्थंकर विधान
७ चौसठ ऋद्धि विधान
८ पंचमेरु विधान
९ नदीश्वर विधान
१० जिन गुण सपत्ति विधान
११ तीर्थंकर महिमा विधान
१२ याग मडल विधान
१३ पचपरमेष्ठी विधान
१४ पच कल्याणक विधान
१५ कर्म दहन विधान
१६ जिन सहस्रनाम विधान
१७ कल्पद्रुम विधान
१८ गणधर वलय ऋषिमडल विधान
१९ जैन पुजाजलि
२० तीर्थ क्षेत्र पुजाजलि
२१ श्रुत स्कध विधान
२२ पूजन किरण
२३ पूजन पुष्प
२४ पूजन दीपिका
२५ पूजन ज्योति
२६ मगल पुष्प ब्दतीय
२७ मगल पुष्प द्वितीय
२८ मगल पुष्प तृतीय
२९ समकित तरंग
३० नित्यपाठ अपूर्व अवसर
३१ तीस चौबीसी विधान
३२ आदिनाथ भरत बाहुबलि पूजन
३३ आदिनाथ शातिनाथ
३४ शाति कुन्थु अरनाथ
३५ शाति पार्श्व महावीर
३६ नेमि पार्श्वनाथ महावीर
३७ गोम्मटेश्वर बाहुबलि
३८ भगवान महावीर
३९ जैन धर्म सार्व धर्म
४० वीरों का धर्म
४१ जन मगल कलश
४२ जीवन दान
४३ सिद्ध चक्र वदना
४४ तीनलोक तीर्थ यात्रा गीत
४५ भक्तामर विधान
४६ चतुर्विंशति स्तोत्र
४7 जिनेन्द्र चालीसा सग्रह
४८ चतुर्दश भक्ति
४९ जिन सहस्रनाम हिन्दी
५० जिन वदना
५१ मुनि वन्दना
५२ आत्म वन्दना
५३ पचास्तिकाय विधान
५४ अनुभव
५५ परमब्रह्म
५६ सैतालीस शक्ति विधान
५७ कुन्दकुन्द महिमा
५८ कुन्दकुन्द वाणी
५९ इन्द्रध्वज विधान
६० एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान
६१ कुन्दकुन्द वचनामृत
६२ श्री कल्पद्रुम मंडल विधान
६३ श्री तत्वार्थ सूत्र विधान
६४ श्री दसलक्षण विधान
६५ श्री प्रवचन सार विधान
६६ श्री नियमसार विधान
६७ श्री अष्टपाहुड़ विधान
६८ श्री समयसार विधान
६९ श्री रत्नकरंड श्रावकाचार विधान
७० श्री परमात्म प्रकाश विधान
७१ श्री षटखडागम सत्प्ररूपणा विधान
७२ कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान
७३ श्री पुरुषार्थ सिद्धि उपाय विधान
७४ श्री योगसार विधान
७५ श्री द्रव्य सग्रह विधान
७६ श्री कसायपाहुड विधान
७७ समाधि शतक विधान
७८ श्री गोम्मटसार विधान
७९ श्री समयसार कलश विधान
८० श्री पद्मनन्दि श्रावकाचार विधान
८१ श्री धर्मोपदेशामृत विधान
८२ तत्वानुशासन विधान

सकल विकल्प वमन करके जो निज स्वभाव में रमता है ।
वही अतीन्द्रिय सुखपाता है सिद्ध शिला पर जमता है ॥

मंगलाचरण

अनुष्टुप

मगल सिद्ध परमेष्ठी मगल तीर्थकरम् ।
मगल शुद्ध चैतन्य आत्म धर्मोस्तु मगलम् ॥
नम समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभाव भावाय सर्वभावान्त रच्छिदे ॥
अनतधर्मणस्तत्त्व पश्यती प्रत्यगात्मन् ।
अनेकान्मयी मूर्त्ति नित्यमेव प्रकाशताम् ॥
मगल पूज्य नव देव सर्व सौख्य प्रदायकम् ।
मगल शुद्ध वैराग्य मोक्ष तत्त्व सुमगलम् ॥

छद-चामर

वीतराग श्री जिनेन्द्र ज्ञान रूप मगलम् ।
गणधरादि सर्वसाधु ध्यानरूप मगलम् ॥
वस्तु का स्वभाव ही अनाद्यनत मगलम् ।
आत्म धर्म वस्तु धर्म सार्वधर्म मगलम् ॥

सोरठा

ज्ञान पयोनिधि रूप शुद्धात्मा मगलमयम् ।
पाऊ ज्ञान अनूप आत्म धर्म मगलमयम् ।
परमार्थ स्वरूपोहम् , शुद्धात्म स्वरूपोहम् , परमात्म स्वरूपोहम्॥

दोहा

जयति पच परमेष्ठी जिन प्रतिमा जिनधाम ।
जय जगदम्बे दिव्य ध्वनि श्री जिन धर्म प्रणाम ॥
जयति सिद्ध परमेष्ठी जय जिनेन्द्र जगदीश ।
जय जिनवाणी दिव्य ध्वनि सदा झुकाऊँ शीष ॥

सत्यार्थ स्वरूपोहम्

पुष्पाजलि क्षिपामि

संवर का संगीत श्रवण कर आस्रव हो जाता अवरुद्ध ।
चरण निर्जरा जब पखारती चेतन हो जाता है शुद्ध ॥

पीठिका

वीरछंद

कुन्द कुन्द आचार्य रचित है समयसार जिन ग्रंथ महान।
नव अधिकारो से भूषित है यह ग्रंथाधिराज गुणवान ॥
दो सहस्र वर्षो के पूर्व हुए है कुन्दकुन्द ऋषिराज ।
सहज कलश टीका के लेखक अमृतचद्र सूरि मुनिराज ॥
ग्यारह सौ वर्षो के पहिले हुए श्री आचार्य प्रधान ।
समयसार मंदिर पर कलश चढाए स्वर्ण समान महान ॥
अमृत चंद्र सूरि है जिन का नाम बडा ही श्रेष्ठ प्रधान।
निज अनुभव रस के प्रेमी थे, सतत् निरंतर करते पान॥
ज्ञान भावना भाते थे मुनि स्वानुभूतिमय परम महान ।
उनके चरण कमल वंदन कर लिखता हू मै आज विधान॥
श्री आचार्य कृपा से होगा कार्य सफल मेरा भगवान ।
इस विधान का फल सब पाएँ भव्य जनो के जागे प्राण॥
समयसार निज कलश प्राप्त कर सभी करे अपना कल्याण ।
कोई दुखी न हो धरती पर सभी सुखी हो वैभववान ॥
आत्म ज्ञान की महा प्रभा पा सब ही पाएँ पद निर्वाण ।
ज्ञानभावना की महिमा से स्वानुभूति हो हृदय महान ॥

पुष्पांजलि क्षिपामि

ॐ

श्री समयसार कलश विधान

समयसार कलश की संस्कृत टीका परमाध्यात्म तरंगिणी के रचयिता

सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य शुभचद्र

समयसार की आत्मख्याति टीका एव समयसार कलश के रचयिता
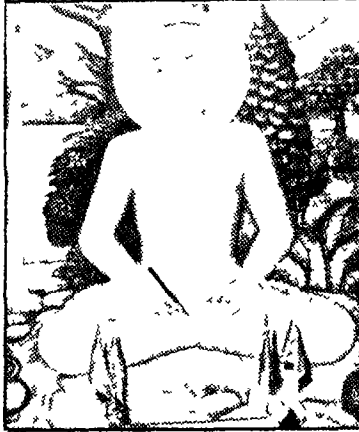
आचार्य अमृत चंद्र सूरि

समयावधि दसवीं शताब्दी

ॐ

श्री समयसार कलश विधान

आत्म, वैभव सैतालीस शक्ति
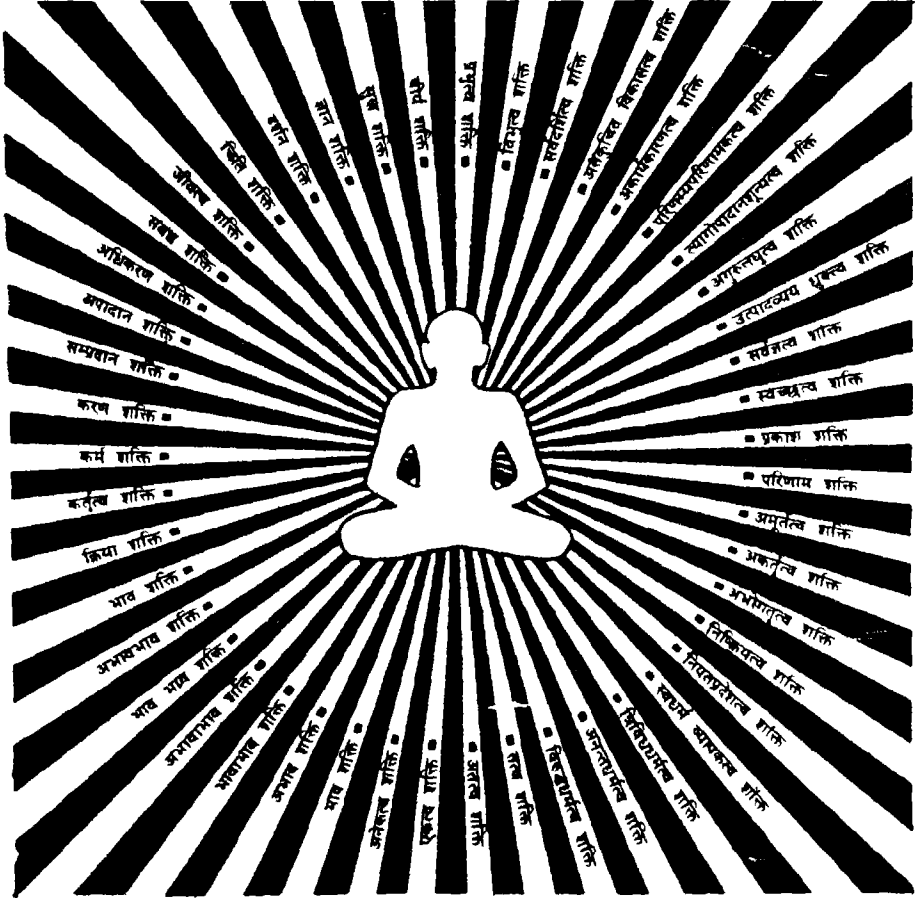
शक्ति अनंतानंतों का सम्राट हमारा शुद्धात्मा ।
एकमात्र त्रैकालिक ध्रुव है गुण अनंत पति परमात्मा ॥

चिन्मय ज्योति स्वरूप आत्मा सहज अभेद अनूप अखड ।
सहज स्वसत्व मात्र अविनाशी दिव्य ज्योति सपूर्ण प्रचड ॥

श्री समयसार कलश विधान

समुच्चय पूजन

स्थापना

गीतिका

समयसार कलश पठन कर प्राप्त कर लू समयसार।
स्वानुभूति महान हो प्रभु ह्रदय हो आनद अपार ॥
अधिकार नौ की करू पूजन आत्मा निज प्राप्त हो ।
अतरग महान के भीतर सहज सुख व्याप्त हो॥

ॐ ह्री समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथ अत्र अवतर अवतर सवौषट् ।

ॐ ह्री समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथ अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन ।

ॐ ह्री समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथ अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

गीतिका

जन्म मरण विनाश करने के लिए आया प्रभो ।
नीर सम्यक् ज्ञान धारा का अभी लाया विभो ॥
समयसार स्व कलश की पूजन करू भव दुख हरू।
समय का ही सार पाऊँ शाश्वत निज सुख वरूँ ॥

ॐ ह्री समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

भवातप का नाश करके परम शीतलता वरू ।
ज्ञान की अनुभूति द्वारा सकल कल्मषता हरू ॥

यदि प्रमाद विरहित प्रज्ञा है तो फिर दूर न निज कल्याण ।
यदि प्रमाद साम्राज्य हृदय मे तो ससार भ्रमण ही मान ॥

समयसार स्व कलश की पूजन करू भव दुख हरू।
समय का ही सार पाऊँ शाश्वत निज सुख वरूँ ॥

ॐ ह्री समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथाय ससारताप विनशनाय चदन नि ।

प्राप्त अक्षय पद करू निज, भव समुद्र अभी तरू ।
कर्म के इन बंध भावो को प्रभो पूरा हरू ॥
समयसार स्व कलश की पूजन करू भव दुख हरू।
समय का ही सार पाऊँ शाश्वत निज सुख वरूँ ॥

ॐ ह्रीं समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत नि ।

कामबाण विनाश करने के लिए गुण शील है ।
सहजता का श्रृग है निष्काम है गुण झील है ॥
समयसार स्व कलश की पूजन करू भव दुख हरू।
समय का ही सार पाऊँ शाश्वत निज सुख वरूँ ॥

ॐ ह्री समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथाय कामबाण विनाशनाय पुष्प नि ।

क्षुधा रोग विनाश हित निज ज्ञान चरु लाया विभो ।
परम तृप्त स्वभाव पाऊँ आत्म निज ध्याऊ प्रभो ॥
समयसार स्व कलश की पूजन करू भव दुख हरू।
समय का ही सार पाऊँ शाश्वत निज सुख वरूँ ॥

ॐ ह्री समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथाय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

मोह भ्रम तम नाश करके प्राप्त हो कैवल्य ज्ञान ।
ज्ञेय सारे ज्ञान मे झलके रहू मै दीप्तिमान ॥

जो निजात्म को शुद्ध जानता वही शुद्धता पाया है ।
जो अशुद्ध जानता आपको वह अशुद्धता पाता है ॥

समयसार स्व कलश की पूजन करु भव दुख हरु।
समय का ही सार पाऊँ शाश्वत निज सुख वरूँ ॥

ॐ ह्री समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित समयसार कलश ग्रथाय मोहन्धकार विनाशनाय दीप नि ।

अष्टकर्म विनाश हित यह धूप लाया हू विभो ।
स्वानुभूति महान का विश्वास जागा है विभो ॥
समयसार स्व कलश की पूजन करुं भव दुख हरुं।
समय का ही सार पाऊँ शाश्वत निज सुख वरूँ ॥

ॐ ह्री समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथाय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

मोक्ष फल की प्राप्ति का पुरुषार्थ ही पुरुषार्थ है ।
एक निश्चय भूत आत्मा ही परम भूतार्थ है ॥
समयसार स्व कलश की पूजन करु भव दुख हरु।
समय का ही सार पाऊँ शाश्वत निज सुख वरूँ ॥

ॐ ह्री समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथाय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

अर्घ्य लाया हू मनोहर पद अनर्घ्य मिले अभी ।
हृदय मेरा बद है जो सहज शान्त खिले अभी ॥
समयसार स्व कलश की पूजन करु भव दुख हरु।
समय का सार पाऊँ शाश्वत निज सुख वरूँ ॥

ॐ ह्रीं समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

सम्यक्दर्शन की घातक है अनन्तानुबधी की चाल ।
एक देश सयम घातक अप्रत्यख्यानावरणी ज्वाल ॥

महाअर्घ्य

गीतिका

मिथ्यात्व का किंपाक फल अति मिष्ट किन्तु अनिष्ट है।
ज्ञान फल कटु नीम सम है किन्तु पूरा इष्ट है ॥
महा सुखदायी निजातम पूर्ण पूर्ण प्रकृष्ट है ।
इसलिए छद्मस्थ इसके प्रति अधिक आकृष्ट है ॥
ज्ञान की जो भावना भाता वही उत्कृष्ट है ।
ज्ञानधारी है इसी से क्रिया सर्व प्रकृष्ट है ॥
मोह की अमराइयो मे तो महान अनिष्ट है ।
चार गतियो का जनक है यह महान अरिष्ट है ॥
महाअर्घ्य महान अर्पित करू भव बधन हरू ।
आज अनुभव रस अनूठा पूर्णत उर मे धरू ॥

ॐ ह्रीं समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथाय महाअर्घ्यं नि ।

जयमाला

रोला

अजर अमर अविकल अविनाशी मेरी आत्मा ।
नित्य निरजन भव दुख भजन है परमात्मा ॥
मोक्षमार्ग पर आया है बन अतरात्मा ।
हो जाएगा एक दिवस निश्चित सिद्धात्मा ॥
जीव अजीव न इसे जानने मे आता था ।
यह तो सदा विभाव भाव में रम जाता था ॥
निज बल लेकर जब स्वभाव के भीतर आता ।
हो जाता है एकमात्र यह दृष्टा ज्ञाता ॥

पूर्ण देश सयम में घातक प्रत्याख्यानावरणी जाल ।
यथाख्यात चारित मे घातक सदा सज्ज्वलन का जजाल ॥

ज्ञाता दृष्टा बनते ही पा लेता सयम ।
फिर तो शिव पद को पाता है बिना किसी श्रम ॥
नही किसी के बहकाने मे आता पल भर ।
निश्चित अपने पथ पर चलता है धीरज धर ॥
मोक्ष मार्ग जब हो जाता है पूर्ण भावमय ।
तब यह स्वय सिद्ध हो जाता निज स्वभावमय ॥
नही किसी विधि के विधान से बधा हुआ है ।
नही किसी पर द्रव्यादिक से रंधा हुआ है ॥
यह स्वतत्र स्वाधीन शाश्वत उंज्ज्वल पावन ।
गुण अनत निज का गणतत्र परम मन भावन ॥
निज चैतन्य प्रदशो मे ही आत्मा रहता ।
अपनी मर्यादा मे यह सागर सम बहता ॥
इसे प्राप्त करने का ही मेरा निश्चय है ।
ध्येय त्रिकाली ध्रुव का ही निर्मल शिवमय है ॥

ॐ ह्री समयसारव्याख्या स्वरूप आत्म ख्याति टीका समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि ।

आशीर्वाद :

समयसार के कलश ही करते निज कल्याण ।
आत्म शक्ति कर जाग्रत देते पद निर्वाण ॥

इत्याशीर्वाद :

मदोन्मत्त जीव ही होता अप्रतिबुद्ध राग मैं चूर ।
दर्शमोह जय करने वाला प्राणी रागो से अतिदूर ॥

पूर्वरंग पूजन

अर्ध कुन्डलिया

पूर्वरग जाने बिना कभी न होता ज्ञान ।
रहता है मिथ्यात्व ही रच न निज श्रद्धान ॥
रच न निज श्रद्धान जीव को पल भर होता ।
अत नही मिथ्यात्व भाव को पूरा खोता ॥
जब सम्यक् दर्शन की महिमा उर मे भाती ।
स्वानुभूति स्वयमेव नाचती गाती आती ॥

ॐ ह्रीं पूर्वरग समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथ अत्र अवतर अवतर सवौषट् ।
ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथ अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन ।
ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित श्री समयसार कलश ग्रंथ अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

वीरछंद

उज्ज्वल पावन नीर ज्ञानमय त्रिविध रोग करता है नाश।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति करते ही होता पूर्ण प्रकाश ॥
पूर्वरग निज समयसार का जान आत्मा को ध्याऊ ।
अपने समयसार को जानू समयसार मय बन जाऊ॥

ॐ ह्रीं पूर्वरग समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथ जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

शीतल निजमय चदन द्वारा भव आतप का करू विनाश ।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति करते ही होता पूर्ण प्रकाश ॥
पूर्वरंग निज समयसार का जान आत्मा को ध्याऊ ।
अपने समयसार को जानू समयसार मय बन जाऊ॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथ ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

परज्ञेयों से परे सहज चैतन्य स्वभाव मात्र तेरा ।
इसका ही अनुभव करने से मिट जाता भव का फेरा ॥

ज्ञानमयी अक्षत से मिलता है अक्षय पद का आकाश।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति करते ही होता पूर्ण प्रकाश ॥
पूर्वरंग निज समयसार का जान आत्मा को ध्याऊं ।
अपने समयसार को जानूं समयसार मय बन जाऊं ॥

ॐ ह्रीं पूर्वरग समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथ अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत नि ।

ज्ञान भाव पुष्पों के द्वारा होता कामबाण का नाश ।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति करते ही होता पूर्ण प्रकाश ॥
पूर्वरग निज समयसार का जान आत्मा को ध्याऊ ।
अपने समयसार को जानू समयसार मय बन जाऊं ॥

ॐ ह्रीं पूर्वरग समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथ कामबाण विनाशनाय पुष्प नि ।

ज्ञान भाव नैवेद्य शक्ति से क्षुधारोग का होता नाश ।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति करते ही होता पूर्ण प्रकाश ॥
पूर्वरग निज समयसार का जान आत्मा को ध्याऊ ।
अपने समयसार को जानू समयसार मय बन जाऊ ॥

ॐ ह्रीं पूर्वरग समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथ क्षुधारोग विनाशना नैवेद्य नि ।

ज्ञान दीप के नव प्रकाश से मिथ्यातम का होता नाश ।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति करते ही होता पूर्ण प्रकाश ॥
पूर्वरग निज समयसार का जान आत्मा को ध्याऊं ।
अपने समयसार को जानूं समयसार मय बन जाऊं ॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश ग्रंथ मोहन्धकार विनाशनाय दीप नि ।

ज्ञान धूप की ही सुगंध से वसु कर्मो का होता नाश ।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति करते ही होता पूर्ण प्रकाश ॥
पूर्वरग निज समयसार का जान आत्मा को ध्याऊं ।
अपने समयसार को जानूं समयसार मय बन जाऊ ॥

द्रव्यलिंग को मोक्षमार्ग मानना पूर्णत है अज्ञान ।
भावलिग बिन मुक्ति पंथ का होता कभी नही निर्माण ॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथ अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

ज्ञान भाव फल से मिलता है महामोक्ष का फल अविनाश।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति करते ही होता पूर्ण प्रकाश ॥
पूर्वरग निज समयसार का जान आत्मा को ध्याऊ ।
अपने समयसार को जानू समयसार मय बन जाऊ॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित समयसार कलश ग्रथ मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

ज्ञान अर्घ्य के द्वारा मिलता पद अनर्घ्य का परम निवास ।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति करते ही होता पूर्ण प्रकाश ॥
पूर्वरग निज समयसार का जान आत्मा को ध्याऊ ।
अपने समयसार को जानू समयसार मय बन जाऊ॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित श्री समयसार कलश ग्रथ अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

अर्घ्यावलि

(पूर्वरग)

(१)

प्रथम, सस्कृत टीकाकार श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव ग्रन्थ के प्रारम्भ मे मगल के लिए इष्टदेव को नमस्कार करते है -

अनुष्टुप

नम: समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावातरच्छिदे ॥१॥

अर्थ- 'समय' अर्थात् जीव नामक पदार्थ, उसमे सार जो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित शुद्ध आत्मा-उसे मेरा नमस्कार हो । वह कैसा है? शुद्ध सत्तास्वरूप वस्तु है । इस विशेषण पद से सर्वथा अभाववादी नास्तिको का मत खडित हो गया । और वह कैसा है ? जिसका स्वभाव चेतनागुणरूप है । इस विशेषण से गुण-गुणीका सर्वथा भेद मानने वाले नैयायिको का निषेध हो गया । और वह कैसा है ? अपनी ही अनुभव रूप

अशुचि देह से भिन्न आत्मा का जो करते सदैव ध्यान ।
सर्व भाव के ज्ञानी हो पाते हैं सहज मुक्ति निर्वाण ॥

करता है। इस विशेषण से, आत्मा को तथा ज्ञान को सर्वथा परोक्ष ही मानने वाले जैमिनीय-भट्ट-प्रभाकर के भेदवाले मीमासको के मतका खडन हो गया। तथा ज्ञान अन्य ज्ञान से जाना जा सकता है- स्वय अपने को नही जानता, ऐसा मानने वाले नैयायिको का भी प्रतिषेध हो गया । और वह कैसा है ? स्वत अन्य सर्व जीवाजीव, चराचर पदार्थों को सर्व क्षेत्र काल सम्बन्धी सर्व विशेषणो के साथ एक ही समय मे जानने वाला है । इस विशेषण से, सर्वज्ञ का अभाव मानने वाले मीमासकअ आदि का निराकरण हो गया । इस प्रकार के विशेषणो से शुद्ध आत्मा को ही इष्टदेव सिद्ध करके (उसे) नमस्कार किया है ॥१॥

१ ॐ ह्री सर्वभावन्तररहित चित्स्वभावाय नम ।

समयसारस्वरूपोऽहं

तांटक

समयसार को नमन करू मै जगमग आत्म ज्योति पाऊ।
चित्स्वभाव से सर्वभवान्तर क्षयकर निज पद प्रगटाऊ ॥
समयसार रस कलश भरू उर आत्म तेज पाऊ मै आज।
समयसार का सार प्राप्त कर पाऊ अपना सिद्ध समाज॥
कुन्दकुन्द मुनि अमृतचद्राचार्य देव को करूं नमन ।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊ भाव सहित भगवान॥१॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२)

अब सरस्वती को नमस्कार करते हैं-

अनुष्टुप्

अनंतधर्मणस्तत्त्वं पश्यंती प्रत्यगात्मनः ।
अनेकांतमयी मूर्त्ति नित्यमेव प्रकाशताम् ॥

अर्थ- जिसमे अनेक अन्त है ऐसे जो ज्ञान तथा वचन उसमयी मूर्ति सदा ही प्रकाशरूप

शुद्धज्ञानमय सर्व जीव है ऐसा ही निश्चय समभाव ।
यही श्रेष्ठ सामायिक जानो यही श्रेष्ठ है आत्म स्वभाव ॥

हो । जो अनन्त धर्मोवाला है और परद्रव्यो से तथा परद्रव्यो के गुण-पर्यायो से भिन्न एवं परद्रव्य के निमित्त से होने वाले अपने विकारो से कथचित् भिन्न एकाकार है, ऐसे आत्मा के तत्त्व को अर्थात् असाधारण-सजातीय विजातीय द्रव्यो से विलक्षण-निजस्वरूप को वह मूर्ति अवलोकन करती है ॥२॥

२ ॐ ह्री ज्ञानाद्यनतधर्मस्वरूपचित्स्वभावाय नम ।

प्रकाशशक्तिसंपन्नोऽहं

वीरछद

धर्म अनंत बताने वाली अनेकान्तमय मूर्त्ति महान ।
नित्य प्रकाशित हो अतर मे सकल ज्ञेय ज्ञायक भगवान॥
जिसमे धर्म अनत बसे है निज का करती अवलोकन।
सजातीय अरु विजातीय द्रव्यो से भिन्न ज्ञान लक्षण ॥
यही मूर्त्ति है सरस्वती की निर्मल सम्यक् ज्ञान स्वरूप।
यही साधती है सत्यार्थ स्वरूप स्यात् पद से अनुरूप ॥
सदा प्रकाश रूप अतर मे रहो हमारे हे माता ।
सबका ही कल्याण करो माँ तुम ही त्रिभुवन विख्याता॥
कुन्दकुन्द मुनि अमृतचद्राचार्य देव को करू नमन ।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊ भाव सहित भगवन॥२॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(३)

अब टीकाकार इस ग्रथ का व्याख्यान करने का फल चाहते हुए प्रतिज्ञा करतेहैं -

अनुष्टुप्

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः ।
मम परम विशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्त-
र्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ॥३॥

राग द्वेष के त्याग पूर्वक होता सामायिक चारित्र ।
उत्तम शुद्ध भाव जाग्रत हो रहता ज्ञायक परम पवित्र ॥

अर्थ- श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव कहते हैं कि इस समयसार की व्याख्या से ही मेरी अनुभूति की अर्थात् अनुभवनरूप परिणतिकी परमविशुद्धि हो । कैसी है यह मेरी परिणति? परपरिणति का कारण जो मोह नामक कर्म है, उसके अनुभाव (उदयरूप विपाक) से जो अनुभाव्य की व्याप्ति है, उससे निरन्तर कल्माषित अर्थात् मैली है । और मैं द्रव्यदृष्टि से शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ । ॥३॥

३ ॐ ह्री मोहानुभावरहितशुद्ध चिन्मात्राय नम ।

नित्यनिर्मोहस्वरूपोऽह

ताटंक

समय सार व्याख्या से मेरी परिणति परम विशुद्ध बने।
मोह कर्म से जो कल्माषित अब तो पूरी शुद्ध बने ॥
मै चैतन्य मात्र शुद्ध हू द्रव्य दृष्टि से सदा त्रिकाल ।
वर्त्तमान पर्याय दोष को क्षय कर पाऊ स्वपद विशाल ॥
कुन्दकुन्द मुनि अमृतचद्राचार्य देव को करू नमन ।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊ भाव सहित भगवन॥३॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४)

इसी अर्थ का कलशरूप काव्य टीकाकार कहते है.-

मालिनी

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके
जिनवचसि रमते ये स्वयं वांतमोहाः ।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षंत एव ॥४॥

अर्थ- निश्चय और व्यवहार-इन दो नयो के विषय के भेद से परस्पर विरोध है, उस विरोध का नाश करने वाला 'स्यात्'-पद से चिह्नित जो जिन भगवान का वचन है उसमे जो पुरुष

जिन आज्ञा का पथ्य ग्रहण कर भ्रमण रोग मिट जाएगा ।
जिन आगम की औषधि पीले शुद्ध सिद्ध बन जाएगा ॥

रमते हैं वे अपने आप ही मिथ्यात्वकर्म के उदय का वमन करके इस अतिशयरूप परम ज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्मा को तत्काल ही देखते है। वह समयसार रूप शुद्ध आत्मा नवीन उत्पन्न नहीं हुआ , किन्तु पहले कर्मों से आच्छादित था सो वह प्रगट व्यक्ति रूप हो गया है । और वह सर्वथा एकान्तरूप कुनय के पक्ष से खण्डित नही होता, निर्बाध है।।४।।

४ ॐ ह्री नयपक्षरहितशुद्धसमयसाराय नम ।

ज्ञानज्योतिस्वरूपोऽहं

ताटंक

दोनो नय के विरोध क्षय हित अनुपम स्याद्वाद पद्धति।
जो अपनाते स्यात् शब्द को वे ही होते प्रमुदितमति ॥
जिनवचनो मे जो रमते हैं वे ही मोह वमन करते ।
स्वय मोह को निष्काषित कर राग ध्वान्त पूरा करते ॥
जो कर्मो से आच्छादित था वह ही प्रकट हुआ निजरूप।
कुनय पक्ष से रच न खडित है निर्बाध निजात्म स्वरूप॥
आत्म स्वभाव रहित परभावो से है परम शुद्ध आपूर्ण ।
सदा मुक्त अद्वैत एक ध्रुव गुण अनत सागर से पूर्ण ॥
सब सकल्प विकल्प विलय हो जाते ज्ञान ज्योति पाकर।
ज्योति शुद्ध नय पाकर चेतन हर्षित है निज रस पीकर॥
एक आत्मा के स्वभाव को छोड सभी तो है परभाव ।
एकमात्र ध्रुव त्रैकालिक है अपना शाश्वत शुद्ध स्वभाव॥
एक शुद्ध कहता आत्मा को एक अशुद्ध बताता नय ।
किन्तु आत्मा शुद्ध अशुद्ध विकल्प आदि से रहित अनय ॥
ज्ञानी अज्ञानी का अतर नहीं जानता अज्ञानी ।
ज्ञानी अज्ञानी का अतर जान रहा आगम ज्ञानी ॥

कुन्दकुन्द मुनि अमृत चंद्राचार्य देव को करूं नमन ।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊँ भाव सहित भगवन॥४॥

ॐ ह्रीं पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(५)

अब आचार्य शुद्धनय को प्रधान करके निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं । अशुद्धनय की प्रधानता मे जीवादि तत्वो के श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है, जब कि यहाँ उन जीवादि तत्त्वों को शुद्धनय के द्वारा जानने से सम्यक्त्व होता है, यह कहते हैं । टीकाकार इसकी सूचनारूप तीन श्लोक कहते है, उनमें से प्रथम श्लोक मे यह कहते हैं कि व्यवहारनय को कथचित् प्रयोजनवान कहा तथापि वह कुछ वस्तुभूत नहीं है -

मालिनी

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहितदानां हंत हस्तावलंबः ।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं
परविरहितमंतः पश्यतां नैष किंचित् ॥५॥

अर्थ- जो व्यवहारनय है वह यद्यपि इस पहली पदवी मे जिन्होने अपना पैर रखा है ऐसे पुरुषो को अरे रे ! हस्तावलम्बन तुल्य कहा है, तथापि जो पुरुष चैतन्य-चमत्कारमात्र, परद्रव्यभावो से रहित परम 'अर्थ' को अन्तरङ्ग में अवलोकन करते हैं, उसकी श्रद्धा करते हैं तथा उस रूप लीन होकर चारित्रभाव को प्राप्त होते हैं उन्हें यह व्यवहारनय कुछ भी प्रयोजनवान नहीं है ॥५॥

५ ॐ ह्रीं परविरहितनिजानंदस्वरूपाय नम ।

चिच्चमत्कारस्वरूपोऽहं

वीरछंद

शुद्ध स्वरूप न जिन्हें प्राप्त हो उनको अवलंबन व्यवहार।
जिन को प्राप्त हुआ है उनको योग्य नहीं है यह व्यवहार॥

हिंसादिक पापो से विरहित छेदोपस्थापन चारित्र ।
वह है शुद्ध मोक्ष का कारण पचम गति दाता सुपवित्र ॥

पर द्रव्यो से रहित शुद्ध चैतन्य जिन्हे हो जाता प्राप्त ।
वे चारित्र भाव को पाकर अनुभव रस करते उर व्याप्त॥
कुन्दकुन्द मुनि अमृतचद्राचार्य देव को करू नमन ।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊ भाव सहित भगवन॥५॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(६)

अब निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहते है -

शार्दूल विक्रीड़ित

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यांतरेभ्यः पृथक् ।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं
तम्मुक्त्वा नवतत्त्वसंततिमिमामात्मायमेकोस्तु नः ॥६॥

श्लोकार्थ- इस आत्मा को अन्य द्रव्यों से पृथक देखना ही नियम से सम्यक्दर्शन है, यह आत्मा अपने गुण-पर्यायों मे व्याप्त रहने वाला है, और शुद्धनय से एकत्व मे निश्चित किया गया है तथा पूर्ण ज्ञानघन है। एव जितना सम्यक्दर्शन है उतना ही आत्मा है, इसलिए आचार्य प्रार्थना करते है कि 'इस नवतत्त्व की परिपाटी को छोडकर, यह आत्मा एक ही हमे प्राप्त हो ।'॥६॥

६ ॐ ह्री पूर्णज्ञानघनस्वरूपाय नम ।

एकोऽहं

ताटक

पर द्रव्यो से भिन्न आत्मा को लखना सम्यक् दर्शन ।
अपने गुण पर्यायो मे ही व्याप्त आत्मा स्वज्ञानघन ॥
नव तत्त्वो की परिपाटी तज शुद्ध आत्मा हो प्रभु प्राप्त ।
परम शुद्ध नय से एकत्व रहे हो उर मे आनद व्याप्त ॥

रागादिक के सर्व विकल्पों से विरहित होती है शुद्धि ।
मुनि विहार के समय जीवरक्षा चारित्त परिहार विशुद्धि ॥

समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥६॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(७)

अब टीकाकार-आचार्य निम्नलिखित श्लोक में यह कहते है कि - 'तत्पश्चात् शुद्धनय के आधीन, सर्व द्रव्यो से भिन्न, आत्मज्योति प्रगट हो जाती है' -

अनुष्टुप

अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत् ।
नवतत्त्वगतत्वेपि यदेकत्वं न मुंचति ॥७॥

अर्थ- तत्पश्चात् शुद्धनय के आधीन जो भिन्न आत्मज्योति है वह प्रगट होती है कि जो नवतत्त्वो मे प्राप्त होने पर भी अपने एकत्व को नहीं छोडती।

७ ॐ ह्रीं स्वायत्तसहजानदाय नम ।

स्वधीनस्वरूपोऽहं

ताटक

नव तत्त्वो मे रहकर भी एकत्व नहीं यह तजती है ।
नयाधीन शुद्धनय के हो आत्म सुज्योति प्रगटती है ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥७॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(८)

यहॉ इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :

मिथ्याभ्रम तज सम्यक्दर्शन की जब होती पूरी शुद्धि ।
यही स्वरूपाचरण चरित है हो जाती है निर्मल बुद्धि ॥

मालिनी

चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं
कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे ।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम् ॥८॥

अर्थ- इस प्रकार नव तत्त्वो मे बहुत समय से छिपी हुई यह आत्मज्योति शुद्धनय से बाहर निकालकर प्रगट की गई है, जैसे वर्णों के समूह मे छिपे हुए एकाकार स्वर्ण को बाहर निकालते है । इसलिए अब हे भव्य जीवो ! इसे सदा अन्य द्रव्यो से तथा उनमे होने वाले नैमित्तिक भावो से भिन्न, एकरूप देखो । यह पद पद पर अर्थात् प्रत्येक पर्याय मे एकरूप चित्चमत्कारमात्र उद्योतमान है ।

८ ॐ ह्री निजात्मज्योतिस्वरूपाय नम. ।

अनाद्यनतस्वरूपोऽहं

ताटक

नव तत्त्वो मे छिपी हुई वह आत्म ज्योति अब प्रगट हुई।
निज चैतन्य स्वचमत्कार पाते ही पर छवि विघट हुई ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥८॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(९)

इस अर्थ का कलश रूप श्लोक कहते है -

मालिनी

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रम् ।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मि-
न्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ॥९॥

ॐ

श्री समयसार कलश विधान

समयसार कलश के मूल प्रेरणास्रोत एवं पंच परमागमों के रचनाकार

आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी जिन्होंने अपने जीवन काल में समय पाहुड सहित चौरासी पाहुडों की रचना की

समयावधि प्रथम शताब्दी

ॐ

श्री समयसार कलश विधान

भरत क्षेत्र के आचार्य कुन्द कुन्द

विदेह क्षेत्र स्थित

तीर्थंकर श्री सीमंधरनाथ के समवशरण में

सूक्ष्म लोभ जब गल जाता है होता अतिसूक्ष्म उपयोग ।
यही सूक्ष्म सापराय चारित्र है यही मोक्ष सुख जैसा भोग ॥

अर्थ- आचार्य शुद्धनय का अनुभव करके कहते हैं कि इन समस्त भेदों को गौण करने वाला जो शुद्धनयका विषयभूत चैतन्य-चमत्कार मात्र तेज. पुंज आत्मा है, उसका अनुभव होने पर नयों की लक्ष्मी उदित नहीं होती, प्रमाण अस्त हो जाता है और निक्षेपों का समूह कहाँ चला जाता है सो हम नहीं जानते । इससे अधिक क्या कहें ? द्वैत ही प्रतिभासित नहीं होता ।

९ ॐ ह्रीं अद्वैतचित्स्वभावाय नम ।

अभेदस्वरूपोऽहं

ताटंक

तेज पुंज चैतन्य चमत्कृत आत्मा का ही अनुभव कर ।
नय लक्ष्मी फिर उदित न होगी अस्त प्रमाण हुआ सत्वर॥
निक्षेपो का समूहलय है द्वैत न प्रतिभासित होता ।
भैद गौण है एकाकार स्वरूप सदा भासित होता ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊं ॥९॥

ॐ ह्रीं पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

आगे शुद्धनय का उदय होता है उसकी सूचनारूप श्लोक कहते हैं

उपजाति

आत्मस्वभावं परभावभिन्न-
मापूर्णमाद्यंतविमुक्तमेकम् ।
विलीनसंकल्पविकल्पजालं
प्रकाशयन् शुद्धनयोभ्युदेति ॥१०॥

अर्थ- शुद्धनय आत्मस्वभाव को प्रगट करता हुआ उदयरूप होता है । वह आत्मस्वभाव को परद्रव्य, परद्रव्य के भाव तथा परद्रव्य के निमित्त से होने वाले अपने विभाव-ऐसे परभावों

पापी जीव नरक जाते है पुण्यी जीव स्वर्ग जाते ।
धर्मी जीव शुभाशुभ विरहित हो अपवर्ग मोक्ष पाते ॥

से भिन्न प्रगट करता है । और वह, आत्मस्वभाव सम्पूर्ण रूप है-समस्त लोकालोक का ज्ञाता है- ऐसा प्रगट करता है । और वह, आत्मस्वभाव सम्पूर्ण रूप से पूर्ण है-समस्त लोकालोक का ज्ञाता है- ऐसा प्रगट करता है , और वह, आत्मस्वभाव को आदि अन्त से रहित प्रगट करता है और वह, आत्मस्वभाव को एक-सर्व भेदभावो से रहित एकाकार प्रगट करता है, और जिसमे समस्त सकल्प-विकल्प के समूह विलीन हो गये हैं ऐसा प्रगट करता है । ऐसा शुद्धनय प्रकाशरूप होता है ॥१०॥

१० ॐ ह्री सकल्पविकल्पजालरहितात्मस्लरूपाय नम ।

परिपूर्णोऽहं

वीरछद

जिसको आत्म स्वभाव प्रगट होता वह परभावो से भिन्न।
लोकालोक जान लेता है निज स्वरूप से पूर्ण अभिन्न ॥
आत्म स्वभाव सर्व भेद भावो से भिन्न व एकाकार ।
भाव द्रव्य नो कर्म रहित नय शुद्ध एक है रहित विकार॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊं।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥१०॥

ॐ ह्रीं पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(११)

यहॉ इस शुद्धनय को मुख्य करके कलशरूप काव्य कहते हैं -

मालिनी

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी
स्फुटमुपरितरंतोप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम् ।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समंतात्
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम् ॥११॥

अर्थ- जगत के प्राणियों ! इस सम्यक स्वभाव का अनुभव करो कि जहां यह

जो स्वभाव से सहज शुद्ध चारों कषाय से रहित विशुद्ध ।
यथाख्यात चारित्र यही है सहजानंदी निर्मल शुद्ध ॥

बुद्धस्पृष्टादिभावस्पष्टतया उस स्वभाव के ऊपर तैरते हैं, तथापि वे प्रतिष्ठा नहीं पाते, क्योंकि द्रव्यस्वभाव तो नित्य है एकरूप है और यह भाव अनित्य हैं अनेक रूप हैं; पर्यायें द्रव्यस्वभाव में प्रवेश नहीं करती, ऊपर ही रहती हैं । यह शुद्ध स्वभाव सर्व अवस्था में प्रकाशमान है । ऐसे शुद्ध स्वभाव का, मोह रहित होकर जगत अनुभव करे , क्योंकि मोहकर्म के उदय से उत्पन्न मिथ्यात्वरूपी अज्ञान जहाँ तक रहता है, वहां तक यह अनुभव यथार्थ नहीं होता ॥११॥

११ ॐ ह्रीं बद्धस्पृष्टभावरहितनिर्मलस्वरूपाय नम ।

अबद्धस्वरूपोऽहं

ताटंक

मै अबद्ध अस्पृष्ट स्वभावी निज स्वभाव का अनुभव कर।
पर्यायों का द्रव्य स्वभाव प्रवेश नही है निश्चय कर ॥
मोह रहित हो निज अनुभव कर तू तो एक रूप है नित्य।
मोह कर्म के उदय जनित परभाव सभी है सदा अनित्य॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊं।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥११॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१२)

अब, इसी अर्थ का सूचक कलशरूप काव्य पुन कहते हैं, जिसमे यह कहा गया है कि ऐसा अनुभव करने पर आत्मदेव प्रगट प्रतिभासमान होता है -

शार्दूल विक्रीड़ित

भूतं भांतमभूतमेव रभसान्निर्भिद्य बंधं सुधी-
र्यद्यंत: किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात् ।
आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं
नित्यं कर्मकलंकपंकविकलो देव: स्वयं शाश्वत: ॥१२॥

कोटि कोटि चर्चाओं का है एक सार सम्यक्दर्शन ।
लाखों शास्त्र पढो सबकी ध्वनि है उत्तम आतमदर्शन ॥

अर्थ- यदि कोई सुबुद्धि जीव भूत, वर्तमान और भविष्य-तीनो काल मे कर्मों के बन्ध को अपने आत्मा से शीघ्र भिन्न करके तथा उस कर्मोदय के निमित्त से होने वाले मिथ्यात्व को अपने बल से रोककर अथवा नाश करके अन्तरंग मे अभ्यास करे-देखे तो यह आत्मा अपने अनुभव से ही जानने योग्य जिसकी प्रगट महिमा है ऐसा व्यक्त निश्चल शाश्वत, नित्य कर्मकलंक कर्दम से रहित स्वय ऐसा स्तुति करने योग्य देव विराजमान है ।।१२।।

१२ ॐ ह्रीं कर्मकलकपकरहितनिष्कलकस्वरूपाय नम. ।

शाश्वतस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

भूत भविष्य विद्य कालो के बधो से कर निज को भिन्न।
अतरग अभ्यास करे तो दृष्टित होगा रूप अभिन्न ।
अनुभव गोचर निश्चय शाश्वत कर्म कलक आदि से हीन।
मेरे भीतर राजमान है यह अभ्यास योग्य स्वाधीन ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊं ॥१२॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१३)

अब, शुद्धनय के विषयभूत आत्मा की अनुभूति ही ज्ञानकी अनुभूति है इसप्रकार आगे की गाथा की सूचना के अर्थरूप काव्य कहते हैं -

वसंततिलका

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा ।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकंप-
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः समंतात् ॥१३॥

अर्थ- इस प्रकार जो पूर्वकथित शुद्धनयस्वरूप आत्मा की अनुभूति है वही वास्तव मे ज्ञानकी

छ द्रव्यों में अपना आत्म द्रव्य ही सबसे श्रेष्ठ महान ।
नव पदार्थ में अपना आत्म पदार्थ श्रेष्ठ कल्याण प्रधान ॥

अनुभूति है, यह जानकर तथा आत्मा में आत्मा को निश्चल स्थापित करके, सदा सर्व ओर एक ज्ञानघन आत्मा है इस प्रकार देखना चाहिये । १३॥

१३ ॐ ह्रीं सुनिष्प्रकंपचित्स्वभावाय नम ।

अवबोधघनस्वरूपोऽहं

वीरछंद

शुद्ध स्वरूप आत्मा की अनुभूति ज्ञान की है अनुभूति ।
आत्मा मे आत्मा को निश्चल करके बनो ज्ञानघन मूर्त्ति॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊं।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊं ॥१३॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१४)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

पृथ्वी

अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनंतमंतर्बहि-
र्महः परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा ।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालंबते
यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितम् ॥१४॥

अर्थ- आचार्य कहते हैं कि हमें वह उत्कृष्ट तेज-प्रकाश प्राप्त हो कि जो तेज सदाकाल चैतन्य के परिणमन से परिपूर्ण है, जैसे नमक की डली एक क्षार रस की लीला का आलम्बन करती है, उसी प्रकार जो तेज एक ज्ञानरसस्वरूप का आलम्बन करता है ; जो तेज अखण्डित है-जो ज्ञेयों के आकार रूप अखण्डित नहीं होता, जो अनाकुल है- जिसमें कर्मों के निमित्त से होने वाले रागादि से उत्पन्न आकुलता नहीं है, जो अविनाशी रूप से अन्तरंग में और बाहर में प्रगट दैदीप्यमान है-जानने में आता है, जो स्वभाव से हुआ है- जिसे किसी ने नहीं रचा और सदा जिसका विलास उदयरूप है-जो एकरूप प्रतिभासमान है । ॥१४॥

तन से तू तादाम्य न बन अब निज से ही तादात्म्य बना ।
ज्ञान ज्योति से तिरस्कार आस्रव का कर पा सौख्यघना ॥

१४ ॐ ह्रीं अखण्डचिद्विलासाय नम ।

अनाकुलस्वरूपोऽहं।

वीरछंद

वह उत्कृष्ट तेज प्राप्त हो जो है सदा काल परिपूर्ण ।
सतत अनाकुल अविनाशी है ध्रुव दैदीप्यमान आपूर्ण ॥
एक रूप प्रतिभास सदा ही उदयरूप चैतन्य विलास ।
ज्ञानानद स्वज्योति मयी है निज अतर मे कर विश्वास॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥१४॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१५)

अब आगे की गाथा का सूचनारूप श्लोक कहते हैं -

अनुष्टुप्

एष ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभिः ।
साध्यसाध्यकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम् ॥१५॥

अर्थ- यह ज्ञानस्वरूप आत्मा, स्वरूप की प्राप्ति के इच्छुक पुरुषो को साध्यसाधकभाव के भेद से दो प्रकार से, एक ही नित्य सेवन करने योग्य है , उसका सेवन करो।

१५ ॐ ह्रीं ज्ञानघनरूपचिदानदाय नम ।

नित्योऽहं

वीरछंद

एक ज्ञान घन नित्य आत्मा ज्ञान स्वरूप महान मनोज्ञ ।
साधक साध्य भाव से ये ही सतत नित्य सेवन के योग्य॥
साध्य भाव तो पूर्ण रूप है अरु अपूर्ण है साधक भाव।
दोनो भाव भेद से सेवन करो एक का वरो स्वभाव ॥

जीव अजीव आस्रव संवर बंध निर्जरा मोक्ष प्रधान ।
इन सातों तत्वों मे है सर्वोच्च तत्व निज जीव महान ॥

समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।
अमृतचंद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊं ॥१५॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१६)

अब, इसी अर्थ का कलश रूप श्लोक कहते है -

अनुष्टुप

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयम् ।
मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः ॥१६॥

अर्थ- प्रमाण दृष्टि से देखा जाये तो यह आत्मा एक ही साथ अनेक अवस्था रूप भी है और एक अवस्थारूप भी है, क्योकि इसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र से तो त्रित्व है और अपने से अपने को एकत्व है। ॥१६॥

१६ ॐ ह्रीं मेचकामेचकविकल्परहितशुद्धस्वरूपाय नम ।

अमलस्वरूपोऽहं

वीरछद

दर्शन ज्ञान चरित्र त्रित्व है अपने से अपना एकत्व ।
एक अवस्था रूप अमेचक एक अवस्था मेचकतत्त्व ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊं ॥१६॥

ॐ ह्री पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

अब, नयविवक्षा कहते हैं -

अनुष्टुप

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः ।
एकोऽपि त्रिस्वभावत्वाद् व्यवहारेण मेचकः ॥१७॥

अर्थ- आत्मा एक है, तथापि व्यवहार दृष्टि से देखा जाय तो तीन स्वभावरूपता के कारण अनेकाकाररूप है, क्योंकि वह दर्शन, ज्ञान औरचारित्र-इन तीन भावों में परिणमन करता है ॥ १७॥

१७ ॐ ह्रीं दर्शनज्ञानचारित्रभेदविकल्परहिताभेदाय नम ।

अखण्डचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

ज्ञायकत्व ज्योति मात्र से आत्मा एक स्वरूप निहार ।
अन्य द्रव्य के स्वभाव से है भिन्न आत्मा शिव सुखकार॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊं।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥१७॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१८)

अब, परमार्थनय से कहते हैं

अनुष्टुप्

परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषैकक: ।
सर्वभावांतरध्वंसिस्वभावत्वादमेचक: ॥१८॥

अर्थ- शुद्ध निश्चयनय से देखा जाये तो प्रगट ज्ञायकत्वज्योतिमात्र से आत्मा एकस्वरूप है क्योंकि शुद्धद्रव्यार्थिक नय से सर्व अन्यद्रव्य के स्वभाव तथा अन्य के निमित्त से होने वाले विभावो को दूर करने रूप उसका स्वभाव है, इसलिये वह 'अमेचक' है-शुद्ध एकाकार है ॥१८॥

१८. ॐ ह्रीं ज्ञानृत्वज्योतिस्वरूपाय नम ।

ज्ञायकस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

निश्चयनय से ज्ञायकत्व ध्रुव ज्योति मात्र आत्मा निज रूप ।
एक स्वरूप त्रिकाली शाश्वत एकाकार अमेचक रूप ॥

कलह न करना किसी जीव से ना तुम करना वाद विवाद ।
कलह विहीन तुम्हारा पद है तुम्हीं सिद्ध प्रभु हो अविवाद ॥

भेद दृष्टि कर गौण अभेद दृष्टि से देखो एकाकार ।
यही अमेचक परम शुद्ध शुद्धात्म तत्त्व निर्मल अविकार॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊं।
अमृतचंद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊं ॥१८॥

ॐ ह्रीं पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१९)

आत्मा को प्रमाण-नय से मेचक, अमेचक कहा है, उस चिन्ता को मिटाकर जैसे साध्य की सिद्धि हो वैसा करना चाहिए, यह आगे के श्लोक में कहते हैं -

अनुष्टुप्

आत्मनश्चिंतयैवालं मेचकामेचकत्वयोः ।
दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा ॥१९॥

अर्थ- यह आत्मा मेचक है-भेदरूप अनेकाकार है तथा अमेचक है,- अभेदरूप एकाकार है ऐसी चिन्ता से बस हो । साध्य आत्मा की सिद्धि तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र-इन तीन भावों से ही होती है, अन्य प्रकार से नहीं ॥१९॥

१९ ॐ ह्रीं चिंतारहितसहजविमलस्वभावाय नम ।

निश्चलोऽहं

वीरछंद

मेचक तथा अमेचक भेदों की चिन्ता से हो जा मुक्त ।
साध्य निजात्म सिद्धि होती है दर्शन ज्ञान चरित्र सुयुक्त॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊं।
अमृतचंद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊं ॥१९॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

मोह राग रुष के वितान को निज भावों से करो विनष्ट ।
वीतराग भावो मे रहकर कर्म बध सब कर दो नष्ट ॥

(२०)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

मालिनी

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया
अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम् ।
सततमनुभवामोऽनंतचैतन्यचिन्ह
न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ॥२०॥

अर्थ- आचार्य कहते है कि अनन्त चैतन्य जिसका चिन्ह है ऐसी इस आत्मज्योति का हम निरन्तर अनुभव करते हैं क्योकि उसके अनुभव के बिना अन्य प्रकार से साध्य आत्मा की सिद्धि नही होती । वह आत्मज्योति ऐसी है कि जिसने किसी प्रकार से त्रित्व अङ्गीकार किया है तथापि जो एकत्व से च्युत नहीं हुई और जो निर्मलता से उदय को प्राप्त हो रही है ॥२०॥

२० ॐ ह्री अनतचैतन्यचिह्नस्वरूपाय नम ।

शाश्वतात्मज्योतिस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

है अनत चैतन्य चिन्ह निज आत्म ज्योति का अनुभव कर।
उसके अनुभव बिना साध्य की सिद्धि नहीं होती अणुभर॥
यह अनादि से पलभर को भी ज्ञान नही सेवन करता।
अप्रतिबुद्ध, आत्म ज्ञान बिन ज्ञान भाव निज का हरता॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥२०॥

ॐ ह्री पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२१)

अब, इसी अर्थ का सूचक कलशरूप काव्य कहते हैं :-

पंचम गति पाने का एक उपाय दृष्टि में आता है ।
चारो गति की पीडा हरने में सक्षम ध्रुव ज्ञाता है ॥

मालिनी

कथमपि हि लभंते भेदविज्ञानमूला-
मचलितमनुभूति ये स्वतो वान्यतो वा
प्रतिफलननिमग्नानंतभावस्वभावै-
र्मुकुरवदविकारा: संततं स्युस्त एव ॥२१॥

अर्थ- जो पुरुष अपने ही अथवा परके उपदेश से किसी भी प्रकार से भेदविज्ञान जिसका मूल उत्पत्ति का कारण है ऐसी अपने आत्मा की अविचल अनुभूति को प्राप्त करते हैं, वे ही पुरुष दर्पण की भाति अपने मे प्रतिबिम्बित हुए अनन्त भावों के स्वभावों से निरन्तर विकार रहित होते हैं,-ज्ञान मे जो ज्ञेयो के आकार प्रतिभासित होते हैं उनमे रागादि विकार को प्राप्त नहीं होते ॥२१॥

२१ ॐ ह्रीं अचलज्ञानस्वरूपाय नम ।

अविकारस्वरूपोऽहं

ताटंक

स्वय बुद्ध या बोधित बुद्ध जु स्वपर ज्ञान जब पाता है।
अविचल निज अनुभूति प्राप्त कर अविकारी हो जाता है॥
दर्पण वत निर्मल होता है प्रतिबिम्बित होते सब ज्ञेय ।
अविचल निज अनुभूति स्वर सभी पाता शाश्वत सौख्य अमेय॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊं।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊं ॥२१॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२२)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:-

देह जर्जरित हो जाते ही तजकर उड जाता है जीव ।
इसी देह से अगर काम ले तो हो जाए शुद्ध सदीव ॥

मालिनी

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीनं
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत् ।
इह कथमपि नात्मानात्मना साकमेक:
किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥२२॥

अर्थ- जगत् अर्थात जगत् के जीवो ! अनादि ससार से लेकर आज तक अनुभव किये गये मोहको अब तो छोडो और रसिक जनों को रुचिकर, उदय हुवा जो ज्ञान उसको आस्वादन करो, क्योकि इस लोक में आत्मा वास्तव में किसी प्रकार भी अनात्मा के साथ कदापि तादात्म्यवृत्ति को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि आत्मा एक है वह अन्य द्रव्य के साथ एकतारूप नहीं होता ।

२२ ॐ ह्रीं अनादिमोहरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

ज्ञानरसायनस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

हे ससारी जीवो अब तो यह अनादि का मोह तजो ।
इसका ही अनुभव करते आए हो अब मत इस भजो ॥
रसिक जनो को ज्ञान उदय मे आया उसका ही लो स्वाद।
अनात्मा का आत्मा से एकत्व नहीं है यह अविवाद ॥
मोह वृथा झूठा है दुख का कारण भव दुखदायी है ।
अप्रतिबुद्ध जीव को कोई कहीं नहीं सुखदायी है ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊं।
अमृतचंद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥२२॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२३)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

जग के धंधों में फंसकर ही अपना अकल्याण मत कर ।

शुद्ध आत्मा की सुध ले ले अब तो तू प्रमाद मत कर ॥

मालिनी

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्

अनुभव भव मूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम् ।

पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन

त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम् ॥२३॥

अर्थ- 'अयि' यह कोमल सम्बोधन का सूचक अव्यय है । आचार्यदेव कोमल संबोधन से कहते हैं कि हे भाई ! तू किसी प्रकार महा कष्ट से अथवा मरकर भी तत्त्वों का कौतूहली होकर इस शरीरादि से मूर्त द्रव्य का एक मुहूर्त पडौसी होकर आत्मानुभव कर कि जिससे अपने आत्मा के विलासरूप, सर्व परद्रव्यों से भिन्न देखकर इस शरीरादि मूर्तिक पुद्गल द्रव्य के साथ एकत्व के मोहको शीघ्र ही छोड देगा ।

२३ ॐ ह्रीं पुद्गलद्रव्यैकत्वरूपमोहरहितशुद्धस्वरूपाय नमः ।

अमरस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

हे भाई तू महाकष्ट से मरकर भी निज को ही देख ।

कौतूहली तत्त्व का बनकर अन्तर में निज छवि को लेख॥

शरीरादि से मूर्त्त द्रव्य से मात्र पड़ौसी हो कुछ क्षण ।

एक मुहूर्त्त आत्म अनुभव कर मोह विलय होगा तत्क्षण॥

अनुभव की ऐसी महिमा है मिथ्याभ्रम का होता नाश ॥

सम्यक् दर्शन हो जाता है प्राप्त सुगम होता स्वप्रकाश ॥

समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊं।

अमृतचंद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊं ॥२३॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२४)

जो आत्मा है वही पुद्गलद्रव्य स्वरूप यह शरीर है । यदि ऐसा न हो तो

केवल शास्त्र पठन पाठन से निज चैतन्य न जागेगा ।
जड़ जैसा जड़ रहकर ही तू भव से कभी न भागेगा ॥

तीर्थंकरो और आचार्यो जो स्तुति की गई है वह सब मिथ्या सिद्ध होगी ।
वह स्तुति इसप्रकार है -

शार्दूल विक्रीड़ित

कात्यैव स्नपयंति ये दशदिशो धाम्ना निरुंधंति ये
धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णंति रूपेण ये ।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरंतोऽमृतं
वंद्यास्तेऽष्टसहस्त्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः ॥२४॥

अर्थ- वे तीर्थंकर और आचार्य वन्दनीय हैं । कैसे हैं वे ? अपने शरीर की काति से दसों दिशाओ को धोते है निर्मल करते है , अपने तेज से उत्कृष्ट तेजवाले सूर्यादिके तेज को ढक देते है, अपने रूप से लोगो के मन को हर लेते है, दिव्यध्वनि से कानो मे साक्षात सुखामृत बरसाते है और वे एक हजार आठ लक्षणो के धारक है ॥२४॥

२४ ॐ ह्री ज्ञानामृतस्वरूपाय नम ।

बोधपीयूषस्वरूपोऽह ।

वीरछंद

तीर्थंकर प्रभु वन्दनीय है श्री आचार्य नमन के योग्य ।
दशो दिशाए जीत रहे है देह कान्ति से महा मनोज्ञ ॥
एक सहस्र आठ लक्षण है दिव्य ध्वनि बरसाते है ।
सूर्यादि का तेज ढॉकते ऐसा तेज सुपाते हैं ॥
ऐसी सस्तुति मिथ्या होगी जो अब तक करते आए ।
पर यह निश्चत नहीं मात्र उपचार कथन कहते आए ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊं।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥२४॥

ॐ ह्रीं पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

तन मन वाणी पराधीनता के प्रतीक हैं निश्चय जान ।

इससे मोह भाव तज दे तू तब होगा तेरा कल्याण ॥

(२५)

उपरोक्त अर्थ का काव्य कहते हैं -

आर्या

प्राकारकवलितांबरमुपवनराजीनिगीर्णभूमितलम् ।

पिबतीव हि नगरमिदं परिखावलयेन पातालम् ॥२५॥

अर्थ- यह नगर ऐसा है कि जिसने कोट के द्वारा आकाश को ग्रसित कर रखा है बगीचो की पक्तियो से जिसने भूमितल को निगल लिया है, और कोट के चारो ओर की खाई के घेरे से मानो पाताल को पी रहा है ॥२५॥

२५ ॐ ह्री चैतन्यराजस्वरूपाय नम ।

ज्ञानराजस्वरूपोऽहं ।

तांटक

नगर कोट उपवन का वर्णन राजा का वर्णन न कही ।

नगर भूमि तल निगल गया ज्यो यह राजा का कथन नहीं ॥

तीर्थंकर केवली गुणो का कथन नहीं है तन आधार ।

तीर्थंकर की निश्चय आत्मा का सस्तवन सुमगलकार ॥

समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।

अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥२५॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(२६)

इस प्रकार नगर का वर्णन करने पर भी उससे राजा का वर्णन नहीं होता, क्योकि यद्यपि राजा उसका अधिष्ठाता है तथापि, वह राजा कोट-बाग-खाई आदिवाला नहीं है । इसी प्रकार शरीर स्तवन करने पर तीर्थङ्कर का स्तवन नही होता यह भी श्लोक द्वारा कहते हैं -

इन्द्र तथा अहमिन्द्र आदि सब शरण नहीं है इस जग में ।
शुद्ध आत्मा परम शरण है इसको ही ले शिवमग में ॥

आर्या

नित्यमविकारसुस्थितसर्वांगमपूर्वसहजलावण्यम् ।
अक्षोभमिव समुद्रं जिनेन्द्ररूपं परं जयति ॥२६॥

अर्थ- जिनेन्द्र का रूप उतकृष्टतया जयवन्त वर्तता है, जिसमे सभी अगसदा अविकार और सुस्थित हैं, जिसमें अपूर्व और स्वाभाविक लावण्य है और जो समुद्र की भाति क्षोभरहित है, चलाचल नहीं है ॥२६॥

२६ ॐ ह्रीं अपूर्वचित्स्वरूपाय नम ।

निर्विकारस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

श्री जिनेन्द्र का रूप सदा जयवत वर्तता है उत्कृष्ट ।
क्षोभ रहित लावण्य स्वभाविक है अपूर्व अरु परम प्रकृष्ट॥
जो समुद्र की भाति चलाचल रहित क्षोभ बिन सदा प्रशांत ।
पर ये नही आत्मा के गुण श्री केवली गुण है शान्त ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊं।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥२६॥

ॐ ह्रीं पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२७)

अब यहां इस निश्चय-व्यवहार रूप स्तुति के अर्थ का कलशरूप काव्य कहते है -

शार्दूल विक्रीड़ित

एकत्वं व्यवहारतो न तु पुनः कायात्मनोर्निश्चया-
न्नुः स्तोत्रं व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न तत्तत्त्वतः ।
स्तोत्रं निश्चयतश्चितो भवत चित्स्तुत्यैव सैवं भवे-
न्नातस्तीर्थकरस्तवोत्तरबलादेकत्वमात्मांगयोः ॥२७॥

कर्म विपाकोदय निमित्त पा होते राग द्वेष विभाव ।
अज्ञानी उन में रत होता भूल वीतरागी निज भाव ॥

अर्थ- शरीर और आत्मा के व्यवहारनय से एकत्व है किन्तु निश्चयनय से नहीं है; इसलिए शरीर के स्तवन से आत्मा-पुरुष का स्तवन व्यवहारनय से हुआ कहलाता है, निश्चय से तो चैतन्य के स्तवन से ही चैतन्य का स्तवन होता है । उस चैतन्य का स्तवन यहां जितेन्द्रिय, जितमोह, क्षीणमोह-इत्यादि रूप से कहा वैसा है । अज्ञानी ने तीर्थंकर के स्तवन का जो प्रश्न किया था उसका इस प्रकार नय विभाग से उत्तर दिया है, जिसके बल से यह सिद्ध हुआ कि आत्मा और शरीर मे निश्चय से एकत्व नहीं है ॥२७॥

२७ ॐ ह्री शरीरादिपरद्रव्यरहितनिजात्मस्वरूपाय नम ।

निष्कायस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

देह आत्मा का एकत्व कथन तो करना है व्यवहार ।
निश्चय से एकत्व नही है पृथक पृथक द्वय का आधार॥
शुद्ध आत्म चैतन्य सस्तवन नहीं देह का होता है ।
तीर्थंकर सस्तवन देह परमौदारिक का ही होता है ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊं ॥२७॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२८)

अब फिर, इस अर्थ के जानने से भेदज्ञान की सिद्धि होती है इस अर्थ का सूचक काव्य कहते हैं -

मालिनी

इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकतायां
नयविभजनयुक्त्याऽत्यंतमुच्छादितायाम् ।
अवतरति न बोधो बोधमेवाद्य कस्य
स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुटन्नेक एव ॥२८॥

"वंदितु सव्व सिद्धे" की ध्वनि जब अंतरंग में आती है ।
नम. समयसाराय गूँज चारो दिशि में छा जाती है ॥

अर्थ- जिन्होने वस्तु के यथार्थ स्वरूप को परिचयरूप किया है ऐसे मुनियों ने जब आत्मा और शरीर के एकत्व को इस प्रकार नयविभाग की युक्ति के द्वारा जडमूल से उखाड फैंका है-उसका अत्यन्त निषेध किया है, तब अपने निजरस के वेग से आकृष्ट हुए प्रगट होने वाले एक स्वरूप होकर किस पुरुष को वह ज्ञान तत्काल ही यथार्थपने को प्राप्त न होगा ? अवश्य ही होगा ॥२८॥

२८ ॐ ह्रीं बोधरसस्वरूपाय नम ।

ज्ञानसुधारसस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

वस्तु स्वरूप यथार्थ जानकर निजको जानो तन से भिन्न।
आत्मस्वरस महिमा से शोभित निजस्वरूप से सदा अभिन्न॥
यही ज्ञान जब हो जाता है तो यथार्थता होती प्राप्त ।
अंतरग निर्मल होता है ज्ञान हृदय मे होता व्याप्त ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥

ॐ ह्री पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२९)

अब इसी अर्थ का सूचक कलशरूप काव्य कहते ह -

मालिनी

अवतरति न यावद् वृत्तिमत्यंतवेगा-
दनवमपरभावत्यागदृष्टांतदृष्टि: ।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता
स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥२९॥

अर्थ- यह परभाव के त्याग के दृष्टान्त की दृष्टि, पुरानी न हो इस प्रकार अत्यन्त वेग से जब तक प्रवृत्ति को प्राप्त न हो, उससे पूर्व ही तत्काल सकल अन्यभावों से रहित स्वयं ही यह अनुभूति तो, प्रगट हो जाती है।

राग अपेक्षा क्षायक भाव कहा जाता है आदरणीय ।
द्रव्य अपेक्षा हेय कहा जाता है कभी न आचरणीय ॥

२९. ॐ ह्रीं सकलान्यभावरहितसदानंदाय नम. ।

स्वयंज्योतिस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

परभावों की त्याग दृष्टि की प्रवृत्ति जब होती है प्राप्त ।
अन्य भाव से रहित आत्म अनुभूति प्रगट हो होती व्याप्त॥
पर द्रव्यो का रूप जानने पर होता है नहीं ममत्व ।
आत्मा की अनुभूति प्राप्त करते ही होता प्राप्त समत्व ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊं।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊं ॥२९॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३०)

अब इस अर्थ का द्योतक कलशरूप काव्य कहते हैं

स्वागता

सर्वत: स्वरसनिर्भरभावं
चेतये स्वयमहं स्वमिहैकम् ।
नास्ति नास्ति मम कश्चन मोह:
शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि ॥३०॥

अर्थ- इस लोक में मैं स्वत ही अपने एक आत्मस्वरूप का अनुभव करता हूँ, जो स्वरूप सर्वत अपने निजरसरूप चैतन्य के परिणमन से पूर्ण भरे हुए भाववाला है; इसलिये यह मोह मेरा कुछ भी नहीं लगता अर्थात् इसका और मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं है । मैं तो शुद्ध चैतन्य के समूह रूप तेज. पुंजका निधि हूँ ॥३०॥

३०. ॐ ह्रीं शद्धचिद्घनमहानिधिस्वरूपाय नम ।

ज्ञाननिधिस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

स्वत एक आत्मा स्वरूप का अनुभव जब जब करता है ।
निज रस रूप आत्म परिणमन कर उर आनंद भरता है॥

यह निर्मल पर्याय आश्रय योग्य न होने से है हेय ।
एक मात्र है शुद्ध द्रव्य ही आश्रय योग्य सदैव उपेय ॥

मेरा कुछ भी नहीं जगत मे ना पर से मेरा सबंध ।
मै चैतन्य समूह रूप हू तेज मयी निधि पूर्ण अबध ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥

ॐ ह्रीं पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(३१)

यहा इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

मालिनी

इति सति सह सेर्वैरन्यभावैर्विवेके
स्वयमयमुपयोगो बिभ्रदात्मानमेकम् ।
प्रकटितपरमार्थैदर्शनज्ञानवृत्तै :
कृतपरिणतिरात्माराम एव प्रवृत्त: ॥३१॥

अर्थ- इस प्रकार पूर्वोक्तरूप से भावकभाव और ज्ञेयभाव से भेदज्ञान होने पर जब सर्व अन्यभावो से भिन्नता हुई तब यह उपयोग स्वय ही अपने एक आत्मा को ही धारण करता हुआ, जिनका परमार्थ प्रगट हुआ है ऐसे दर्शनज्ञानचारित्र से जिसने परिणति की है ऐसा अपने आत्मा रूपी बाग मे प्रवृत्ति करता है, अन्यत्र नही जाता ॥३१॥

३१ ॐ ह्रीं आत्मारामस्वरूपाय नम ।

चैतन्यधामस्वरूपोऽहं ।

ताटक

भावक भाव ज्ञेय भावो से भेद ज्ञान जब होता है ।
एक आत्मा धारण का परमार्थ प्रगट तब होता है ॥
दर्शन ज्ञान चरित्र स्वपरिणति की प्रवृत्ति जब होती है ।
निज क्रीडा वन मे रहता है अन्य प्रवृत्ति न होती है ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊ ॥३१॥

ॐ ह्रीं पूर्वरग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

इन्द्रिय सुख अति विषम नाश मय क्षण भंगुर है बंधमयी ।
आत्मोत्पन्न सौख्य ही शाश्वत परम अतीन्द्रिय कर्मजयी ॥

(३२)

अब, ऐसा जो आत्मानुभव हुआ उसकी महिमा कहकर आचार्यदेव प्रेरणारूप काव्य कहते हैं कि-ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा में समस्त लोक निमग्न हो जाओ :-

वसंततिलका

मज्जंतु निर्भरममी सममेव लोका
आलोकमुच्छलति शांतरसे समस्ताः ।
आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीं भरेण
प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिंधुः ॥३२॥

अर्थ- यह ज्ञानसमुद्र भगवान आत्मा विभ्रमरूपी आडी चादर को समूलतया डुबोकर स्वयं सर्वांग प्रगट हुआ है, इसलिये अब समस्त लोक उसके शांत रसमे एक साथ ही अत्यन्त मग्न हो जाओ जो शात रस समस्त लोक पर्यंत उछल रहा है ॥३२॥

३२ ॐ ह्रीं अवबोधसिन्धुस्वरूपाय नम ।

भगवानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

ज्ञान स्वरूप आत्मा यदि भ्रम चादर को कर देता दूर।
वह सर्वांग प्रगट होता है परम शान्त रस से भरपूर ॥
परम शान्त रस उछल रहा है अब तो सर्व लोक पर्यंत।
इसमें ही यह परम मग्न हो, हो जाएगा प्रभु अरहंत ॥
समयसार रस कलश भरूँ मै उज्ज्वल स्वानुभूति पाऊं।
अनुभव रस सागर में अवगाहन कर निज पद प्रगटाऊं॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना उर लाऊं।
अमृतचंद्राचार्य कृपा पा आत्म भावना ही भाऊं ॥३२॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

परमानंद स्वरूप आत्मा का लक्षण त्रैकालिक ध्रुव ।
ज्ञान सुधारस का सेवन ही ध्रुव उपाय है राग अध्रुव ॥

महाअर्घ्य

दोहा

पूर्वरंग का कथन सब, समझो अपने आप ।
आत्म तत्त्व के ज्ञान से क्षय हो भव सताप ॥

छंद राधिका

अज्ञान भाव ही एक मात्र दुख कारी ।
है ज्ञान भाव ही एक मात्र सुखकारी ॥
पर तत्त्व जगत में चहुंगति भ्रमण कराता ।
शुद्धात्म तत्त्व ही उत्तम मोक्ष प्रदाता ॥
भव दुख इस मोहमयी अनात्मा मे है ।
जीवंत शक्ति का स्रोत आत्मा में है ॥
निश्चय से तो यह सदैव आनदघन है ।
अज्ञान दशा है तब तक ही बधन है ॥
ये भव बंधन कब तक टूटेंगे स्वामी ।
निज सुख पाऊगा कब तक अन्तर्यामी ॥
यह महाअर्घ्य सादर अर्पण करता हूँ ।
निज ज्ञानात्मक दर्शन क्षण क्षण करता हूँ ॥

ॐ ह्रीं पूर्वरंग समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय महाअर्घ्यं नि ।

जयमाला

गीत

पूर्व का रंग छोड़ नया रंग पाया है ।
घोर मिथ्यात्व गया ज्ञान रंग आया है ॥
अब तो ससार रंग मुझको नहीं भाता है ।
शुद्ध वैराग्य रंग आज मुझे भाया है ॥

मोह कर्म के उदयकाल मे गुणस्थान जो होते हैं ।
मोह कर्म के क्षय होने पर गुणस्थान क्षय होते हैं ॥

बात यह कुन्द कुन्द की ही मैंने मानी है ।
मुक्ति का रग निजतर में अब समाया है ॥
हुआ हूं आज अमृतचद्र का ही अनुयायी है ।
आत्म अनुभव कलश ही ज्ञान से भराया है ॥

छंद-तांटक

सहज शुद्ध चैतन्य रूप जानता तत्त्व ज्ञानी प्रतिपल ।
अघ क्षयकारक स्वरूप परिणति प्राप्त करू अति ही उज्ज्वल॥
कर्म समूह नष्ट करने को सम्यक् ज्ञान तेज धारूं ।
निर्विकार महिमा में रत हो आत्म ज्योति उर उजियारू ॥
भवरूपी दावानल को यदि मुझे बुझाना आ जाए ।
सहज ज्ञान की कला प्राप्त हो तो यह भव वन जल जाए ॥
आध्यात्मिक अमृत समुद्र से सयम रत्न निकालू अब ।
घाति अघाति विनाश करूं मैं मुक्ति वधू को पाऊं अब ॥
भव अटवी भव दुख समृद्ध है अग्नि ज्वालसम अति दुखमय ।
इसे शान्त कर सकता हू मै यदि बन जाऊं शम सुखमय ॥
सर्व कर्म क्षय करने वाला आत्म ज्ञान उत्तम तप है ।
अन्य कार्य है नहीं मुझे कुछ मात्र स्वय का ही जप है ॥
नित्य ज्योति निज तिमिर पुज हर आदि अंत से रहित स्व ज्योति।
जीवन मुक्त दशा की दाता आनदामृत रस की स्रोत ॥
जब चारित्र पुज हो निर्मल शुद्ध नियम से नियम मिले ।
मुक्ति रूप सुख का कारण यह आत्म प्रभा पा पूर्ण खिले ॥

ॐ ह्रीं समयसारप्राभृतग्रन्थेपूर्वरङ्गेकलशस्वरूपचित्स्वभावाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा ।

आशीर्वाद :

पूर्वरंग पूजन हुई परम भक्ति से नाथ ।
समय न जब तक निज मिले तजूं न तुव पद साथ॥

इत्याशीर्वाद

निज मे ही रतिवत बनो तुम निज में ही संतुष्ट रहो ।
निज में ही उत्तम सुख पाओ निज में ही तुम तृप्त रहो ॥

जीवाजीवाधिकार पूजन

स्थापना

छंद-रोला

अब जीवाजीवाधिकार का ज्ञान करू मै ।
मोह तिमिर अज्ञान नाश उर ज्ञान धरू मै ॥
मै अजीव से पृथक जीव शाश्वत निर्मल हू ।
एक मात्र त्रैलोक्य जयी शिव सम उज्ज्वल हू ॥
अब तक तो था मै अनात्मा से सबधित ।
चहुंगति मे ही भ्रमा हुआ था मै प्रतिबधित ॥
बडे भाग्य से समयसार निज कर मे आया ।
परमानद स्वरूप आत्म का दर्शन पाया ॥
प्रभु जीवाजीवाधिकार की करता पूजन ।
भव दुख क्षय के हेतु करू निज का ही चिन्तन ॥

ॐ ह्रीं जीवा जीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्।

ॐ ह्रीं जीवा जीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन।

ॐ ह्रीं जीवा जीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद-राधिका

निज सम्यक् निर्मल नीर चढाऊ स्वामी ।
जन्मादि रोग त्रय नाशूं अंतर्यामी ॥

राग द्वेष अरु मोह रहित बन तीनों दुर्गुण भव दुखकीच ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित तीनों गुण से तू निज घर सींच ॥

अब तो जीवाजीवाधिकार को जानूं ।
निज समयसार के कलश सदैव पिछानू ॥

ॐ ह्रीं जीवा जीवाधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय दीप नि ।

ससार ताप नाशक चंदन निज लाऊ ।
मलया गिर चदन अब ना तुम्हें चढाऊं ॥
अब तो जीवाजीवाधिकार को जानू ।
निज समयसार के कलश सदैव पिछानू ॥

ॐ ह्री जीवा जीवाधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि ।

अक्षय पद दाता अक्षय गुण मै लाऊ ।
ससार भाव के तंदुल नहीं चढाऊ ॥
अब तो जीवाजीवाधिकार को जानूं ।
निज समयसार के कलश सदैव पिछानूं ॥

ॐ ह्रीं जीवा जीवाधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

प्रभु काम विनाशक पुष्प ज्ञानमय लाऊं ।
निष्काम बनू गुण महाशील ही पाऊं ॥
अब तो जीवाजीवाधिकार को जानूं ।
निज समयसार के कलश सदैव पिछानूं ॥

ॐ ह्रीं जीवा जीवाधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि ।

प्रभु क्षुधा रोग विध्वंसक निज चरु लाऊ ।
हो परम तृप्त निज सुख वैभव ध्रुव पाऊ ॥

जीव जीव है पुद्‌गल पुद्‌गल दोनौं सदा परस्पर भिन्न ।
भिन्न मान पुद्‌गल से तू अपने को निज से सदा अभिन्न ॥

अब तो जीवाजीवाधिकार को जानू ।
निज समयसार के कलश सदैव पिछानू ॥

ॐ ह्री जीवा जीवाधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

मोहान्धकार क्षय हेतु दीप निज लाऊ ।
कैवल्य ज्ञान पा निज निधिया प्रगटाऊ ॥
अब तो जीवाजीवाधिकार को जानू ।
निज समयसार के कलश सदैव पिछानू ॥

ॐ ह्रीं जीवा जीवाधिकार समन्वित समयसार कलशाय शास्त्र मोहन्धकार विनाशनाय दीप

वसु कर्म नाश हित ज्ञान धूप उर लाऊ ।
निज नित्य निरजन आत्म रूप प्रगटाऊ ॥
अब तो जीवाजीवाधिकार का जानू ।
निज समयसार के कलश सदैव पिछानूं ॥

ॐ ह्री जीवा जीवाधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्र अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

निज महा मोक्षफल पाने को ही आया ।
सद्धर्म तत्त्व कथनी को मैने पाया ॥
अब तो जीवाजीवाधिकार को जानू ।
निज समयसार के कलश सदैव पिछानू ॥

ॐ ह्री जीवा जीवाधिकार समन्वित समयसार कलशाय शास्त्र मोक्षफल प्राप्ताय फल नि.

निज ज्ञान अर्घ्य मै लाया हू हे स्वामी ।
निज पद अनर्घ्य मुझको दो अन्तर्यामी ॥
अब तो जीवाजीवाधिकार को जानू ।
निज समयसार के कलश सदैव पिछानूं ॥

ॐ ह्रीं जीवा जीवाधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

अनुत्पन्न अथवा विनष्ट पर्यायें सभी ज्ञान को ज्ञेय ।
ये सर्वज्ञ ज्ञान से बाहर हों तो कैसा ज्ञानी ज्ञेय ॥

अर्घ्यावलि

(जीवा जीवाधिकार)

(३३)

अब जीवद्रव्य और अजीवद्रव्य-वे दोनों एक होकर रंगभूमि मे प्रवेश करते हैं ।

इसके प्रारम्भ में मंगल के आशय से आचार्यदेव ज्ञान की महिमा करते हैं कि सर्व वस्तुओ को जानने वाला यह ज्ञान है वह जीव-अजीव के सर्व स्वागों को भलीभांति पहिचानता है । ऐसा सम्यक्ज्ञान प्रगट होता है-इस अर्थरूप काव्य कहते हैं :-

शार्दूल विक्रीड़ित

जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदान्
आसंसार निबद्धबंधनविधिध्वंसाद्विशुद्धं स्फुटत् ।
आत्मारामममनंतधाम महसाध्यक्षेण नित्योदितं
धीरोदात्तमनाकुलं विलसति ज्ञानं मनो ह्लादयत् ॥३३॥

अर्थ- ज्ञान है वह मनको आनद रूप करता हुआ प्रगट होता है । वह जीव-अजीव के स्वाग को देखने वाले महापुरुषों के जीव-अजीव के भेद को देखने वाली अति उज्ज्वल निर्दोष दृष्टि के द्वारा भिन्न द्रव्य की प्रतीति उत्पन्न कर रहा है । अनादि संसार से जिनका बन्धन दृढ बधा हुआ है ऐसे ज्ञानावरणादि कर्मों के नाश से विशुद्ध हुआ है, स्फुट हुआ है जैसे फूल की कली खिलती है, उसी प्रकार विकास रूप है । और उसका रमण करने का क्रीड़ावन आत्मा ही है, अर्थात् उसमे अनन्त ज्ञेयो के आकार आकर झलकते हैं तथापि वह स्वयं अपने स्वरूप में ही रमता है; उसका प्रकाश अनन्त है, और वह प्रत्यक्ष तेज से नित्य उदय रूप है । तथा वह धीर है, उदात्त (उच्च) है और इसीलिए अनाकुल है- सर्व इच्छाओं से रहित निराकुल है ऐसा ज्ञान विलास करता है ॥३३॥

३३ ॐ ह्रीं अनादिनिबद्धबन्धनविधिरहितज्ञानस्वरूपाय नम. ।

निराकुलज्ञानस्वरूपोऽहं ।

उपादान की चर्चा होते ही निमित्त कुढ जाता है ।
उपादान बलशाली लखते ही निमित्त उड जाता है ॥

ताटंक

जो उज्ज्वल निर्दोष दृष्टि से जीव अजीव भेद जाने ।
भिन्न द्रव्य की प्रतीतिकर के आत्म द्रव्य को पहचाने ॥
ज्ञानावरणादिक कर्मो के क्षय से होता परम विशुद्ध ।
कमल फूल सम खिल जाता है हो जाता है निर्मल शुद्ध॥
निज स्वरूप मे ही रमता है पाता प्रकट अनत प्रकाश ।
नित्योदय प्रत्यक्ष तेज से धीर उदात्त स्वज्ञान विलास ॥
जीवाजीव आदि को जानू करू आत्मा का चिन्तन ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर काटू कर्मो के बधन ॥३३॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(३४)

यहाँ पुद्गल भिन्न आत्मा की उपलब्धि के प्रति विरोध करने वाले पुरुष को मिठासपूर्वक ही इस प्रकार उपदेश करना यह काव्य मे बतलाते हैं -

मालिनी

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम् ।
हृदयसरसि पुंसः पुदगलाद्भिन्नधाम्नो
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः ॥३४॥

अर्थ- हे भव्य ! तुझे अन्य व्यर्थ ही कोलाहल करने से क्या लाभ है? तू इस कोलाहल से विरक्त हो और एक चैतन्यमात्र वस्तु को स्वय निश्चल लीन होकर देख , ऐसा छह मास अभ्यास कर और देख कि ऐसा करने से अपने हृदय सरोवर में, जिसका तेज, प्रताप, प्रकाश पुद्गल से भिन्न है ऐसे उस आत्मा की प्राप्ति नहीं होती है या होती है ॥३४॥

३४ ॐ ह्रीं अकार्यकोलाहलरहितचित्स्वभावाय नम ।

आचलचित्स्वरूपोऽहं ।

शुद्ध स्फटिक मणि समान तू सदा त्रिकाली महिमामय ।
राग द्वेष के परिणामों से होता है चहुँगति दुखमय ॥

ताटंक

अन्य व्यर्थ कोलाहल से क्या कोलाहल से विरक्त हो।
निज चैतन्य वस्तुमे निश्चय लीन रहो उर सशक्त हो ॥
इस प्रकार का मात्र मास छह का अभ्यास बहुत पर्याप्त।
पुद्गल तन से भिन्न आत्म सर में ही रस आत्मा कर प्राप्त ॥
जीवाजीव आदि को जानू करू आत्मा का चिन्तन ।
समययार रस कलश प्राप्त कर काटू कर्मो के बधन ॥३४ ॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(३५)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहकर ऐसे आत्मा के अनुभव की प्रेरणा करते है -

मालिनी

सकलमपि विहायाह्नय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम् ।
इममुपरि चरंतं चारु विश्वस्य साक्षात्
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनंतम् ॥३५॥

अर्थ- चित्शक्ति से रहित अन्य समस्त भावो को मूल से छोडकर और प्रगट रूप से अपने चित्शक्तिमात्र भाव का अवगाहन करके, समस्त पदार्थ समूह रूप लोक के ऊपर सुन्दर रीति से प्रवर्तमान ऐसे यह एकमात्र अविनाशी आत्मा का भव्यात्मा आत्मा मे ही अभ्यास करो, साक्षात् अनुभव करो ॥३५॥

३५ ॐ ह्रीं चिच्छक्तिमात्रस्वरूपाय नम ।

परमानंदस्वरूपोऽहं ।

शुद्ध प्रकाशमान शुद्ध है नहीं अचेतन पल भर भी ।
गगन अचेतन तू है चेतन पर का रंच न तिल भर भी ॥

वीरछंद

चित्स्वशक्ति से रहित सर्व पर भाव मूल से पूरे छोड़ ।
निज स्वशक्ति में अवगाहन कर आत्म शक्ति से निज को जोड॥
अविनाशी आत्मा का ही भव्यात्मा सतत करो अभ्यास।
आत्मा मे रह साक्षात् अनुभवन करो ले दृढ विश्वास ॥
जीवाजीव आदि को जानू करू आत्मा का चिन्तन ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर काटू कर्मो के बधन ॥३५॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(३६)

अब चित्शक्ति से अन्य जो भाव हैं वे सब पुद्गलद्रव्य सम्बन्धी हैं ऐसी आगे की गाथाओ की सूचनारूप से श्लोक कहते है -

अनुष्टुप्

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयम् ।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्‌गलिका अमी ॥३६॥

अर्थ- चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है ऐसा यह जीव इतना मात्र ही है , इस चित्शक्ति से शून्य जो ये भाव हैं वे सभी पुद्गलजन्य हैं-पुद्गल के ही हैं॥३६॥

३६ ॐ ह्री अनतविरागधामस्वरूपाय नम ।

सहजचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

चित्स्वशक्ति से शून्य भाव पुद्गल संबधी पुद्गल जन्य।
निज चैतन्य शक्ति से जो हैं भिन्न भाव वे सब हैं अन्य॥
जीवाजीव आदि को जानूं करूं आत्मा का चिन्तन ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर काटूं कर्मो के बधन ॥३६॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

मोक्ष मार्ग अपने भीतर है तू बाहर करता है खोज ।
मोह जाल में ही उलझा है भूल गया है अपना ओज ॥

(३७)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :-

शालिनी

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा
भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः ।
तेनैवांतस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी
नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥३७॥

अर्थ- जो वर्णादिक अथवा रागमोहादिक भाव कहे वे सब ही इस पुरुष से भिन्न हैं इसलिये अन्तर्दृष्टि से देखने वाले को यह सब दिखाई नहीं देते, मात्र एक सर्वोपरि तत्त्व ही दिखाई देता है-केवल एक चैतन्यभाव स्वरूप अभेदरूप आत्मा ही दिखाई देता है ॥३७॥

३७ ॐ ह्रीं रागमोहादिरहितचित्स्वभावाय नम. ।

नीरागस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

ये वर्णादिक मोह राग के भाव आत्मा से हैं भिन्न ।
अंतर दृष्टि देखने वाले तो निज से हैं सदा अभिन्न ॥
सर्वोत्तम निज आत्म तत्त्व ही उन्हें दिखाई देता है ।
एक मात्र चैतन्य स्वरूप अभेद दृष्टि मे लेता है ॥
जीवाजीव आदि को जानूं करू आत्मा का चिन्तन ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर काटू कर्मो के बंधन ॥३७॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(३८)

यहाँ इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

उपजाति

निर्वर्त्यते येन यदत्र किंचित्
तदेव तत्स्यान्न कथंचनान्यत् ।

एक मात्र शुद्धोपयोग से श्रमण निराश्रव होता है ।
जो शुभोपोयोगी होता है वही साश्रव होता है ॥

रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं
पश्यंति रुक्मं न कथंचनासिम् ॥३८॥

अर्थ- जिस वस्तु से जो भाव बने, वह भाव वह वस्तु ही है, किसी भी प्रकार अन्य वस्तु नहीं है , जैसे जगत मे स्वर्णनिर्मित म्यानको लोग स्वर्ण ही देखते है, किसी प्रकार से तलवार नही देखते ॥३८॥

३८ ॐ ह्रीं पुद्‌गलद्रव्यरचितकर्मरहितचित्स्वभावाय नम ।

स्वयंभूस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जिस वस्तु से जो बनता है वही वस्तु वह कहलाती ।
स्वर्ण म्यान ज्यो स्वर्ण देखते, वह तलवार न कहलाती॥
वर्णादिक पुद्‌गल विरचित हैं ये पुद्‌गल है जीव नहीं ।
जीव जीव ही नित रहता है वह होता न अजीव कही ॥
जीवाजीव आदि को जानू करू आत्मा का चिन्तन ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर काटू कर्मो के बधन ॥३८॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(३९)

अब दूसरा कलश कहते हैं -

उपजाति

वर्णादिसामग्रयमिदं विदंतु
निर्माणमेकस्य हि पुद्‌गलस्य ।
ततोऽस्त्विदं पुद्‌गल एव नात्मा
यतः स विज्ञानघनस्ततोऽन्यः ॥३९॥

अर्थ- अहो ज्ञानी जनो । ये वर्णादिक से लेकर गुणस्थानपर्यत भाव हैं उन समस्त को एक पुद्‌गल की रचना जानो , इसलिये यह भाव पुद्‌गल ही हों, आत्मा न हों, क्योंकि आत्मा

निन्दा करने वाले का उपकार मानता समभावी ।
निज में सावधान रहता है होता कभी न भव भावी ॥

तो विज्ञानघन है, ज्ञान का पुंज है, इसलिये वह इन वर्णादिक भावों से अन्य ही है ॥३९॥

३९. ॐ ह्रीं पुद्‌गलद्रव्यनिर्मितवर्णादिरहितामूर्तचित्स्वभावाय नमः ।

विज्ञानघनस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

वर्णादिक से गुणस्थान पर्यंत भाव पुद्‌गल रचना ।
ज्ञान पुंज विज्ञान ज्ञान घन आत्मा है पुदगल जड़ ना ॥
जीवाजीव आदि को जानूं करूं आत्मा का चिन्तन ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर काटूं कर्मों के बंधन ॥३९॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४०)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

अनुष्टुप्

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत् ।
जीवो वर्णादिमज्जीवजल्पनेऽपि न तन्मयः ॥४०॥

अर्थ- यदि 'घी का घडा' ऐसा कहने पर भी घड़ा है वह घीमय नहीं है, तो इसी प्रकार 'वर्णादिमान् जीव' ऐसा कहने पर भी जीव है वह वर्णादिमय नहीं है ॥४०॥

४०. ॐ ह्रीं वर्णादिमयरहितज्ञानमयस्वरूपाय नम. ।

चिन्मयस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

घी का घड़ा न घीमय होता वह तो केवल मिट्टीमय ।
त्यों वर्णादि जीव कहने पर जीव नहीं वर्णादिक मय ॥
जीवाजीव आदि को जानूं करूं आत्मा का चिन्तन ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर काटूं कर्मों के बंधन ॥४०॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

आगम के अभ्यास पूर्वक श्रद्धाज्ञान चरित्र सवार ।
निज में ही सकल भाव लाकर तू अपना रूप निहार ॥

(४१)

अब यहाँ प्रश्न होता है कि वर्णादिक और रागादिक जीव नहीं हैं तो जीव कौन है ? उसके उत्तररूप श्लोक कहते हैं -

अनुष्टुप्

अनाद्यनंतमचलं स्वसंवेद्यमिदं स्फुटम् ।
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥४१॥

अर्थ– जो अनादि है, अनन्त है, अचल है, स्वसवेद्य है और प्रगट है-ऐसा जो यह चैतन्य अत्यन्त चकचकित-प्रकाशित हो रहा है, वह स्वय ही जीव है ॥४१॥

४१ ॐ ह्रीं अनाद्यनताचलचित्स्वभावाय नम ।

चैतन्यस्वरूपोऽहं ।

जो अनादि है जो अनत है स्वसवेद्य है अचल प्रगट ।
यह चैतन्य चकचकित होता कर परभाव सदैव विघट ॥
जीवाजीव आदि को जानू करू आत्मा का चिन्तन ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर काटू कर्मो के बधन ॥४१॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४२)

अब, काव्य द्वारा यह समझाते हैं कि चेतनत्व ही जीव का योग्य लक्षण है-

शार्दूल विक्रीडित

वर्णाद्यैःसहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो
नामूर्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः ।
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्यतिव्यापि वा
व्यक्तं व्यंजितजीवतत्त्वमचलं चैतन्यमालंब्यताम् ॥४२॥

अशरीरी बन कर हे चेतन जड का दास बना है क्यों ।
स्व पर प्रकाशक दीपक तल में अंधियारा रहता है क्यों ॥

अर्थ- अजीव दो प्रकार के हैं- वर्णादिसहित और वर्णादिरहित; इसलिये अमूर्तत्वका आश्रय लेकर भी जीव के यथार्थ स्वरूप को जगत् नहीं देख सकता; इस प्रकार परीक्षा करके भेदज्ञानी पुरुषों ने अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दूषणों से रहित चेतनत्व को जीव का लक्षण कहा है वह योग्य है । वह चैतन्य लक्षण प्रगट है, उसने जीव के यथार्थ स्वरूप को प्रगट किया है और वह अचल है-चलाचलता रहित, सदा विद्यमान है । जगत उसीका अवलम्बन करो । ॥४२॥

४२ ॐ ह्रीं मूर्तत्वामूर्तत्वाजीवरहितचित्स्वभावाय नम ।

निश्चलचैतन्यस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

मात्र जीव वर्णादि रहित अरु है अजीव वर्णादि सहित।
मूर्तत्व का आश्रय लेकर सत्य स्वरूप न लखे जगत ॥
चेतनत्व जीव काल क्षण वही योग्य है स्वत प्रगट ।
रहित चलाचलता से विद्य अचल का ही आश्रय लो झट॥
जीवाजीव आदि को जानूं करू आत्मा का चिन्तन ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर काटूं कर्मो के बंधन ॥४२॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४३)

अब' जब कि ऐसे लक्षण से जीव प्रगट है तब भी अज्ञानी जनों को उसका अज्ञान क्यों रहता है ?'-इसप्रकार आचार्यदेव आश्चर्य तथा खेद प्रगट करतेहैं-

वसन्ततिलका

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभन्नं
ज्ञानी जनोऽनुभवति स्वयमुल्लसंतम् ।
अज्ञानिनो निरवधिप्रविजृम्भितोऽयं
मोहस्तु तत्कथमहो बत नानटीति ॥४३॥

अशरीरी चेतन को मैने देखा जगत भार ढोते ।
जल में मानो आग लगी है क्यों प्राणी सुध बुध खोते ॥

अर्थ- यो पूर्वोक्त भिन्न लक्षण के कारण जीव से अजीव भिन्न है उसे अपने आप ही विलसित होता हुआ-परिणमित होता हुआ ज्ञानीजन अनुभव करते हैं , तथापि अज्ञानी को अमर्यादरूप से फैला हुआ यह मोह क्यो नाचता है-यह हमे महा आश्चर्य और खेद है । ॥४३॥

४३. ॐ ह्रीं निरवधिप्रविजृम्भितमोहरहितचित्स्वभावाय नम ।

असीमचित्स्वरूपोऽहं ।

ताटंक

अत जीव से अजीव भिन्न है स्वय परिणमित होता है ।
ज्ञानी इसका अनुभव करके महा ज्ञान पति होता है ॥
अज्ञानी तो मोह भ्रान्ति से पर मे नाचा करता है ।
महाश्चर्य है महाखेद है अज्ञानी दुख भरता है ॥
जीवाजीव आदि को जानू करू आत्मा का चिन्तन ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर काटूं कर्मो के बधन ॥४३॥

ॐ ह्री जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४४)

अब पुन मोहका प्रतिषेध करते हुए कहते हैं कि 'यदि महो नाचता है तो नाचो ? तथापि ऐसा ही है ' -

वसन्ततिलका

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकट्य
वर्णादिमान्नटति पुद्‌गल एव नान्य: ।
रागादिपुद्‌गलविकारविरुद्धशुद्ध-
चैतन्यधातुमयपूर्तिरयं च जीव: ॥४४॥

अर्थ- इस अनादिकालीन महा अविवेक के नाटक में अथवा नाच में वर्णादिमान पुद्‌गल ही नाचता है, अन्य कोई नहीं , और यह जीव तो रागादिक पुद्‌गल विकारों से विलक्षण, शुद्ध चैतन्यधातुमय मूर्ति है ।

४४ ॐ ह्रीं रागादिपुद्गलविकाररहितशुद्धात्मस्वरूपाय नम ।

चैतन्यधातुमयस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

फिर भी जीव नहीं नचता वर्णादि मान पुद्गल नचता ।
रागादिक पुद्गल विकार से सदा विलक्षण जिय रहता॥
रागादिक पुद्गल विकार लख भ्रम मत करना हे प्राणी।
मोक्ष दशा मे रागादिक विकार न होते हैं ज्ञानी ॥
जीवाजीव आदि को जानूं करूं आत्मा का चिन्तन ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर काटूं कर्मो के बधन ॥४४॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४५)

अब, भेदज्ञान की प्रवृत्ति के द्वारा यह ज्ञाताद्रव्य स्वय प्रगट होता है इस प्रकार कलश मे महिमा प्रगट करके अधिकार पूर्ण करते हैं

मन्दाक्रान्ता

इत्थं ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा
जीवाजीवौ स्फुटविघटनं नैव यावत्प्रयातः ।
विश्वं व्याप्य प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या
ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे ॥४५॥

अर्थ- इस प्रकार ज्ञानरूपी करवत का जो बारम्बार अभ्यास है उसे नचाकर जहाँ जीव और अजीव दोनों प्रगट रूप से अलग नहीं हुए, वहाँ तो ज्ञाताद्रव्य, अत्यन्त विकासरूप होती हुई अपनी प्रगट चिन्मात्रशक्ति से विश्व को व्याप्त करके, अपने आप ही अतिवेग से उग्रतया अर्थात् आत्यंतिक रूप से प्रकाशित हो उठा ॥४५॥

४५. ॐ ह्रीं अजीवभेदविकल्परहितचित्स्वभावाय नम ।

ज्ञानक्रकचस्वरूपोऽहं ।

ज्ञानी जान रहा है प्रति पल पर्यायें होती क्रमबद्ध ।
जो क्रमबद्ध न जान सका है वह होता कर्मो से बद्ध ॥

वीरछंद

ज्ञान रूप करवत का जिसने बारम्बार किया अभ्यास।
निज चिन्मात्र शक्ति से ज्ञाता द्रव्य प्रकाशित है सविकास॥
प्रगट रूप से जीव अजीव पृथक तो हुए नहीं है पर ।
किन्तु ज्ञान मे पृथक भासते जीव अजीव पृथक सत्वर॥
जीव अजीव अलग है दोनो यही तत्त्व का सार प्रधान।
इसका ही विस्तार कथन है जिन आगम मे महामहान॥
जीवाजीव आदि को जानू करू आत्मा का चिन्तन ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर काटू कर्मो के बधन ॥४५॥

ॐ ह्री जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

महाअर्घ्य

छंद-ताटक

दुर्दमनीय मोह का करके हनन हरू मिथ्या दर्शन ।
वन्दनीय निज ज्ञान प्राप्त कर प्राप्त करू सम्यक् दर्शन॥
समयसार वैभव की महिमा से मै शोभित हो जाऊ ।
भेद ज्ञान का सबल लेकर सिद्ध स्वपद को प्रगटाऊ ॥
अर्चनीय तिहु जग से होकर सिद्धपुरी मे रहू सदा ।
अनुभव रस के सुख समुद्र मे ज्ञायक होकर बहू सदा॥
पुण्य पाप आस्रव विनाशकर बध रहित मै हो जाऊ ।
महाअर्घ्य अर्पित करने को फिर न कभी भव में आऊ॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय महाअर्घ्यं नि ।

जयमाला

ताटंक

नय विलास विरहित अद्वैत अखड आत्मा अविकारी ।
भेदभाव इसमे न कहीं है सतत अनवरत सुखकारी ॥

तीर्थो मे भी देव नहीं है ना पर्वत सरि उपर देव ।
देव देह देवालय मे ही रहते हैं रख याद सदेव ॥

यह ध्याता है यही ध्येय है यही ध्यान है यही सुफल ।
मुक्त विकल्पो के जालो से निज परमात्म तत्त्व अविकल॥
स्वात्म निष्ठ संयमी, काय से उत्पन्नित कर्मो को त्याग।
जल्प समूह विरति के कारण भाव मानसिक कर दू त्याग॥
करू आत्मा का ही चिन्तन उर मे जागे परम विराग ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य शक्ति पा क्षय कर दू भव दुख की आग॥

गीत

जिनवर का उपदेश मुझको सुनाओ ।
भेदज्ञान की सुविधि मुझको सिखाओ ॥
आत्मा मे गुण अनत दिखते फिर क्यो नहीं ।
यह बात खुल करके मुझको समझाओ ॥
बहिर्भाव त्यागे बिन ज्ञान नहीं होता ।
है अनुभव गोचर ये अनुभव से पाओ ॥
कौतूहल से ही करो इससे ही परिचय ।
जिज्ञासा पूर्वक इसे जान जाओ ॥
शाश्वत सुखो का है सागर निराला ।
इसके ही भीतर अब जाकर समाओ ॥

ॐ ह्रीं समयसारप्राभृतग्रन्थे जीवाजीवाधिकारे कलशस्वरूपचित्स्वभावाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा ।

आशीर्वाद :

जीव अजीव अधिकार का पाया सम्यक् ज्ञान ।
अपना जीव पिछान कर करूं आत्म कल्याण ॥

इत्याशीर्वाद :

शुद्ध आत्मा जो न जानते भ्रमते वे चारों गति में ।
शुद्ध आत्मा की रुचि वालों को जिनदर्शन निजमति में ॥

ॐ

कर्त्ताकर्म अधिकार पूजन

स्थापना

छंद-हरिगीत

कर्म का कर्त्ता न मै हू ज्ञान का कर्त्ता सदा ।
कर्म भाव न है हृदय मे ज्ञानमय हू सर्वदा ॥
ज्ञान के अतिरिक्त मेरा नहीं कुछ भी काम है ।
शुद्ध ज्ञान महान ही तो प्रभो निज ध्रुवधाम है ॥
आज कर्त्ताकर्म के अधिकार की पूजन करूँ ।
बुद्धि कर्त्ता छोड़कर प्रभु कर्म के बधन हरूं ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्।

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन।

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र मम सन्निहितो भव भव षट् ।

अष्टक

वीरछंद

सहजावस्था रूप जो कि है विद्यमान कर्मो से दूर ।
मुक्ति ध्येय है आत्म निष्ठ को शमसम जल निधि से भरपूर॥
कर्त्ताकर्म स्वरूप जानकर पर कर्तृत्व अभाव करूं ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर निर्मल आत्म स्वभाव वरूं ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि ।

एक एक परमाणु परिणमित होता स्वतंत्रता पूर्वक ।
होता है क्रम बद्ध परिणमन सदा त्रिकाल स्वक्रम पूर्वक ॥

शुद्ध भाव ने धवलित कर डाला है सर्व दिशा मंडल ।
परमालोचन के चंदन से शीतल हुआ परम निर्मल ॥
कर्त्ताकर्म स्वरूप जानकर पर कर्तृत्व अभाव करूं ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर निर्मल आत्म स्वभाव वरूं ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय ससारताप विनाशनाय चदनं नि ।

द्रव्य कर्म नो कर्म भिन्न है अक्षय पद युत शुद्धात्मा ।
शम दम रूपी गुणकमलों का राजहंस है निज आत्मा॥
कर्त्ताकर्म स्वरूप जानकर पर कर्तृत्व अभाव करू ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर निर्मल आत्म स्वभाव वरूं ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत नि ।

निर्मल अंतरंग गुणमणियों का समूह है शान्त स्वरूप ।
चिदानंद चैतन्य चमत्कृत शीलमयी है निज चिद्रूप ॥
कर्त्ताकर्म स्वरूप जानकर पर कर्तृत्व अभाव करूं ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर निर्मल आत्म स्वभाव वरू ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय कामबाण विनाशनाय पुष्प नि ।

शुद्ध बुद्ध है विषय सुखों में रत जीवों को है दुर्लभ ।
परम शुद्ध नैवेद्य तृप्तिमय जो अपनाए उसे सुलभ ॥
कर्त्ताकर्म स्वरूप जानकर पर कर्तृत्व अभाव करूं ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर निर्मल आत्म स्वभाव वरूं ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि ।

जो व्यवहार छोड कर लेते नि शकित हो निज आश्रय ।
वे ही सिद्धो के लघुनदन शिव सुख योगी कर निर्णय ॥

द्रव्य क्षेत्र भव काल भाव परिवर्त्तन से जो विरहित है ।
भव विभ्रमतम का क्षयकारी ज्ञान दीप ही निश्चित है॥
कर्त्ताकर्म स्वरूप जानकर पर कर्तृत्व अभाव करू ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर निर्मल आत्म स्वभाव वरू ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय मोहन्धकार विनाशनाय दीप नि ।

जो विभाव क्षय हेतु भूत दुष्कृत सुकृत की नाशक है ।
कर्म जाल को जला रही निज धूप स्वभाव प्रकाशक है॥
कर्त्ताकर्म स्वरूप जानकर पर कर्तृत्व अभाव करू ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर निर्मल आत्म स्वभाव वरू ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

भव्य लोक जिनपति के पथ मे जब पर भाव छोड देता।
मोक्षरूप रमणी का वल्लभ होता सौख्य जोड लेता ॥
कर्त्ताकर्म स्वरूप जानकर पर कर्तृत्व अभाव करू ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर निर्मल आत्म स्वभाव वरू ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

भव रोगो की उत्तम औषधि अर्घ्य शुभाशुभ भाव रहित।
आदि अत से रहित ललित यह पद अनर्घ्य शिव सौख्य सहित॥
कर्त्ताकर्म स्वरूप जानकर पर कर्तृत्व अभाव करू ।
समयसार रस कलश प्राप्त कर निर्मल आत्म स्वभाव वरू ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

परम ममत्व तज अपने से ही जो अपनत्व मानते हैं ।
वे शुद्धात्म तत्त्व के ज्ञाता सिद्ध स्वरूप जानते हैं ॥

अर्घ्यावलि

(कर्ताकर्म अधिकार)

(४६)

अब पहले, उस स्वाँग को ज्ञान यथार्थ जान लेता है उस ज्ञानकी महिमा का काव्य कहते हैं -

मन्दाक्रान्ता

एकः कर्त्ता चिदहमिह मे कर्म कोपादयोऽमी
इत्यज्ञानां शमयदभितः कर्तृ कर्मप्रवृत्तिम् ।
ज्ञानज्योतिः स्फुरति परमोदात्तमत्यंतधीरं
साक्षात्कुर्वन्निरुपधिपृथग्द्रव्यनिर्भासि विश्वम् ॥४६॥

अर्थ- इस लोक मे मै चैतन्यस्वरूप आत्मा तो एक कर्त्ता हूँ और यह क्रोधादि भाव मेरे कर्म है 'ऐसी अज्ञानियों के जो कर्त्ताकर्म की प्रवृत्ति है उसे सब ओर से शमन करती हुई ज्ञानज्योति स्फुरायमान होती है । वह ज्ञान-ज्योति परम उदात्त है अर्थात् किसी के आधीन नहीं है, अत्यन्त धीर है अर्थात किसी भी प्रकार से आकुलतारूप नहीं है और पर की सहायता के बिना भिन्न-भिन्न द्रव्यो को प्रकाशित करने का उसका स्वभाव है इसलिये
सहायता के बिना भिन्न-भिन्न द्रव्यो को प्रकाशित करने का उसका स्वभाव है इसलिये *वह समस्त लोकालोक को साक्षात् करती है प्रत्यक्ष जानती है ॥४६॥*

४६ ॐ ह्रीं कर्ताकर्मप्रवृत्तिरहिताकर्तास्वरूपाय नम. ।

निरुपधिज्ञानस्वरूपोऽहं ।

छंद

मैं चैतन्य अत्मा कर्त्ता क्रोधादिक है मेरे कर्म ।
अज्ञानी की कर्त्ता कर्म प्रवृति को क्षय करता निज धर्म॥
पर प्रवृति को करती शमन स्वज्ञान ज्योति जब जगती है ।
परम उदात्त स्वतत्र धीर छवि लख आकुलता भगती है॥

जो इच्छा विहीन तप करते वे ही पाते शुद्ध स्वरूप ।
जो इच्छाओं से प्रेरित हो करते तप वे ही विद्रूप ॥

पर सहाय बिन भिन्न भिन्न द्रव्यों को करती सदा प्रकाश।
यह स्वभाव है लोकालोक साक्षात् करती निज पास ॥
ऐसा ज्ञान स्वरूप आत्मा स्वय प्रगट है प्रकाशमान ।
पर द्रव्यों परभावों को पल में क्षयकर देता है ज्ञान ॥
कर्त्ता कर्म स्वरूप जानकर पर कर्तृत्व भाव छोडूँ ।
आत्म भान कर ज्ञान क्रिया से ही केवल नाता जोडूँ ॥४६॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४७)

यहाँ कलशरूप काव्य कहते हैं -

मालिनी

पर परिणति मुज्झत् खंडय भेदवाद्य ।
निदमुदितम खंडं ज्ञान मुच्चंड मुच्चै: ॥
ननु कथमवकाश: कर्तृ कर्मप्रवृत्ते-
रिह भवति कथं वा पौद्गल: कर्मबंध: ॥४७॥

अर्थ- परपरिणति को छोडता हुआ, भेद के कथनो को तोडता हुआ, यह अखण्ड और अत्यन्त प्रचण्ड ज्ञान प्रत्यक्ष उदय को प्राप्त हुआ है। अहो! ऐसे ज्ञान में कर्त्ताकर्म की प्रवृत्ति का अवकाश कैसे हो सकता है ? तथा पौद्गलिक कर्मबन्ध भी कैसे हो सकता है ?॥४७॥

४७ ॐ ह्रीं अखण्डज्ञानस्वरूपाय नम ।

प्रचण्डबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

पर परिणति को छोड़ भेद के कथनों को तोडता हुआ।
यह अखंड अत्यंत प्रचड स्वज्ञान उदय जोडता हुआ ॥
इसमें कर्त्ताकर्म प्रवृत्ति को कैसे मिल सकता अवकाश ।
पौदगलिक संबंध कर्म का कैसे होगा यहाँ विकास ॥

कर्त्ता कर्म स्वरूप जानकर पर कर्तृत्व भाव छोड ।
आत्म भान कर ज्ञान क्रिया से ही केवल नाता जोडूँ ॥४७॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४८)

अब इसी अर्थ का कलशरूप तथा आगे के कथन का सूचक काव्य कहते हैं :-

शार्दूल विक्रीड़ित

इत्येवं विरचय्य संप्रति परद्रव्यान्निवृत्तिं परां ।
स्वं विज्ञानघनस्वभावमभयादास्तिघ्नुवानः परम् ।
अज्ञानोत्थितकर्तृ कर्मकलनात् क्लेशान्निवृत्तः स्वयं
ज्ञानीभूत इतश्चकास्ति जगतः साक्षी पुराणः पुमान् ॥४८॥

अर्थ- इस प्रकार पूर्वकथित विधान से, अधुना ही परद्रव्य से उत्कृष्ट निवृत्ति करके, विज्ञानघन स्वभावरूप केवल अपनेपर निर्भयता से आरूढ़ होता हुआ अर्थात् अपना आश्रय करता हुआ अज्ञान से उत्पन्न हुई कर्ताकर्म की प्रवृत्ति के अभ्यास से उत्पन्न क्लेशों से निवृत्त हुआ, स्वय ज्ञानस्वरूप होता हुआ, जगत का साक्षी पुराण पुरुष अब यहा से प्रकाशमान होता है ॥४८॥

४८ ॐ ह्रीं नि.शङ्कज्ञानस्वरूपाय नम ।

निर्भयस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

अधुना पर द्रव्यों से तू उत्कृष्ट निवृत्ति अभी पाले ।
निज स्वभाव विज्ञान ज्ञानघन ध्रुव के आश्रय में आ ले॥
कर्ताकर्म प्रवृत्ति क्लेश से अब निवृत्त हो ज्ञानी बन ।
मात्र साक्षी ज्ञाता दृष्टा ज्ञान प्रमाण पुरुष ही बन ॥
कर्त्ता कर्म स्वरूप जानकर पर कर्तृत्व भाव छोडूँ ।
आत्म भान कर ज्ञान क्रिया से ही केवल नाता जोडूँ॥४८॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

तीन काल तीनो लोकों में मुक्ति मार्ग है केवल एक ।
शुद्ध आत्मा का चितन ही परभावों से है व्यतिरेक ॥

(४९)

अब इसी अर्थ का समर्थक कलशरूप काव्य कहते हैं :-

शार्दूल विक्रीडित

व्याप्यव्यापकता तदात्मनि भवेन्नैवातदात्मन्यपि
व्याप्यव्यापकभावसंभवमृते का कर्तृ कर्मस्थिति : ।
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहोभारेण भिंदंस्तमो
ज्ञानीभूय तदा स एष लसितः कर्तृत्वशून्य पुमान ॥४९॥

अर्थ- व्याप्यव्यापकता तत्स्वरूप मे ही होती है, अतत्स्वरूप मे नहीं ही होती । और व्याप्यव्यापकभाव के सभव के बिना कर्त्ताकर्म की स्थिति कैसी ? अर्थात् कर्त्ताकर्म की स्थिति नहीं होती । ऐसे प्रबल विवेकरूप, और सबको ग्रासीभूत करने के स्वभाव वाले ज्ञानप्रकाश के भार से अज्ञानाधकार को भेदता हुआ यह आत्मा ज्ञानस्वरूप होकर, उस समय कर्तृत्वरहित हुआ शोभित होता है ॥४९॥

४९ ॐ ह्रीं व्यापव्यापकभावरहितचित्स्वभावाय नम ।

ज्ञानप्रकाशस्वरूपोऽहं ।

ताटक

व्याप्य तथा व्यापकता देखो तत् स्वरूप मे ही होती ।
नही अतत् स्वरूप मे होती ऐसी बुद्धि जहॉ होती ॥
कर्त्ताकर्म स्थिति ना होती उर मे जगता प्रबल विवेक ।
ज्ञान प्रकाश क्षीण करता है अज्ञानांधकार प्रत्येक ॥
यह आत्मा ही ज्ञान स्वरूपी होता पर कर्तृत्व रहित ।
होता अति शोभायमान यह गुण अनत परिपूर्ण सहित॥
कर्त्ता कर्म स्वरूप जानकर पर कर्तृत्व भाव छोडूँ ।
आत्म भान कर ज्ञान क्रिया से ही केवल नाता जोडूँ ॥४९॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

विषय कषायों की छलनामें जैसे लगता है यह मन ।
उसी भाति निज शुद्ध आत्मा में ही रह मेरे चेतन ॥

(५०)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :-

स्रग्धरा

ज्ञानी जानन्नपीमां स्वपरपरिणतिं पुद्गलश्चाप्यजानन्
व्याप्तृव्याप्यत्वमंतः कलयितुमसहौ नित्यमत्यंतभेदात् ।
अज्ञानात्कर्तृ कर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न यावत्
विज्ञानार्चिश्चकास्ति क्रकचवददयं भेदमुत्पाद्य सद्यः ॥५०॥

अर्थ- ज्ञानी तो अपनी और परकी परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है और पुद्गलद्रव्य अपनी तथा परकी परिणति को न जानता हुआ प्रवर्तता है , इस प्रकार उनमें सदा अत्यन्त भेद हो से वे दोनो परस्पर अन्तरग मे व्याप्यव्यापकभाव को प्राप्त होने मे असमर्थ हैं । जीव-पुद्गल के कर्ताकर्मभाव है ऐसी भ्रमबुद्धि अज्ञान के कारण वहाँ तक भासित होती है कि जहा तक विज्ञानज्योति करवत की भाँति निर्दयता से जीव-पुद्गल का तत्काल भेद उत्पन्न करके प्रकाशित नही होती ॥५०॥

५० ॐ ह्रीं अचित्पुद्गलव्याप्तृव्याप्यत्वरहितचितस्वभावाय नम ।

विज्ञानार्चिस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

ज्ञानी अपनी अरु पर की परिणति को जान प्रवर्तता है।
पुद्गल अपनी अरु पर की परिणति ना जान प्रवर्तता है॥
दोनो मे अत्यत भेद है नहीं व्याप्य अरु व्यापक भाव ।
जीव रूप पुद्गल को कर्त्ता कर्म भाव का सदा अभाव॥
भेद ज्ञान विज्ञान ज्योति करवत जब होती है निर्दय ।
जीव और पुद्गल का भेद प्रकाशित होता है निश्चय ॥५०॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(५१)

अब इसी अर्थ का समर्थक कलशरूप काव्य कहते हैं -

सहज सिद्ध सुख पाना है तो सिद्धों का लघु नंदन बन ।
एक समय में मिट जाएगा यह अनादि चहुँ गति क्रन्दन ॥

आर्या

यः परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म ।
या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया ॥५१॥

अर्थ- जो परिणमित होता है सो कर्ता है । जो परिणाम है सो कर्म है और जो परिणत है सो क्रिया है , यह तीनों, वस्तुरूप से भिन्न नहीं है ॥५१॥

५१ ॐ ह्रीं कर्ताकर्मक्रियाविकल्परहितबोधस्वरूपाय नम. ।

सहजशिवस्वरूपोऽहं ।

रोला

जो होता परिणमित वही कर्त्ता कहलाता ।
जो परिणाम वही तो उसका कर्म कहाता ॥
जो परिणति है वही क्रिया है उसको जानो ।
वस्तु रूप से भिन्न नही है इसको मानो ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥५१॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(५२)

पुन कहते हैं कि -

आर्या

एकः परिणमति सदा परिणामो जायके सदैकस्य ।
एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः ॥५२॥

अर्थ- वस्तु एक ही सदा परिणमित होती है, एक के ही सदा परिणाम होते हैं और एककी ही परिणति- क्रिया होती है; क्योंकि अनेकरूप होने पर भी एक ही वस्तु है भेद नहीं है॥

५२ ॐ ह्रीं परिणामादिविकल्परहितज्ञानस्वरूपाय नम. ।

ब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

रोला

वस्तु एकही सदा परिणमित होती जानो ।
उसके ही परिणाम सदा होते हैं मानो॥
उसकी परिणति क्रिया उसी में ही होती है।
रूप विविध परवस्तु अभेद एक होती है ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनंद मनाओ ॥५२॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(५३)

और कहते हैं कि -

आर्या

नोभौ परिर्णमत: खलु परिणामो नोभयो: प्रजायेत ।
उभयोर्न परिणति: स्याद्यदनेकमनेकमेव सदा ॥५३॥

अर्थ- दो द्रव्य एक होकर परिणमित नहीं होते, दो द्रव्यों का एक परिणाम नहीं होता और दो द्रव्यो की एक परिणति-क्रिया नहीं होती, क्योकि जो अनेक द्रव्य हैं सो सदा अनेक ही है, वे, बदलकर एक नहीं हो जाते ॥५३॥

५३ ॐ ह्रीं उभयद्रव्यक्रियादिरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

शांतस्वरूपोऽहं ।

रोला

दो द्रव्यो का कभी एक परिणाम न होता ।
नही परिणमित होते दोनो एक हि होता ॥
दो द्रव्यो की परिणति कभी एक ना होती ।
द्रव्य अनेकों कभी बदलकर एक न होती ॥

परं ब्रह्म को ज्ञान नेत्र से जिसने निरखा प्राप्त किया ।
ध्यान शक्ति से निज दर्शन कर परमतेज परिपूर्ण लिया ॥

समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥५३॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(५४)

पुन इस अर्थ को दृढ करते है -

आर्या

नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य ।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥५४॥

अर्थ- एक द्रव्य के दो कर्ता नही होते, और एक द्रव्य के दो कर्म नही होते तथा एक द्रव्य की दो क्रियाएँ नही होती, क्योकि एक द्रव्य अनेक द्रव्यरूप नही होता ॥५४॥

५४ ॐ ह्रीं एकद्रव्यानेककर्तादिभावरहितचैतन्यस्वरूपाय नम ।

प्रशांतस्वरूपोऽहं ।

रोला

एक द्रव्य दो द्रव्यो का कर्त्ता ना होता ।
एक द्रव्य दोनों का कुछ भी कर्म न होता ॥
एक द्रव्य की दो दो क्रिया कभी ना होती ।
एक द्रव्य अनेक रूप द्रव्य ना होती ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥५४॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(५५)

आत्मा के अनादि से परद्रव्य के कर्ताकर्मपने का अज्ञान है यदि वह परमार्थनय के ग्रहण से एक बार भी विलय को प्राप्त हो जाये तो फिर न आये, अब ऐसा कहते हैं -

गंभीर रहस्य जानने का उत्तम उपाय तू ज्ञाता बन ।
चैतन्य चमत्कारी हीरा प्रति समय निरख तू दृष्टा बन ॥

शार्दूल विक्रीडित

आसंसारत एव धावति परं कुर्वेऽहमित्युच्चकै-
र्दुर्वारं ननु मोहिनामिह महाहंकाररूपं तमः ।
तद्भूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजेत्
तत्किं ज्ञानघनस्य बंधनमहो भूयो भवेदात्मनः ॥५५॥

अर्थ- इस जगत् में मोही जीवो का 'परद्रव्य को मै करता हूँ' ऐसा परद्रव्य के कर्तृत्व का महा अहकार रूप अज्ञानाधकार जो अत्यन्त दुर्निवार है वह-अनादि संसार से चला आ रहा है। आचार्य कहते हैं कि-अहो! परमार्थनय का अर्थात् शुद्धद्रव्यार्थिक अभेदनय का ग्रहण करने से यदि वह एक बार भी नाश को प्राप्त हो तो ज्ञानघन आत्मा को पुन: बन्धन कैसे हो सकता है ? ज्ञान होने के बाद ज्ञान कहाँ जा सकता है? ॥५५॥

५५ ॐ ह्रीं परद्रव्यकर्तृत्वमहाहकाररूपतमरहितज्ञानप्रकाशाय नम ।

स्वतंत्रस्वरूपोऽहं ।

रोला

पर द्रव्यों को मै करता कहता अज्ञानी ।
दुर्निवार है पर का तो कर्तृत्व सदा ही ॥
नय परमार्थ ग्रहण कर्त्ता का मोह क्षीण है ।
शुद्ध ज्ञान धन पाकर आत्मा निजाधीन है ॥
फिर अज्ञान बध क्यो होगा यह बतलाओ ।
ज्ञान ज्ञान मे सदा रहेगा निज गुण गाओ ॥
समयसार रस कलश भरो निज में ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनंद मनाओ ॥५५॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(५६)

अब पुन विशेषतापूर्वक कहते हैं -

अनुष्टुप

आत्मभावान्करोत्यात्मा परभावान्सदा परः ।
आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते ॥५६॥

श्लोकार्थ- आत्मा तो सदा अपने भावो को करता है और परद्रव्य परके भावो को करता है , क्योकि जो अपने भाव हैं सो तो आप ही है और जो परके भाव है सो पर ही है ॥५६॥

५६ ॐ ह्री परभावरहितनिजानदस्वरूपाय नम ।

अत्यानंदस्वरूपोऽहं ।

रोला

आत्मा तो अपने भावो को ही करता है ।
ये परभाव सदैव द्रव्य पर ही करता है ॥
निज के भाव सदा निज है यह निश्चय जानो ।
परके भाव सदा ही पर हैं यह उर आनो ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥५६॥

ॐ ह्रीं कर्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(५७)

अब इसी अर्थ काकलशरूप काव्य कहते हैं -

वसततिलका

अज्ञान तस्तु सतृणाभ्यवहारकारी ।
ज्ञानं स्वयं किल भवन्नपिइज्यतेयः ॥
पीत्वा दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृद्धया
गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसालम् ॥५७॥

सब प्रकार की बाधाओं से मुक्त सर्व संयोग रहित ।
वीतराग जिनदेव भावना ही सर्वज्ञ स्वभाव सहित ॥

अर्थ- निश्चय से स्वय ज्ञानस्वरूप होने पर भी अज्ञान के कारण जो जीव, घास के साथ एकमेक हुये सुन्दर भोजन को खाने वाले हाथी आदि पशुओं की भाँति, राग करता है वह, श्रीखड के खट्टे-मीठे स्वाद की अति लोलुपता से श्रीखण्ड को पीता हुआ भी स्वय गाय का दूध पी रहा है ऐसा मानने वाले पुरुष के समान है ॥५७॥

५७ ॐ ह्रीं अज्ञानतारहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

भगवानस्वरूपोऽहं ।

रोला

ज्ञान स्वरूपी तो अज्ञान भाव के कारण ।
अपना ज्ञान स्वरूप राग से करता जारण ॥
श्रीखड का ज्यो ले स्वाद भेद ना जाने ।
तैसे ही अज्ञानी अपना स्वाद न जाने ॥
वह पशुओ की भाति स्वपर का करके मिश्रण ।
लेता रहता स्वाद भ्रान्ति से ही तो प्रतिक्षण ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥५७॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(५८)

अज्ञान से ही जीव कर्ता होता है इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं

शार्दूल विक्रीडित

अज्ञानान्मृगतृष्णिकां जलधिया धावंति पातुं मृगा
अज्ञानात्तमसि द्रवंति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः ।
अज्ञानाच्च विकल्प चक्रकरणाद्वातोत्तरंगाब्धिवत्
शुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवंत्याकुला : ॥५८॥

अर्थ- अज्ञान के कारण मृग मरीचिका में जल की बुद्धि होने से हिरण उसे पीने को दौड़ते

ध्यान हीन को कभी न हो सकता निज परमात्मा दर्शन ।
है अध्यात्म कला विहीन तो उसको है मिथ्यादर्शन ॥

हैं; अज्ञान के कारण ही अन्धकार मे पडी हुई रस्सी मे सर्प का अध्यास होने से लोग भागते हैं, और अज्ञान के कारण ये जीव, पवन से तरगित समुद्र की भाँति विकल्पों के समूह को करने से यद्यपि वे स्वय शुद्धज्ञानमय है तथापि-आकुलित होते हुए अपने आप ही कर्ता होते हैं ॥५८॥

५८ ॐ ह्रीं शुद्धज्ञानस्वरूपाय नम ।

ज्ञानसिन्धुस्वरूपोऽहं ।

रोला

मृग मरीचिका मे जल बुद्धि हिरण की होती ।
पीने को वह दौड रहा पर प्राप्ति न होती ॥
अधकार मे रस्सी को ही सर्प समझता ।
इसी भांति यह जीव विकल्पो सहित उलझता ॥
स्वय शुद्ध है पूर्ण ज्ञानमय पर आकुल है ।
अपने आप बना यह कर्त्ता यह पागल है ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥५८॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(५९)

अब यह कहते हैं कि ज्ञान से आत्मा कर्ता नहीं होता -

शार्दूल विक्रीडित

ज्ञानाद्विवेचकतया तु परात्मनोर्यो
जानाति हंस इव वाः पयसोर्विशेषम्
चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो
जानीत एव हि करोति न किंचनापि ॥५९॥

अर्थ- जैसे हंस दूध और पानी के विशेष को जानता है उसी प्रकार जो जीव ज्ञान के कारण विवेकवाला होने से परके और अपने विशेष को जानता है वह अचल चैतन्य धातु में स

चिन्तामणि रत्नों का सागर निज अनुभव ही परम प्रसिद्ध ।
शिव सुख स्रोत शान्ति का सागर अनुभव से होता है सिद्ध ॥

आरूढ होता हुआ मात्र जानता ही है, किंचित् मात्र भी कर्त्ता नही होता ॥५९॥

५९ ॐ ह्रीं ज्ञानहंसस्वरूपाय नम. ।

अचलचैतन्यधातुस्वरूपोऽहं ।

रोला

जैसे हस दूध पानी के विशेष जाने ।
उसी भाति ज्ञानी विवेक से निज पर जाने ॥
जैसे हस दूध पीता जल सर्व पृथक कर ।
तैसे ज्ञानी पीता ज्ञान भाव रस निर्झर ॥
बनता जानन हार नही कर्त्ता बनता है ।
एकमात्र वह निज पर का ज्ञाता रहता है ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥५९॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(६०)

अब, यह कहते हैं कि जो कुछ ज्ञात होता है वह ज्ञान से ही होता है

मंदाक्रान्ता

ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था
ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदास: ।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातो:
क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिंदती कर्तृ भावम् ॥६०॥

अर्थ- अग्नि की उष्णता का और पानी की शीतलता का भेद, ज्ञान से ही प्रगट होता है। नमक के स्वादभेद का निरसन ज्ञान से ही होता है निज रस से विकसित होती हुई नित्य चैतन्यधातु का और क्रोधादिभावका भेद, कर्तृत्व को भेदता हुआ, ज्ञान से ही प्रगट होता है ॥६०॥

सत्स्वरूप की श्रद्धा का माहात्म्य प्रगट है जिन के पास ।
वे ही ज्ञाता दृष्टा होकर मुक्ति पुरी मे करते वास ॥

६०. ॐ ह्रीं नित्यचैतन्यधातुस्वरूपाय नम ।

निष्क्रोधस्वरूपोऽहं ।

रोला

ऊष्ण अग्नि अरु शीतल जल के भेदज्ञान से ।
पृथक जानता दोनो का जु स्वभाव ज्ञान से ॥
नमक स्वाद को भी जाना है स्वय ज्ञान से ।
निज रस से विकसित होता है स्वय ध्यान से ॥
निज चैतन्य धातु और क्रोधादि भाव का ।
भेद जान कर्तृत्व भाव को सदा भेदता ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥६०॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(६१)

अब, अज्ञानी भी अपने ही भाव को करता है किन्तु पुद्गल के भाव को कभी नहीं करता-इस अर्थ का, आगे की गाथा का सूचक श्लोक कहते हैं-

अनुष्टुप्

अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमंजसा ।
स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित् ॥६१॥

अर्थ— इस प्रकार वास्तव में अपने को अज्ञान रूप या ज्ञानरूप करता हुआ आत्मा अपने ही भाव का कर्ता है, परभाव का कर्ता तो कदापि नहीं है ॥६१॥

६१. ॐ ह्रीं चैतन्यरसस्वरूपाय नम ।

निजदेवस्वरूपोऽहं ।

जो मिथ्यात्व मोह के कारण स्वपर विवेक हीन रहता ।
सम्यक्दर्शन के दर्शन बिन भव दुख धारा में बहता ॥

रोला

ज्ञान रूप अज्ञान रूप अपने को करता ।
अपने ही भावो का यह होता है कर्त्ता ॥
परभावो का कर्त्ता तो यह कभी नही है ।
परभावों से कुछ भी तो सबध नहीं है ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनंद मनाओ ॥६१॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(६२)

इसी बात को दृढ करते हुए कहते हैं कि -

अनुष्टुप्

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम् ।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥६२॥

अर्थ- आत्मा ज्ञानस्वरूप है, स्वयं ज्ञान ही है, वह ज्ञान के अतिरिक्त अन्य क्या करे ? आत्मा परभाव का कर्ता है ऐसा मानना सो व्यवहारी जीवों का मोह है ॥६२॥

६२ ॐ ह्रीं मोहाधकाररहितनिर्मोहस्वरूपाय नम ।

निर्भदस्वरूपोऽहं ।

रोला

आत्मा ज्ञान स्वरूप स्वय ही ज्ञान मात्र है ।
ज्ञान अतिरिक्त करे क्या ये तो ज्ञान मात्र है ॥
आत्मा परभावों का कर्त्ता यही मानना ।
अज्ञानी का तीव्र मोह है यही जानना ॥
समयसार रस कलश भरो निज में ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनंद मनाओ ॥६२॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

षडगुण वृद्धि हानि होती यह अगुरु लघुत्व स्वगुण की शक्ति।
पर्यायें निर्मल होती है जब होती रत्नत्रय भक्ति ॥

(६३)

अब आगे की गाथा का सूचक काव्य कहते है -

वसंततिलका

जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव
कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशंकयैव ।
एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय
संकीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्मकर्तृ ॥६३॥

अर्थ- 'यदि पुद्गल कर्म को जीव नहीं करता तो फिर उसे कौन करता है ?' ऐसी आशंका करके, अब तीव्र वेगवाले मोहका नाश करने के लिये, यह कहते हैं कि-'पुद्गलकर्म का कर्ता कौन है, ' इसलिये इसे सुनो ॥६३॥

६३ ॐ ह्रीं तीव्ररयरूपमोहरहितनिर्मोहस्वरूपाय नम ।

अव्ययस्वरूपोऽहं ।

रोला

पुद्गल कर्मो का कर्त्ता है कौन बताओ ।
पुद्गल कर्म न जीव करे तो कौन जताओ ॥
है कर्तृत्व और कर्मत्व अज्ञान भाव का ।
इसमे कुछ भी अरे नहीं है ज्ञान भाव का ॥
चारो प्रत्यय निश्चय से बधन के कर्त्ता ।
कहलाते हैं किन्तु जीव है सदा अकर्त्ता ॥
मिथ्यादृष्टी कर्मो के कर्त्ता होते हैं ।
जो करते हैं कर्म वही भोक्ता होते हैं ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥६३॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

शून्याकाश समान असंगी शुद्ध आत्मा तन से भिन्न ।
इसे जान सर्वज्ञ स्वभावी बन तू निज से पूर्ण अभिन्न ॥

(६४)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :-

उपजाति

स्थितेत्यविघ्ना खलु पुद्गलस्य
स्वभावभूता परिणामशक्तिः ।
तस्यां स्थितायां स करोतिभावं
यमात्मनस्तस्य स एव कर्ता ॥६४॥

अर्थ- इस प्रकार पुद्गल द्रव्य की स्वभावभूत परिणमनशक्ति निर्वघ्न सिद्ध हुई । और उसके सिद्ध होने पर, पुद्गलद्रव्य अपने जिस भाव को करता है उसका वह पुद्गलद्रव्य ही कर्ता है ॥६४॥

६४ ॐ ह्रीं निर्विघ्नज्ञानस्वरूपाय नमः।

अव्याबाधस्वरूपोऽहं ।

रोला

सर्व द्रव्य परिणमन स्वभाव वाले होते हैं ।
अपने अपने भावो के कर्त्ता होते हैं ॥
पुद्गल भी अपने अपने भावो का कर्त्ता ।
जिन जिन भावों को करता है उनका कर्त्ता ॥
समयसार रस कलश भरो निज में ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥६४॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(६५)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

उपजाति

स्थितेति जीवस्य निरन्तराया
स्वभावभूता परिणामशक्तिः ।

योगी साधु अयोगी बनकर पालेते निजपद निर्वाण ।
सर्व कर्ममल का विनाश कर पालेते शिवमय कल्याण ॥

तस्यां स्थितायां स करोति भावं
यं स्वस्य तस्यैव भवेत्स कर्ता ॥६५॥

अर्थ- इस प्रकार जीव की स्वभावभूत परिणमनशक्ति निर्विघ्न सिद्ध हुई । यह सिद्ध होने पर, जीव अपने जिस भाव को करता है उसका वह कर्ता होता है ॥६५॥

६५ ॐ ह्रीं निरन्तरायबोधस्वरूपाय नम ।

चित्परिणामशक्तिस्वरूपोऽहं ।

रोला

जीवो की परिणमन शक्ति निर्विघ्न सिद्ध है ।
जिनभावो को करता वह कर्तृत्व सिद्ध है ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥६५॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(६६)

अब आगे की गाथा के अर्थ का सूचक काव्य कहते हैं -

आर्या

ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेत् ज्ञानिनो न पुनरन्यः ।
अज्ञानमयः सर्वः कुतोऽयमज्ञानिनो नान्यः ॥६६॥

अर्थ- यहाँ प्रश्न यह है कि ज्ञानी को ज्ञानमय भाव ही क्यो होता है और अन्य क्यो नहीं होता ? तथा अज्ञानी के सभी भाव अज्ञानमय ही क्यो होते हैं तथा अन्य क्यो नहीं होते ? ॥६६॥

६६ ॐ ह्रीं रागद्वेषादिभावरहितज्ञानस्वरूपाय नम.।

निर्द्वंद्वस्वरूपोऽहं ।

रोला

ज्ञानी को क्यों भाव ज्ञानमय ही होते हैं ।
अन्य भाव क्यो उसको कभी नहीं होते हैं ॥

निर्मल ध्यानालीन जीव ही परमात्मा बन जाते हैं
पुण्याधीन जीव तो भव सागर के गोते खाते हैं ॥

अज्ञानी को क्यों अज्ञान भाव ही होते ।
उसको ज्ञानमयी क्यो भाव कभी ना होते ॥
समयसार रस कलश भरो निज में ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥६६॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(६७)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

आनुष्टुप

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वे भावा भवन्ति हि ।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥६७॥

अर्थ- ज्ञानी के समस्त भाव ज्ञानसे रचित होते हैं और अज्ञानी के समस्त भाव अज्ञान से रचित होते हैं ॥६७॥

६७ ॐ ह्रीं ज्ञानाद्यनतगुणस्वरूपाय नम ।

अकलस्वरूपोऽहं ।

रोला

ज्ञानी के सब भाव ज्ञान से सदा रचित हैं ।
अज्ञानी के सर्व भाव अज्ञान रचित है ॥
ज्ञानी अज्ञानी के अतर को पहचानो ।
ज्ञानी बनने का प्रयत्न ही उर मे ठानो ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनंद मनाओ ॥६७॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(६८)

अब आगे की गाथा का सूचक अर्थरूप श्लोक कहते हैं -

सारे उपदेशों का निचोड सम्यक्त्व प्राप्ति का कर उपाय ।
लब्धियाँ पाँच तूने पायी आये हैं स्वत- पंच समवाय ॥

अनुष्टुप्

अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिकाम् ।
द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुताम् ॥६८॥

अर्थ- अज्ञानी भावो की भूमिका में व्याप्त होकर द्रव्यकर्म के निमित्त भावो के हेतुत्व को प्राप्त होता है ॥६८॥

६८ ॐ ह्रीं द्रव्यकर्मनिमित्तभावरहितसमयसाराय नम ।

निरंजनस्वरूपोऽहं ।

रोला

अज्ञानी अज्ञानमयी भावो के द्वारा ।
होकर उनमे व्याप्त सदा दुख पाता सारा ॥
द्रव्य कर्म के निमित्त भाव का ये हेतुत्व ।
बनता है अज्ञान भाव से ही हेतुत्व ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनद मनाओ ॥६८॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(६९)

अब, यदि ऐसा है तो नयपक्ष के त्याग की भावना को वास्तव मे कौन नहीं नचायेगा ?' ऐसा कहकर श्री अमृतचन्द्राचार्य देव नयपक्ष के त्याग की भावना वाले २३ कलशरूप काव्य कहते हैं :-

उपेन्द्रवज्रा

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं
स्वरूपगुप्ता निवसंति नित्यम् ।
विकल्पजालच्युतशांतचित्ता-
स्त एव साक्षादमृतं पिबंति ॥६९॥

घन घातिया कर्म सब क्षय करके हुए सिद्ध अरहंत महंत ।
फिर अघातिया भी क्षय करके क्षण में हुए सिद्ध भगवंत ॥

अर्थ- जो नयपक्षपात को छोडकर स्वरूप में गुप्त होकर सदा निवास करते हैं वे ही, जिनका चित्त विकल्पजाल से रहित शात हो गया है ऐसे होते हुए, साक्षात् अमृत का पान करते हैं ॥६९॥

६९ ॐ ह्रीं विकल्पजालरहितशांतस्वरूपाय नम.।

शिवामृतस्वरूपोऽहं ।

रोला

नय के पक्षपात को तजकर जो स्वरूप में ।
सदा गुप्त रहते है सतत निजात्म रूप मे ॥
हो विकल्प जालो से रहित शान्त हो जाते ।
साक्षात् अमृत का पान स्वय ही पाते ॥
समयसार रस कलश भरो निज मे ही आओ ।
स्वानुभूति पाकर प्रतिपल आनंद मनाओ ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(७०)

अब २० कलशो द्वारा नयपक्ष का विशेष वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो ऐसे समस्त नयपक्षो को छोड देता है वह तत्त्ववेत्ता स्वरूप को प्राप्त करता है -

उपजाति

एकस्य बद्धो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७०॥

अर्थ- जीव कर्मों से बधा हुआ है ऐसा एक नयका पक्ष है और नहीं बंधा हुआ है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के संबध में दो नयो के दो पक्षपात हैं । जो तत्त्वेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥७०॥

मोही जीव अनादि काल से भव सागर मे बहता है ।
निर्मोही भव सागर शोषित कर स्वभाव में रहता है ॥

७० ॐ ह्रीं नित्यचैतन्यदेवस्वरूपाय नम।

ईश्वरस्वरूपोऽहं ।

रोला

जीव कर्म से बधा हुआ है पक्ष एक नय ।
जीव कर्म से नहीं बधा है पक्ष द्वितियनय ॥
दो नय के दो पक्षपात है इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरंतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥७०॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(७१)

उपजाति

एकस्य मूढो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७१॥

अर्थ- जीव मूढ है ऐसा एक नयका पक्ष है और वह मूढ नहीं है ऐसा दूसरे नय का पक्ष है;- इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सबध मे दो नयो के दो पक्षपात है जो तत्त्वेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥७१॥

७१ ॐ ह्रीं मूढामूढविकल्परहितचित्स्वरूपाय नम.।

ज्ञाननीरस्वरूपोऽहं ।

रोला

जीव मूढ मोही है ऐसा एक पक्षनय ।
जीव न मोही मूढ यही है पक्ष द्वितिय नय ॥

लौकिक लक्ष्मी का बल पाकर पर भावों में झूल रहा।
मुक्ति लक्ष्मी का बल पाले क्यों तू पर में भूल रहा॥

दो नय के दो पक्षपात हैं इनको जानो।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो॥
उसे निरतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता॥७१॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि।

(७२)

उपजाति

एकस्य रक्तो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव॥७२॥

अर्थ- जीव रागी है ऐसा एक नय का पक्ष है, और वह रागी नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सबध मे दो नयो के दो पक्षपात हैं। जो तत्तवेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है॥७२॥

७२ ॐ ह्रीं रक्तारक्तविकल्परहितज्ञानस्वरूपाय नम।

विरागस्वरूपोऽहं।

रोला

जीव अरे रागी है ऐसा एक पक्ष नय।
जीव नहीं रागी है ऐसा पक्ष द्वितिय नय॥
दो नय के दो पक्षपात हैं इनको जानो।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो॥
उसे निरतर चित्स्वरूप अनुभव में आता।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता॥७२॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि।

जो पर भाव त्याग देता है वही आत्म ज्ञानी होता ।
जो विभाव में रत रहता है वह तो अज्ञानी होता ॥

(७३)

उपजाति

एकस्य दुष्टो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७३॥

अर्थ- जीव द्वेषी है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव द्वेषी नहीं है ऐसा दूसरे नय का पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सबध में दो नयों के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥७३॥

७३ ॐ ह्री दुष्टादुष्टविकल्परहितचित्स्वरूपाय नम ।

निष्कषायस्वरूपोऽहं ।

रोला

जीव अरे द्वेषी है ऐसा एक पक्षनय ।
जीव नही द्वेषी है ऐसा पक्ष द्वितियनय ॥
दो नय के दो पक्षपात है इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥७३॥

ॐ ह्रीं कर्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(७४)

उपजाति

एकस्य कर्त्ता न तथा परस्य
चिति् द्वयोर्द्वाविति पक्षपाती ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७४॥

जो भव से भयभीत मोक्ष की अभिलाषा उसको होती ।
जिनको भव से लेश न भय है उनकी ही दुर्गति होती ॥

अर्थ- जीव कर्त्ता है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव कर्त्ता नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सबध में दो नयो के दो पक्षपात हैं । जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥७४॥

७४ ॐ ह्री कर्ताकर्ताविकल्परहितचित्स्वरूपाय नम ।

ज्ञायकधनस्वरूपोऽहं ।

रोला

जीव अरे कर्त्ता है ऐसा एक पक्ष नय ।
जीव नहीं कर्त्ता है ऐसा पक्ष द्वितियनय ॥
दो नय के दो पक्षपात है इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरंतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥७४॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(७५)

उपजाति

एकस्य भोक्ता न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्वेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७५॥

अर्थ- जीव भोक्ता है ऐसा एक नय का पक्ष है और जी भोक्ता नहीं है ऐसा दूसरे नय का पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सबंध में दो नयों के दो पक्षपात हैं । जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्वस्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है॥

७५. ॐ ह्रीं भोक्ताभोक्ताविकल्परहितचित्स्वरूपाय नम ।

अतीन्द्रियानंदस्वरूपोऽहं ।

गुणस्थान मार्गणा आदि व्यवहार कथन है भेद स्वरूप ।
शुद्ध आत्मा तो अभेद है भेदो से हैं रहित अनूप ॥

रोला

जीव अरे भोक्ता है ऐसा एक पक्षनय ।
जीव नही भोक्ता है ऐसा पक्ष द्वितिय नय ॥
दो नय के दो पक्षपात हैं इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरतर चित्स्वरूप अनुभव में आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(७६)

उपजाति

एकस्य जीवो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्वेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्य खलु चिच्चिदेव ॥७६॥

अर्थ- जीव जीव है ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव जीव नही है ऐसा दूसरे नय का पक्ष है इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध मे दो नयों के दो पक्षपात है। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ।

७६ ॐ ह्रीं जीवाजीवविकल्परहितचित्स्वभावाय नम.।

सच्चिदानंदस्वरूपोऽहं ।

रोला

जीव जीव है ऐसा तो है पक्ष एक नय ।
जीव नहीं है जीव यही है पक्ष द्वितियनय ॥
दो नय के दो पक्षपात हैं इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥

भेद ज्ञान विज्ञान शक्ति से जीव हुए हैं सिद्ध महंत ।
होते है होते आए हैं आगे भी होगें भगवंत ॥

उसे निरतर चित्स्वरूप अनुभव में आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(७७)

उपजाति

एकस्य सूक्ष्मो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वावति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातो -
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७७॥

अर्थ- जीव सूक्ष्म है ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव सूक्ष्म नही है ऐसा दूसरे नय का पक्ष है इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध मे दो नयो के दो पक्षपात है जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ।

७७ ॐ ह्री सक्ष्मासूक्ष्मविकल्परहितचित्स्वभावाय नम.।

निर्विकल्पोऽहं ।

रोला

जीव सूक्ष्म है ऐसा तो है पक्ष एक नय ।
जीव नहीं है सूक्ष्म यही है पक्ष द्वितिय नय ॥
दो नय के दो पक्षपात हैं इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

भेद ज्ञान के ही अभाव से होते हैं कर्मो से बद्ध ।
भेद ज्ञान के बिना कभी भी होता कोई नहीं अबद्ध ॥

(७८)

उपजाति

एकस्य कार्यं तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वावति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातौ -
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७८॥

अर्थ- जीव हेतु है ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव हेतु नही है ऐसा दूसरे नय का पक्ष है इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बन्ध मे दो नयो के दो पक्ष पात है। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ।

७८ ॐ ह्रीं हेत्वहेतुविकल्परहितचित्स्वभावाय नम ।

कारणसमयसारोऽहं ।

रोला

जीव हेतु है ऐसा तो है पक्ष एक नय ।
जीव नहीं है हेतु यही है पक्ष द्वितियनय ॥
दो नय के दो पक्षपात हैं इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥७८॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(७९)

उपजाति

एकस्य कार्यं न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७९॥

चेतन के परिणाम कर्म आश्रव को करते हैं अवरुद्ध ।
यही द्रव्य आस्रव का रुकना भाव द्रव्य सवर है शुद्ध ॥

अर्थ— जीव कार्य है ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव कार्य नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सबधों मे दो नयों के दो पक्षपात हैं जो तत्त्वेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥७९॥

७९ ॐ ह्रीं कार्याकार्यविकल्परहितचित्स्वभावाय नम ।

अजन्मास्वरूपोऽहं ।

रोला

जीव कार्य है ऐसा तो है पक्ष एक नय ।
जीव नहीं है कार्य यही है पक्ष द्वितिय नय ॥
दो नय के दो पक्षपात है इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥७९॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(८०)

उपजाति

एकस्य भावो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८०॥

अर्थ- जीव भाव है ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव भाव नहीं है ऐसा दूसरे नयक पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सबध में दो नयों के दो पक्षपात है । जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥८०॥

८० ॐ ह्रीं भावाभावविकल्परहितचित्स्वरूपाय नम.।

सदानंदस्वरूपोऽहं ।

जो गृहस्थ है किन्तु जानते हेयाहेय पदार्थ सकल ।
वे ही एक दिवस पाते हैं शुद्ध मोक्ष का सुख अविकल ॥

रोला

जीव भाव है ऐसा तो है पक्ष एक नय ।
जीव नही है भाव यही है पक्ष द्वितिय नय ॥
दो नय के दो पक्षपात हैं इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥८०॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(८१)

उपजाति

एकस्य चैको न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८१॥

अर्थ- जीव एक है ऐसा एक नयका पक्ष है, और जीव एक नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जी के सबध मे दो नयो के दो पक्ष पात हैं । जो तत्त्वेत्ता पक्षपातरहित है उसे निरंतर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥८१॥

८१ ॐ ह्रीं एकानेकविकल्परहतिचित्स्वरूपाय नम ।

बुद्धोऽहं ।

रोला

जीव एक है ऐसा तो है पक्ष एक नय ।
जीव नहीं है एक यही है पक्ष द्वितिय नय ॥
दो नय के दो पक्षपात है इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥

शुद्ध प्रकाश सदैव अचेतन तू चैतन्य शुद्ध भगवान ।
पच द्रव्य जड से पूरा ही भिन्न द्रव्य चैतन्य महान ॥

उसे निरतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥८१॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(८२)

उपजाति

एकस्य सांतो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८२॥

अर्थ- जीव सात है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव सांत नहीं ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के संबध में दो नयों के दो पक्षपात हैं । जो तत्त्वेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥८२॥

८२ ॐ ह्रीं सांतासातविकल्परहितचित्स्वरूपाय नम.।

अक्षयस्वरूपोऽहं ।

रोला

जीव सात है ऐसा तो है पक्ष एक नय ।
जीव नहीं है सांत यही है पक्ष द्वितिय नय ॥
दो नय के दो पक्षपात है इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरंतर चित्स्वरूप अनुभव में आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥८२॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

हिंसा का सम्पूर्ण अभाव यही उत्तम सयम सुप्रसिद्ध ।
इसका पालन करके ही ऋषि मुनिवर हो जाते हैं सिद्ध ॥

(८३)

उपजाति

एकस्य नित्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८३॥

अर्थ- जीव नित्य है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव नित्य नही ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सबध मे दो नयो के दो पक्षपात है। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरतर चित्सरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥८३॥

८३ ॐ ह्रीं नित्यानित्यविकल्परहितचित्स्वरूपाय नम ।
टङ्कोत्कीर्णोऽहं ।

रोला

जीव नित्य है ऐसा तो है पक्ष एक नय ।
जीव नही है नित्य यही है पक्ष द्वितिय नय ॥
दो नय के दो पक्षपात हैं इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥८३॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(८४)

उपजाति

एकस्य वाच्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८४॥

दृष्टिवंत नासाग्र बन अभी देख अदेही निज भगवान ।
जननी क्षीर न कभी पियेगा नहीं जन्म होगा फिर मान ॥

अर्थ- जीव वाच्य है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव वाच्य नहीं है ऐसा दूसरे नय का पक्ष है; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के संबंध में दो नयों के दो पक्षपात हैं । जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥८४॥

८४ ॐ ह्रीं वाच्यावाच्यविकल्परहितचित्स्वरूपाय नम.।

अच्युतोऽहं ।

रोला

जीव वाच्य है ऐसा तो है पक्ष एक नय ।
जीव नहीं है वाच्य यही तो पक्ष द्वितिय नय ॥
दो नय के दो पक्षपात है इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥८४॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(८५)

उपजाति

एकस्य नाना न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८५॥

अर्थ- जीव नानारूप है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव नाना रूप यहीं ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के संबंध में दो नयों के दो पक्षपात हैं जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥८५॥

८५ ॐ ह्रीं अनानानानाविकल्परहितचित्स्वरूपाय नम ।

अकलंकस्वरूपोऽहं ।

निर्मोही बन कर अमूर्तिक आत्मा की छवि को लखले।
जडतन से हो भिन्न अतीन्द्रिय स्वाद आत्मा का चखले॥

रोला

जीव अरे नाना है ऐसा पक्ष एक नय।
जीव नहीं है नाना ऐसा पक्ष द्वितिय नय॥
दो नय के दो पक्षपात हैं इनको जानो।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो॥
उसे निरंतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता॥८५॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि।

(८६)

उपजाति

एकस्य चेत्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव॥८६॥

अर्थ- जीव चेत्य है ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव चेत्य नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सबंध मे दो नयो के दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है॥८६॥

८६ ॐ ह्रीं चेत्याचेत्यविकल्परहितचित्स्वरूपाय नम।

अवबोधसौधवरूपोऽहं।

रोला

जीव चेत्य है ऐसा तो है एक पक्ष नय।
जीव नहीं है चेत्य यही है पक्ष द्वितिय नय॥
दो नय के दो पक्षपात है इनको जानो।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो॥

शुद्ध आत्मा के अनुभव का फल है केवल ज्ञान प्रसिद्ध।
इस फल के खाने से अक्षय पद मिल जाता होता सिद्ध॥

उसे निरंतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥८६॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(८७)

उपजाति

एकस्य दृश्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात -
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८७॥

अर्थ- जीव दृश्य है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव दृश्य नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है , इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सबंध मे दो नयो के दो पक्षपात हैं । जो तत्त्वेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्सवरूप ही है ॥८७॥

८७ ॐ ह्रीं दृश्यादृश्यविकल्परहितचित्स्वरूपाय नम ।

अवर्णस्वरूपोऽहं ।

रोला

जीव दृश्य है ऐसा तो है पक्ष एक नय ।
जीव नही है दृश्य यही है पक्ष द्वितिय नय ॥
दो नय के दो पक्षपात हैं इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरंतर चित्स्वरूप अनुभव मे आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥८७॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

जो परभावों को तज देते ज्ञायक की महिमा पहचान ।
लोकालोक जानते युगपत पाते निर्मल केवल ज्ञान ॥

(८८)

उपजाति

एकस्य वेद्यो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८८॥

अर्थ- जीव वेद्य है ऐसा एक नय का पक्ष है और जीव वेद्य नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है, इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सबध मे दो नयों के दो पक्षपात हैं । जो तत्त्ववेत्ता पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥८८॥

८८ ॐ ह्री वेद्यावेद्यविकल्परहितचित्स्वरूपाय नम ।

ज्ञानसागरोऽहं ।

रोला

जीव वेद्य है ऐसा तो है पक्ष एक नय ।
जीव नहीं है वेद्य यही है पक्ष द्वितिय नय ॥
दो नय के दो पक्षपात हैं इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरतर चित्स्वरूप अनुभव में आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥८८॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(८९)

उपजाति

एकस्य भातो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८९॥

वनवासी हो या गृहवासी करते जो निज में ही वास ।
शीघ्र परम सुख को पाते है पाते शाश्वत मुक्ति निवास ॥

अर्थ- जीव 'भात' है ऐसा एक नयका पक्ष है और जीव 'भात' नहीं है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है ; इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के संबध मे दो नयों के दो पक्षपात हैं । जो तत्ववेत्ता पक्ष पात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है ॥८९॥

८९ ॐ ह्रीं भाताभातविकल्परहितचित्स्वरूपाय नम ।

ज्ञानार्णवस्वरूपोऽहं ।

रोला

जीव भात है ऐसा तो है पक्ष एक नय ।
जीव नही है भात यही है पक्ष द्वितिय निय ॥
दो नय के दो पक्षपात हैं इनको जानो ।
पक्षपात से रहित तत्त्व वेदी है मानो ॥
उसे निरंतर चित्स्वरूप अनुभव में आता ।
चित् स्वरूप तो चित्स्वरूप है ऐसा ज्ञाता ॥८९॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(९०)

वसंततिलका

अब उपरोक्त २० कलशों के कथन का उपसहार करते हैं :-

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला-
मेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षाम् ।
अन्तर्बहिः समरसैकरसस्वभावं
स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रम् ॥९०॥

अर्थ- इस प्रकार जिसमे बहुत से विकल्पों का जाल अपने आप उठता है ऐसी बडी नयपक्ष कक्षा को उल्लंघन करके भीतर और बाहर समता-रस-रूपी एक रस ही जिसका स्वभाव है ऐसे अनुभूति मात्र एक अपने भाव को प्राप्त करता है ॥९०॥

९० ॐ ह्रीं अनल्पविकल्पजालरूपनयपक्षकक्षारहितचित्स्वरूपाय नम ।

समतास्वरूपोऽहं ।

शुद्ध आत्मा का दर्शन ही शिवसुख दाता नामी है ।
चार अनत चतुष्टय मडित गुण अनत का स्वामी है ॥

रोला

ऐसे विविध विकल्प जाल उर में उठते हैं ।
नय पक्षो की भू जो उल्लंघन करते हैं ॥
वे ही समता रस रूपी स्वभाव को पाते ।
निज अनुभूति मात्र से निज भावो मे आते ॥
समयसार निज कलश प्राप्त कर समकित पाओ ।
अप्रतिबुद्ध भाव को तज ज्ञानी बन जाओ ॥९०॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(९१)

रथोद्धता

अब नयपक्ष की त्याग की भावना का अन्तिम काव्य कहते है -

इन्द्रजालमिदमेवमुच्छलत्
पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः ।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं
कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः ॥९१॥

अर्थ- विपुल, महान, चचल विकल्प रूपी तरगों के द्वारा उडते हुए इस समस्त इन्द्रजाल को जिसका स्फुरण मात्र ही तत्क्षण उडा देता है वह चिन्मात्र तेज· पुज मै हूँ ॥९१॥

९१ ॐ ह्रीं इन्द्रजालरूपविकल्पवीचिरहितचित्स्वरूपाय नम ।

चिन्महस्वरूपोऽहं ।

नय विकल्प रूपी तंरग का जो सागर है ।
ऐसा चंचल इन्द्रजाल यह दुख घर है ॥
निज अनुभव होते ही मैंने क्षय कर डाला ।
तेज पुंज चिन्मात्र ज्ञान हूं सदा निराला ॥

समयसार निज कलश प्राप्त कर समकित पाओ ।
अप्रतिबुद्ध भाव को तज ज्ञानी बन जाओ ॥९१॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(९२)

स्वागता

चित्स्वभावभरभावितभावा-
भावभावपरमार्थतयैकम् ।
बंधपद्धतिमपास्य समस्तां
चेतये समयसारमपारम् ॥९२॥

अर्थ- चित्स्वभाव के पुज द्वारा ही अपने उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य क्रिये जाते हैं, ऐसा जिसका परमार्थ स्वरूप है इसलिये जो एक है ऐसे अपार समयसार को मै, समस्तबन्ध पद्धति को दूर करके अर्थात् कर्मोदय से होने वाले सर्व भावो को छोडकर, अनुभव करता हूँ ॥९२॥

९२ ॐ ह्री समस्तबन्धपद्धतिरहितापारसमयसाराय नम ।

चैतन्यपुंजस्वरूपोऽहं ।

रोला

चित्स्वभाव का पुंज आतमा अपने द्वारा ।
व्यय उत्पाद ध्रौव्य पाता है हो अविकारा ॥
निर्मल समयसार को पा निज अनुभव करता ।
सकल बध पद्धति को यह पूरा ही हरता ॥
समयसार निज कलश प्राप्त कर समकित पाओ ।
अप्रतिबुद्ध भाव को तज ज्ञानी बन जाओ ॥९२॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(९३)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

तू चलते फिरते मुरदे के सग व्यर्थ में भटक रहा ।
इसमें ही मूर्छित होकर तू जिय अनादि से अटक रहा ॥

शार्दूल विक्रीड़ित

आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना
सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयम् ।
विज्ञानैकरसः स एष भगवान्पुण्यः पुराणः पुमान्
ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किंचनैकोऽप्ययम् ॥९३॥

अर्थ- नयो के पक्षो से रहित, अचल निर्विकल्पभाव को प्राप्त होता हुआ जो समय का सार प्रकाशित करता है वह यह समयसार जो कि निभृत पुरुषो के द्वारा स्वय आस्वाद्यमान है वह विज्ञान ही जिसका एक रस है ऐसा भगवान है, पवित्र पुराण पुरुष है, चाहे ज्ञान कहो या दर्शन वह यही ही है, अधिक क्या कहे '? जो कुछ है सो यह एक ही है ॥९३॥

९३ ॐ ह्री निभृताचलाविकल्परूपचित्स्वभावाय नम ।

विज्ञानैकरसस्वरूपोऽहं ।

ताटक

नय पक्षों से रहित अचल अविकल्प भाव जो पाता है ।
समयसार का सार प्रकाशित करता निज मे आता है ॥
निश्चय आत्मलीन पुरुषो से है आस्वाद्य मान गतिमान।
वह विज्ञान स्वरस पीता है पुरुष पुराण पवित्र प्रधान ॥
ज्ञान कहो या दर्शन बोलो दोनो समयसार जानो ।
अधिक क्या कहें मात्र स्वानुभव करके ही सम्यक् मानो॥
समयसार रस कलश पान हित जो भी निज मे आता है।
अपने ध्रुव स्वभाव को पाकर परम सौख्य वह पाता है॥
समयसार निज कलश प्राप्त कर समकित पाओ हे प्राणी।
अप्रतिबुद्ध भाव को तज कर बन जाओ सम्यक्ज्ञानी ॥९३॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(९४)

अब यह कहते हैं कि यह आत्मा ज्ञान से च्युत हुआ था सो ज्ञान ही आ मिलता है :-

सर्वविशुद्ध ज्ञान के भीतर जब प्रवेश हो जाता है ।
इसी युक्ति से साक्षात् निज मुक्ति स्व पद मिल जाता है॥

शार्दूल विक्रीडित

दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो
दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात् ।
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्मा हरन्
आत्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत् ॥९४॥

अर्थ- जैसे पानी अपने समूह से च्युत होता हुआ दूर गहन वन में बह रहा हो उसे दूर से ही ढालवाले मार्ग के द्वारा अपने समूह की ओर बल पूर्वक मोड दिया जाये, तो फिर वह पानी, पानी को पानी के समूह की ओर खींचता हुआ प्रवाहरूप होकर, अपने समूह मे आ मिलता है , इसी प्रकार यह आत्मा अपने विज्ञानघन स्वभाव से च्युत होकर प्रचुर विकल्पजालों के गहन वन मे दूर परिभ्रमण कर रहा था उसे दूर से ही विवेकरूपी ढालवाले मार्ग द्वारा अपने विज्ञानघन स्वभाव की ओर बलपूर्वक मोड दिया गया , इसलिए केवल विज्ञानघन के ही रसिक पुरुषो को जो एक विज्ञानरसवाला ही अनुभव मे आता है ऐसा वह आत्मा, आत्मा को आत्मा मे खीचता हुआ अर्थात् ज्ञान सदा विज्ञान घनस्वभाव मे आ मिलता है ॥९४॥

९४ ॐ ह्रीं भूरिविकल्पजालगहनरहितचित्स्वभावाय नम।

आनंदरसस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जैसे पानी निज समूह से च्युत हो वन मे बहता है ।
बल पूर्वक यदि मोडा जाए तो समूह से मिलता है ॥
उसी भांति विज्ञान ज्ञानघन स्वभाव से च्युत यह आत्मा।
बल पूर्वक मोडा जाए तो हो जाता है परमात्मा ॥
आत्मा आत्मा को खींचे तो यह प्रवाह बन जाएगा ।
निज विज्ञान ज्ञानघन में मिल ज्ञान रूप हो जाएगा ॥
समयसार निज कलश प्राप्त कर समकित पाओ हे प्राणी।
अप्रतिबुद्ध भाव को तज कर बन जाओ सम्यक्ज्ञानी ॥९४॥

ॐ ह्रीं कर्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

नय के जंगल में मत भटको नयातीत हो चले चलो ।
एक आत्मा के आश्रित हो पर भावो को दले चलो ॥

(९५)
अब कर्ता कर्म अधिकार का उपसहार करते हुए, कुछ कलश रूप काव्य कहते हैं, उनमे से प्रथम कलश मे कर्ता और कर्म का सक्षिप्त स्वरूप कहते हैं -

अनुष्टुप्

विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलम् ।
न जातु कर्तृ कर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति ॥९५॥

अर्थ- विकल्प करने वाला ही केवल कर्ता है और विकल्प ही केवल कर्म है, जो जीव विकल्प सहित है उसका कर्ता कर्म पना कभी नष्ट नहीं होता ॥९५॥

९५ ॐ ह्रीं सविकल्पत्वरहितचित्स्वभावाय नम ।
आनंदघनस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

विकल्प करने वाला ही तो केवल कर्त्ता होता है ।
उसका तो जानो विकल्प ही केवल कर्म जु होता है ॥
जो विकल्प से युक्त जीव है वह भववासी होता है ।
उसका कर्त्ता कर्मपना तो कभी नाश ना होता है ॥
समयसार निज कलश प्राप्त कर समकित पाओ हे प्राणी।
अप्रतिबुद्ध भाव को तज कर बन जाओ सम्यकज्ञानी ॥९५॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(९६)
अब कहते हैं कि जो करता है सो करता ही है, और जो जानता है सो जानता ही है--

रथोद्धता

यः करोति स करोति केवलं
यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलम् ।

भेद ज्ञान विज्ञान शक्ति से जीव हुए है सिद्ध महंत ।
होते है होते आए है आगे भी होगे भगवंत ॥

यः करोति न हि वेत्ति स क्वचित्
यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित् ॥९६॥

अर्थ- जो करता है सो मात्र करता ही है और जो जानता है सो मात्र जानता ही है, जो करता है वह कभी जानता नही और जो जानता है वह कभी करता नहीं॥

९६ ॐ ह्रीं ज्ञानानदस्वरूपाय नम ।

ज्ञाननिधिस्वरूपोऽहं ।

ताटक

जो करता है मात्र वही कर्त्ता ही है यह पहचानो ।
जो जानता मात्र वही तो जाननहारा यह मानो ॥
जो करता है नही जानता जो जानता नहीं कर्त्ता ।
जो कर्त्ता है ज्ञाता नाहीं जो ज्ञाता वह ना कर्त्ता ॥
समयसार निज कलश प्राप्त कर समकित पाओ हे प्राणी।
अप्रतिबुद्ध भाव को तज कर बन जाओ सम्यकज्ञानी ॥९६॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(९७)

इसी प्रकार अब यह कहते हैं कि करने और जानने रूप दोनो क्रियाए भिन्न हैं -

इन्द्रवज्रा

ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासतेऽन्तः
ज्ञप्तौ करोतिश्च नभासतेऽन्तः ।
ज्ञप्तिः करोतिश्च ततो विभिन्ने
ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितं च ॥९७॥

अर्थ- करने रूप क्रिया के भीतर जानने रूप क्रिया भासित नहीं होती और जानने रूप क्रिया के भीतर करने रूप क्रिया भासित नहीं होती, इसलिये, ज्ञप्ति क्रिया और 'करोति' क्रिया दोनो भिन्न हैं, इससे यह सिद्ध हुआ कि जो ज्ञाता है वह कर्ता नहीं है ।

गंभीर रहस्य जानने का उत्तम उपाय तू ज्ञाता बन ।
चैतन्य चमत्कारी हीरा प्रति समय निरख तू दृष्टा बन ॥

९७. ॐ ह्रीं ज्ञप्तिकरोतिक्रियाविकल्परहितचित्स्वभाय नम ।

ज्ञानपंकजस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

करने रूप क्रिया के भीतर जानन क्रिया न भासित है।
जानन रूप क्रिया के भीतर कर्म क्रिया ना भासित है ॥
ज्ञप्ति क्रिया अरु क्रिया करोति दोनों भिन्न भिन्न जानो।
सिद्ध हुआ जो ज्ञाता है वह कर्त्ता नहीं सत्य मानो॥
समयसार निज कलश प्राप्त कर समकित पाओ हे प्राणी।
अप्रतिबुद्ध भाव को तज कर बन जाओ सम्यकज्ञानी ॥९७॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(९८)

पुन इसी बात को दृढ करते हैं -

शार्दूल विक्रीड़ित

कर्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्तरि
द्वंद्व विप्रतिषिध्यते यदि तदा का कर्तृ कर्मस्थितिः ।
ज्ञाता ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्नेपथ्ये बत नानटीति रभसा मोहस्तथात्येष किम् ॥९८॥

अर्थ- निश्चय से न तो कर्ता कर्म मे है, और न कर्म कर्ता मे ही है- यदि इस प्रकार परस्पर दोनो का निषेध किया जाये तो कर्ता-कर्म की क्या स्थिति होगी ? अर्थात् जीवपुद्गल के कर्ताकर्मपन कदापि नहीं हो सकेगा। इस प्रकार ज्ञाता सदा ज्ञाता में ही है और कर्म सदा कर्म मे ही है ऐसी वस्तुस्थिति प्रगट है तथापि अरे ! नेपथ्य मे यह मोह क्यों अत्यन्त वेगपूर्वक नाच रहा है ?॥९८॥

९८ ॐ ह्रीं मोहनृत्यरहितसहजचित्स्वभावाय नम ।

शुद्धानंदस्वरूपोऽहं ।

आत्म भावना अगर नहीं है तो विभाव की काली रात ।
शुद्ध भावना बिना न मिलता किसी जीव को मुक्ति प्रभात॥

रोला

निश्चय से तो कर्त्ता नहीं कर्म में रहता ।
निश्चय से तो कर्म नहीं कर्त्ता मे रहता ॥
दोनो का निषेध होगा तो फिर क्या होगा ।
कर्त्ता कर्मो की स्थिति का भी क्या होगा ॥
जीव रु पुद्गल कर्त्ता कर्मपना ना होगा ।
उर अज्ञानभाव का ही तो रहना होगा ॥
ज्ञाता तो ज्ञाता मे रहने वाला होता ।।
कर्म सदा कर्मों में रहने वाला होता यह ॥
वस्तुस्थिति तो प्रगट यही है यह निश्चय है ।
अनुभव द्वारा किया गया यह दृढ निर्णय है ॥
फिर भी क्यो नैपथ्य भाग में मोह नाचता ।
हमे खेद है आश्चर्य है व्यर्थ राचता ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर निज मे आओ।
बिना रुके ही निज आनद भवन मे जाओ ॥९८॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(९९)

अब यह कहते हैं कि यदि मोह नाचता है तो भले नाचे, तथापि वस्तुस्वरूप तो जैसा है वैसा ही है -

मंदरक्रान्ता

कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव
ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि ।
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमंतस्तथोच्चै-
श्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यंतगंभरमेतत् ॥९९॥

अर्थ- अचल, व्यक्त और चितृशक्तियो के समूह के भार से अत्यन्त गंभीर यह ज्ञानज्यो

तीन काल तीनों लोकों में मुक्ति मार्ग है केवल एक ।
शुद्ध आत्मा का चिंतन ही परभावों से है व्यतिरेक ॥

अन्तरग मे उग्रता से ऐसी जाज्वल्यमान हुई कि- आत्मा अज्ञान में कर्ता होता था सो अब वह कर्ता नही होता और अज्ञान के निमत्त से पुद्गल कर्मरूप होता था सो वह कर्मरूप नही होता, और ज्ञानरूप ही रहता है तथा अपुद्गल पुद्गलरूप ही रहता है ॥९९॥

९९ ॐ ह्रीं परमज्ञानज्योतिस्वरूपाय नम ÷

परमचिद्रूपोऽहं ।

रोला

अचल व्यक्त चित्शक्ति भार से अति गभीर हू ।
ज्ञान ज्योति निज अतरग में प्रबल धीर हू ॥
यह अज्ञान भाव मे ही तो कर्त्ता था तब ।
अब यह कर्त्ता नही रहा है ज्ञान हुआ जब ॥
यह अज्ञान निमित्त से पुद्गल कर्म रूप था ।
अब न कही यह कर्म रूप है ज्ञान है यथा ॥
अब तो ज्ञान सदा ही ज्ञान रूप रहता है ।
यह पुद्गल भी पुद्गल रूप सदा रहता है ॥
समयसार रस कलश प्राप्त कर निज मे आओ।
बिना रुके ही निज आनद भवन मे जाओ ॥९९॥

ॐ ह्रीं कर्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

महाअर्घ्य

गीत

मोहादि विकारो से मेरी मित्रता हुई ।
अपने स्वभाव से ही मेरी शत्रुता हुई ॥
मै तो अनादि से ही रहा हूं अनात्मा ।
देहादि जड से आत्मा की एकता हुई ॥
पुद्गल शरीर में ही रहा कैद आज तक ।
आचार विचारों में तो अनेकता हुई ॥

हित का कारण त्वरित ग्रहण कर त्वरित अहित कारण का त्याग।
आत्म तत्व से जो विरुद्ध है उस कारण से धार विराग॥

पर्याय दृष्टि से ही मैंने दुख उठाए हैं ।
जब द्रव्य दृष्टि पायी तो महानता हुई ॥

ॐ ह्रीं कर्त्ता कर्म अधिकार समन्वित समयसार कलश शास्त्राय महाअर्घ्यं नि ।

जयमाला

छंद

चलो तो पर से विभक्त होकर न तुम किसी को कभी निहारो।
एकत्व अपना निजत्व रूपी उसे ही अब तुम सदा संवारो ॥
ये सहजानदी स्वभाव अपना हुआ है पामर बताओ कैसे ।
तुरत पामरता आज छोडो निजात्मा के चरण पखारो ॥
सहारा लेना कभी न पर का ये पर डुबाएगा फिर भवर मे।
मिला है अवसर अपूर्व तुमको त्वरित ही अपने को तुम उबारो॥
ये कर्म बधन हुए हठीले स्वभाव वाले अलग करो सब ।
स्वज्ञान का ही ले शस्त्र अपना स्वशक्ति से ही इन्हें सहारो॥
न कर्त्ता बनना न कर्म करना स्वरूप अपने में ही समाना ।
मिलेगा सत्यम् शिवम् सुन्दरम् स्वभाव उसको अभी से धारो॥

ॐ ह्रीं समयसारप्राभृतग्रन्थे कर्ताकर्माधिकारे कलशस्वरूपाकर्ताचित्स्वभावाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आशीर्वाद :

कर्त्ताकर्म अधिकार से पर कर्तृत्व अभाव ।
करके मैं पाऊं प्रभो अकर्त्तृत्व का भाव ॥

इत्याशीर्वाद :

पर्यायें प्रति समय बदलती द्रव्य शाश्वत रहता है ।
क्यों पर्यायों में मोहित हो भव भावो में बहता है ॥

ॐ

पुण्य पाप अधिकार पूजन

स्थापना

वीरछंद

पुण्य पाप का अभाव करने वाले हैं संयमी महान ।
आलोचन प्रतिक्रमण सहित है नित करते हैं प्रत्याख्यान॥
परम सयमी को वास्तव मे कामधेनु सम तप है जान ।
आत्म तत्त्व मे नियत आचरण से हो जाता है भगवान॥
तीन लोक के ज्ञाता अविकल शुद्ध तत्त्व को ही लू जान।
सकल सिद्धि का स्वामी होकर सिद्ध सौख्य पाऊं निर्वाण॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अत्र अवतर अवतर सवौषट्।

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन ।

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

ताटक

ह्रदय कमल के भीतर जो आनद सहित रहते मुनिवर।
जन्मार्णव को शीघ्र लाघते मुक्ति प्राप्त करते सत्वर ॥
पुण्य पाप का अभाव करके पाते आत्म सौख्य पावन ।
जिनमुनि पद ही सर्वश्रेष्ठ है तीन लोक मे मन भावन ॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

अनुकंपा संवेग प्रशम आस्तिक्य सुगुण का धारी बन।
अपनी आत्मा की प्रतीति कर शिवपद पा अविकारी बन॥

तत्त्वों में जयवंत तत्त्व यह शीतल चंदन सम सु सुलभ।
शुद्ध ज्ञानरूपी सर्वोत्तम होता कभी नहीं दुर्लभ॥
पुण्य पाप का अभाव करके पाते आत्म सौख्य पावन।
जिनमुनि पद ही सर्वश्रेष्ठ है तीन लोक में मन भावन॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशाय ससारताप विनाशनाय चदन नि.।

निज गुण विकसित प्रफुल्ल निर्मल अक्षय पद युत समता घर।
बाह्य प्रपचों से परागमुख निरावरण निर्मल सागर॥
पुण्य पाप का अभाव करके पाते आत्म सौख्य पावन।
जिनमुनि पद ही सर्वश्रेष्ठ है तीन लोक में मन भावन॥

ॐ ह्री पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत नि

मोह क्रोध आदिक भावो के क्षय की संभावना विचार।
यही उग्र प्रायश्चित निश्चय यही शील लेते मुनिधार॥
पुण्य पाप का अभाव करके पाते आत्म सौख्य पावन।
जिनमुनि पद ही सर्वश्रेष्ठ है तीन लोक में मन भावन॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशाय कामबाण विनाशनाय पुष्प नि.।

हुए क्षुधा विव्हल जो प्राणी उनने तो दुर्गति पायी।
परम प्रवज्या धारी मुनियो ने तो उत्तम गति पायी॥
पुण्य पाप का अभाव करके पाते आत्म सौख्य पावन।
जिनमुनि पद ही सर्वश्रेष्ठ है तीन लोक में मन भावन॥

ॐ ह्री पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशाय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

शान्त रूप अमृत समुद्र को उदयमान चंद्रमा समान।
अतुल ज्ञान रूपी किरणों से तम का करता है अवसान॥
पुण्य पाप का अभाव करके पाते आत्म सौख्य पावन।
जिनमुनि पद ही सर्वश्रेष्ठ है तीन लोक में मन भावन॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशाय मोहन्धकार विनाशनाय दीप नि.

निश्चय है सामान्य द्रव्य अरु है पर्याय भेद व्यवहार ।
द्रव्याश्रित ही शिव सुखदाता पर्यायाश्रित है ससार ॥

दारुण कर्म समूह जलाकर जन्म मृत्यु का समूह जीत।
सुस्थित है परमात्म तत्त्व पद मे यह परभावो से रीत ॥
पुण्य पाप का अभाव करके पाते आत्म सौख्य पावन ।
जिनमुनि पद ही सर्वश्रेष्ठ है तीन लोक में मन भावन ॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशाय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

मुनियो को स्वात्मा का चितन ही है निश्चय प्रायश्चित ।
कर्म खिराकर महामोक्ष पाते हो निज स्वभाव निष्ठित ॥
पुण्य पाप का अभाव करके पाते आत्म सौख्य पावन ।
जिनमुनि पद ही सर्वश्रेष्ठ है तीन लोक मे मन भावन ॥

ॐ ह्री पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशाय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

क्रोध कषाय क्षमा से जीतो मान कषाय मार्दव से ।
लोभ कषाय शौच से जीतो माया जीतो आस्रव से ॥
पद अनर्घ्य पाना है तो फिर त्वरित जीत लो सर्व कषाय।
नित्य निरजन पद पाने का एकमात्र है यही उपाय ॥
पुण्य पाप का अभाव करके पाते आत्म सौख्य पावन ।
जिनमुनि पद ही सर्वश्रेष्ठ है तीन लोक मे मन भावन ॥

ॐ ह्री पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

अर्घ्यावलि

(पुण्य पाप अधिकार)

(१००)

जैसे नृत्यमंच पर एक ही पुरुष अपने दो रूप दिखाकर नाच रहा हो तो उसे यथार्थ ज्ञाता पहिचान लेता है और उसे एक ही जान लेता है, इसी प्रकार यद्यपि कर्म एक ही है तथापि वह पुण्यपाप के भेद से दो प्रकार के

आत्म द्रव्य को कारणभूत स्वलक्षण ध्रुव चैतन्य स्वरूप ।
भाव प्राण धारण करती है यह जीवत्व शक्ति अनुरूप ॥

रूप धारण करके नाचता है उसे सम्यक् दृष्टि का यथार्थज्ञान एकरूप जान लेता है । उस ज्ञान की महिमा काव्य इस अधिकार के प्रारम्भ में टीकाकार आचार्य कहते हैं -

द्रुतविलंबित

तदथ कर्म शुभासुभभेदतो द्वितयतां गतमैक्यमुपानयन् ।
ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं स्वयमुवदेत्यवबोधसुधाप्लवः ॥१००॥

अर्थ- अब शुभ और अशुभ के भेद से द्वित्व को प्राप्त उस कर्म को एकरूप करता हुआ, जिसने अत्यन्त मोहरज को दूर कर दिया है ऐसा यह ज्ञानसुधाशु स्वयं उदय को प्राप्त होता है ॥१००॥

१०० ॐ ह्रीं शुभाशुभरूपमोहरजरहितपवित्रस्वरूपाय नम ।

ज्ञानसुधांशुस्वरूपोऽहं ।

मरहठा माधवी

शुभ अरु अशुभ एक है दोनो जाना सम्यक् ज्ञान से ।
मोह महारिपु क्षय कर डाला ज्ञान सुधा सु महान से ॥
सम्यक् ज्ञान स्वरूप चद्रमा स्वय उदितअब हो गया ।
विभ्रम के कुहरे को क्षयकर ज्ञान हृदय मे हो गया ॥
पुण्य पाप दोनों भव बंधन कारक हैं यह जान लो ।
ज्ञान भाव ही पूर्ण अबंधक परम सत्य यह मान लो ॥१००॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशशास्त्राय अर्घ्य नि ।

(१०१)

अब पुण्य पाप के स्वरूप दृष्टान्तरूप काव्य कहते हैं -

मन्दक्रान्ता

एको दूरात्त्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमाना-
दन्यः शूद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यंतदैव ।

चिति स्व शक्ति अजडत्व स्वरूपी चेतनत्व से ओत प्रोत ।
त्रैकालिक चिति शक्ति जीव की चिन्मय चिद्रूपी ध्रुव स्रोत॥

द्वावप्येतौ युगपदुदरान्निर्गतौ शूद्रिकायाः
शूद्रौ साक्षादपि च चरतो जातिभेदभ्रमेण ॥१०१॥

अर्थ- एक तो 'मैं ब्राह्मण हूँ' इस प्रकार ब्राह्मणत्व के अभिमान से दूर से ही मदिरा का त्याग करता है, उसे स्पर्श तक नही करता , तब दूसरा 'मै स्वय शूद्र हूँ' यह मानकर नित्य मदिरा से ही स्नान करता है अर्थात् उसे पवित्र मानता है । यद्यपि वे दोनो शूद्रा के पेट से एक ही साथ उत्पन्न हुए है इसलिये दोनो साक्षात् शूद्र हैं, तथापि वे जातिभेद के भ्रम सहित प्रवृत्ति करते हैं ॥१०१॥

१०१ ॐ ह्रीं पुण्यपापरहितपवित्रस्वरूपाय नम ।

अवबोधसुधांशुस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

शूद्रा से उत्पन्न पुत्र दो शूद्रा के ही होते है ।
एक बाह्मण के घर मे जा एक शूद्र गृह पलते हैं ॥
जान रहा इक ब्राह्मण निज को अत. न मदिरा पीता है।
जान रहा जो शूद्र स्वय को मदिरा पीकर जीता है ॥
दोनो साक्षात् शूद्र है भ्रमित प्रवृत्ति वे करते हैं ।
ऐसे ही ये पुण्य पाप आस्रव के बेटे रहते है ॥
पाप पुण्य दोनो बधन कारक है यह अब जान लिया ।
ज्ञान भाव है पूर्ण अबधक परम सत्य यह मान लिया ॥१०१॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशशास्त्राय अर्घ्य नि ।

(१०२)

अब इसी अर्थ का सूचक कलशरूप काव्य कहते हैं :-

उपजाति

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां सदाप्यभेदान्न हि कर्मभेदः ।
तद्बंधमार्गाश्रितमेकमिष्टं स्वयं समस्तं खलु बंध हेतु : ॥१०२॥

अनाकार उपयोग मयी है दर्शन क्रिया रूप दृशि शक्ति ।
ज्ञेय रूप आकार न किंचित है पर से उपयोग विभक्ति ॥

अर्थ- हेतु, स्वभाव, अनुभव और आश्रय इन चारों का सदा ही अभेद होने से कर्म में निश्चय से भेद नहीं है; इसलिये, समस्त कर्म स्वयं निश्चय से बन्धमार्ग के आश्रित हैं और बंध का कारण हैं, अत कर्म एक ही माना गया है-उसे एक ही मानना योग्य है ॥१०२॥

१०२ ॐ ह्रीं बंधहेतुरूपसमस्तकर्मरहितपवित्रस्वरूपाय नमः।

बोधशिशिरांशुस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

अनुभव हेतु स्वभाव आश्रय ये चारों ही सदा अभेद ।
निश्चय से तो कर्मो मे है नहीं ज़रा सा भी कुछ भेद ॥
निश्चय से तो कर्म स्वय ही बध मार्ग के आश्रित है ।
कर्म कर्म है सदा एक है यह आगम से निश्चत है ॥
पाप पुण्य दोनो बधन कारक हैं यह अब जान लिया ।
ज्ञान भाव है पूर्ण अबधक परम सत्य यह मान लिया ॥१०२॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशशास्त्राय अर्घ्य नि ।

(१०३)

इसी अर्थ का कलश रूप काव्य कहते हैं -

स्वागता

कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद्
बंधसाधनमुशन्त्यविशेषात् ।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं
ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः ॥१०३॥

अर्थ- क्योंकि सर्वज्ञदेव समस्त कर्म को अविशेषतया बंध का साधन कहते हैं इसलिये समस्त कर्म का निषेध किया है और ज्ञान को ही मोक्ष का कारण कहा है ॥१०३॥

१०३ ॐ ह्रीं बधसाधनरूपशुभाशुभकर्मरहितपवित्रस्वरूपाय नमः।

ज्ञानार्कस्वरूपोऽहं ।

ज्ञान शक्ति ज्ञानोपयोग मय है साकार सहज उपयुक्त ।
ज्ञान सूर्य कैवल्यज्ञान की महिमा पा हो जाता मुक्त ॥

ताटंक

श्री सर्वज्ञ देव कहते हैं सर्व कर्म बध कारण ।
कर्मों के निषेध करने का ज्ञान महान मोक्ष कारण ॥
पाप पुण्य दोनो बंधन कारक है यह अब जान लिया ।
ज्ञान भाव है पूर्ण अबधक परम सत्य यह मान लिया ॥१०३॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशशास्त्राय अर्घ्य नि ।

(१०४)

जब कि समस्त कर्मो का निषेध कर दिया गया तब फिर मुनियो को किसकी शरण रही सो अब कहते हैं -

शिखरिणी

निषिद्धे सर्वस्मिन् सकृतदुरते कर्माणि किल ।
प्रवृ नैष्कर्म्य नखलु मनुयः सन्त्यशरणाः ।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं
स्वयं विन्दन्त्येते परमममृतं तत्र निरताः ॥१०४॥

अर्थ- शुभ आचरण रूप कर्म और अशुभ आचरण रूप कर्म-ऐसे समस्त कर्मोका निषेधकर देने पर निष्कर्म अवस्था मे प्रवर्तमान, मुनिजन कही अशरण नहीं है , जब निष्कर्म अवस्था प्रवर्तमान होती है तब ज्ञान मे आचरण करता हुआ-रमण करता हुआ-परिणन करता हुआ ज्ञान ही उन मुनियो को शरण है, वे उस ज्ञान में लीन होते हुए परम अमृत का स्वय अनुभव करते है-स्वाद लेते हैं ॥१०४॥

१०४ ॐ ह्रीं सुकृतदुरितकर्मरहितपवित्रस्वरूपाय नम ।

परमचिदमृतस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

शुभाचरण या अशुभ आचरण सर्व कर्म का करो निषेध।
हो निष्कर्म अवस्था अपनी मुनिवर अशरण नही, अभेद॥

ज्ञान आचरण करके जो परिणमन ज्ञान में करता है ।
ज्ञानलीन हो परमामृत का पान वही मुनि करता है ॥
पर अज्ञानीरत कषाय मे नहीं ज्ञान का लेता स्वाद।
ज्ञानी अकषायी हो करके लेता निजानद आस्वाद ॥
पुण्य पाप दोनो बधन कारक है अब यह जान लिया ।
ज्ञान भाव है पूर्ण अबधक परम सत्य यह मान लिया ॥१०४॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशशास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(१०५)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

शिखरिणी

यदेतद् ज्ञानात्मा ध्रुवमचलमाभाति भवनं
शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति ।
अतोऽन्यद्बंधस्य स्वयमपि यतो बंध इति तत्
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिहि विहितम् ॥१०५॥

अर्थ- जो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा ध्रुवरूप से और अचलरूप से ज्ञानस्वरूप होता हुआ-परिणमता हुआ भासित होता है, वही मोक्ष का हेतु है, क्योंकि वह स्वयमेव मोक्षस्वरूप है, उसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ है वह बन्धका हेतु है क्योंकि वह स्वयमेव बन्धस्वरूप है । इसलिये आगम मे ज्ञानस्वरूप होने का अर्थात अनुभूति करने का ही विधान है ॥१०५॥

१०५ ॐ ह्रीं ध्रुवज्ञानरूपपवित्रस्वरूपाय नम ।

ध्रुवचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

ज्ञान स्वरूप आत्मा ध्रुवमय अचल रूप से ज्ञान स्वरूप।
निज मे परिणमता भासित होता है मोक्ष हेतु शिवरूप ॥
मोक्षरूप से अन्य सभी कुछ स्वयं सदा ही बध स्वरूप।
निज अनुभूति विधान श्रेष्ठ है यही शुद्ध है आत्म स्वरूप॥

सब भावो मे व्यापक ऐसी भावरूप है शक्ति विभुत्व ।
ज्ञानरूप ही एक भाव है सब भावो मे व्यापक तत्व ।

पाप पुण्य दोनो बधन कारक है यह अब जान लिया ।
ज्ञान भाव है पूर्ण अबंधक परम सत्य यह मान लिया ॥१०५॥

ॐ ह्री पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशशास्त्राय अर्घ्य नि ।

(१०६)

अब इसी अर्थ के कलशरूप दो श्लोक कहते है -

अनुष्टुप्

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा ।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत् ॥१०६॥

अर्थ-- ज्ञान एकद्रव्यस्वभावी होने से ज्ञान के स्वभाव से सदा ज्ञान का भवन बनता है , इसलिये ज्ञान ही मोक्ष का कारण है ॥१०६॥

१०६ ॐ ह्री बोधार्कस्वरूपाय नम ।

ज्ञानेन्दुस्वरूपोऽहं ।

ताटक

जीव स्वभावी ज्ञान ज्ञान के स्वरूप से ही ज्ञान भवन ।
निर्मित करता उसमे रहता यही मोक्ष का है कारण ॥
ज्ञान मोक्ष का कारण पाकर पाता है आनदसदन ।
सादि अनतानत काल तक रहता है यह आनसदन ॥
पाप पुण्य दोनो बधन कारक है यह अब जान लिया ।
ज्ञान भाव है पूर्ण अबधक परम सत्य यह मान लिया ॥१०६॥

ॐ ह्री पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशशास्त्राय अर्घ्य नि ।

(१०७)

अनुष्टुप्

वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि ।
द्रव्यांतरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत् ॥१०७॥

भव्य सर्वदर्शित्व शक्ति सामान्य भाव से परिणमती ।
लोकालोक पदार्थ सर्व को अवलोकन प्रतिपल करती ॥

अर्थ- कर्म अन्यद्रव्यस्वभावी होने से कर्म के स्वभाव से ज्ञान का भवन नहीं बनता, इसलिये कर्म मोक्ष का कारण नही है ॥१०७॥

१०७ ॐ ह्रीं द्रव्यान्तरस्वभावरूपकर्मरहितपवित्रत्रस्वरूपाय नम।

बोधेन्दुस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

बध स्वभावी कर्म नही है किसी भाति मोक्ष कारण ।
नही कर्म से ज्ञान भवन बनता है ना उसका साधन ॥
कर्म स्वरूप बिना जाने जो पुण्य पाप मे लीन सघन ।
कर्मो के पडकर कुचक्र मे करता रहता है बधन ॥
पाप पुण्य दोनो बधन कारक है यह अब जान लिया ।
ज्ञान भाव है पूर्ण अबधक परम सत्य यह मान लिया ॥१०७॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशशास्त्राय अर्घ्य नि ।

(१०८)

इब आगामी कथन का सूचक श्लोक कहते हैं -

अनुष्टुप्

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च ।
मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते ॥१०८॥

अर्थ- कर्म मोक्ष के कारणो का तिरोधान करने वाला है, और वह स्वय ही बन्धस्वरूप है तथा मोक्ष के कारणो का तिरोधायिभावस्वरूप इसलिये उसका निषेध किया गया है ॥१०८॥

१०८ ॐ ह्रीं मोक्षहेतुतिरोधायिभावरूपकर्मरहितपवित्रस्वरूपाय नम ।

निर्बन्धज्ञानस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

कर्म मोक्ष के कारण का ही तिरोधान करने वाला ।
बंध स्वरूप स्वयं है वह तो सतत बंध होने वाला ॥

सर्वज्ञत्व शक्ति चेतन की आत्मज्ञान मय ख्याता है ।
सकल द्रव्यगुण पर्यायों का ज्ञायक युगपत ज्ञाता है ॥

तिरोधान कर्त्ता का अत निषेध परम आवश्यक है ।
अपना ज्ञान भाव ही केवल परम मोक्ष का साधक है ॥
पाप पुण्य दोनो बंधन कारक हैं यह अब जान लिया ।
ज्ञान भाव है पूर्ण अबंधक परम सत्य यह मान लिया ॥१०८॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशशास्त्राय अर्घ्य नि ।

(१०९)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते है -

सन्यस्तव्यमिदं समस्तमपितत्कर्मैषि मोक्षार्थिना
सन्यस्ते सति तत्रका शिलकथा पुण्यस्य पापस्यवा
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवन्
नैष्कर्म्यप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं धावति ॥१०९॥

अर्थ- मोक्षार्थी को यह समस्त ही कर्ममात्र त्याग करने योग्य है । जहाँ समस्त कर्मों का त्याग किया जाता है फिर वहा पुण्य या पाप की क्या बात है ? ऐसी बात को अवकाश ही कहा है ? समस्त कर्म का त्याग होने पर, सम्यक्त्वादि अपने स्वभाव रूप होने से- परिणमन करने से मोक्ष का कारणभूत होता हुआ, निष्कर्म अवस्था के साथ जिसका उद्धत रस प्रतिबद्ध है ऐसा ज्ञान, अपने आप दौडा चला आता है ॥१०९॥

१०९ ॐ ह्री ज्ञानभास्कररूपपवित्रस्वरूपाय नम ।

निष्कर्मस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

परम ज्ञान ही महामोक्ष कारण है निज से सदा अभिन्न।
पर द्रव्यो पर भावो से ह तीनो काल सदा ही भिन्न ॥
मोक्षार्थी को सर्व कर्म है मात्र त्याग देने के योग्य ।
जहाँ कर्म का त्याग हो गया पुण्य पाप का हो क्यो योग॥
जीव स्वभाव रूप परिणमता वही मोक्ष का कारण भूत।
है निष्कर्म अवस्था वाला उत्कट सप्रति बुद्ध स्वरूप ॥

आत्मप्रदेश प्रकाशमान हैं जिसमें लोकालोकाकार ।
यह स्वच्छत्त्व शक्ति की महिमा है उज्ज्वलता का भंडार॥

पाप पुण्य दोनो बधन कारक हैं यह अब जान लिया ।
ज्ञान भाव है पूर्ण अबंधक परम सत्य यह मान लिया ॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशशास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(११०)

अब आशका उत्पन्न होती है कि- जबतक अविरत सम्यक्दृष्टि इत्यादि के कर्म का उदय रहता है तब तक ज्ञान मोक्ष का कारण कैसे हो सकता है ? और कर्म तथा ज्ञान दोनो एक ही साथ कैसे रह सकते हैं ? इसके समाधानार्थ काव्य कहते हैं -

शार्दूल विक्रीड़ित

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ्न सा
कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपि विहितस्तावन्न काचित्क्षतिः ।
किन्त्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्म बंधाय तन्
मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः ॥११०॥

अर्थ- जबतक ज्ञान की कर्मविरति भलीभाति परिपूर्णता को प्राप्त नहीं होती तब तक कर्म और ज्ञान का एक त्रितपना शास्त्र में कहा है, उसके एकत्रित रहने में कोई भी क्षति या विरोध नहीं है । यहा इतना विशेष जानना चाहिये कि आत्मा मे अवशपने जो कर्म प्रगट होता है वह तो बन्ध का कारण है, और जो एक परम ज्ञान है वह एक ही मोक्ष का कारण है जो कि स्वत विमुक्त है ॥११०॥

११० ॐ ह्रीं कुशीलकर्मरहितपवित्रस्वरूपाय नम ।

परमज्ञानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

कर्म विरति परिपूर्ण न हो तो नहीं ज्ञान की होती प्राप्ति।
कर्म बंध का ही कारण है स्वानुभूति होती ना व्याप्ति ॥
जब तक यथाख्यात चारित्र नहीं है तब तक दो धारा।
एक शुभाशुभ कर्म और है एक ज्ञान निर्मल धारा ॥

स्वय प्रकाशमान अति निर्मल विशद स्व सवेदन मय है ।
यही प्रकाश शक्ति का गुण है सदा प्रकाशित गुण मय है॥

जिन अशो मे रागभाव उतनी अरे बंध धारा ।
जिन अशो में ज्ञानभाव उतनी ही सहज ज्ञान धारा ॥
पाप पुण्य दोनो बधन कारक हैं यह अब जान लिया ।
ज्ञान भाव है पूर्ण अबधक परम सत्य यह मान लिया ॥११०॥

ॐ ह्री पुण्य पाप अधिकार समन्वित समयसार कलशशास्त्राय अर्घ्य नि ।

(१११)

अब कर्म और ज्ञान का नय विभाग बतलाते है -

शार्दूल विक्रीडित

मग्नाः कर्मनयावलबनपरा ज्ञान न जानंति यत्
मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदतिस्वच्छंदमंदोद्यमाः ।
विश्वस्योपरि ते तरंति सततं ज्ञानं भवंतः स्वय
ये कुर्वति न कर्म जातु न वशं यांति प्रमादस्य च ॥१११॥

अर्थ- कर्मनय के आलम्बन मे तत्पर पुरुष डूबे हुए हैं क्योकि वे ज्ञानको नही जानते । ज्ञाननय के इच्छुक पुरुष भी डूबे हुए है वे स्वच्छन्दता से अत्यन्त मन्द उद्यमी है वे जीव विश्व के ऊपर तैरते है जो कि स्वय निरन्तर ज्ञानरूप होते हुए परिणमते हुए कर्म नही करते और कभी भी प्रमादवश भी नहीं होते ॥१११॥

१११ ॐ ह्री कर्मनयज्ञाननयपक्षरहितपवित्रस्वरूपाय नम

निरपेक्षोऽह ।

ताटक

कर्म नयो के पक्षपात में जो डूबा अज्ञानी है ।
सदा उद्यमी है अपने मे नहीं प्रमादी ज्ञानी है ॥
सतत निरतर ज्ञान रूप हो कोई कर्म नहीं करता ।
वह प्रमाद वश कभी न होता सर्व विभाव भाव हरता ॥
है एकान्त अभिप्राय निषेधी रच नहीं उर मे मिथ्यात्व ।
निज स्वरूप मे सतत उद्यमी उरमे रहता दृढ सम्यक्त्व॥

क्षेत्र काल से सदा अमर्यादित चैतन्य विलास स्वरूप ।
असंकुचित विकास शक्ति ही आत्म विकासमयी चिद्रूप ॥

पाप पुण्य दोनो बधन कारक हैं यह अब जान लिया ।
ज्ञान भाव है पूर्ण अबधक परम सत्य यह मान लिया ॥१११॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित श्री समयसार कलशशास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(११२)

अब पुण्य-पाप अधिकार को पूर्ण करते हुए आचार्यदेव ज्ञान की महिमा करते हैं -

मदाक्रान्ता

भेदोन्माद भ्रमरसभराञ्नाटयत्पीतमोहं
मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा बलेन ।
हेलोन्मीलत्परमकलया सार्धमारब्धकेलि
ज्ञानज्योति: कवलिततम: प्रोज्जजृम्भे भरेण ॥११२॥

अर्थ- मोहरूपी मदिरा के पीने से, भ्रमरस के भार से शुभाशुभ कर्म के भेदरूपी उन्माद को जो नचाता है ऐसे समस्त कर्म को अपने बल द्वारा समूल उखाडकर अत्यन्त सामर्थ्ययुक्त ज्ञानज्योति प्रगट हुई। वह ज्ञानज्योति ऐसी है कि जिसने अज्ञानरूपी अधकार का ग्रास कर लिया है अर्थात् जिसने अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश कर दिया है, जो लीलामात्र से विकसित होती जाती है और जिसने परम कला अर्थात् केवलज्ञान के साथ क्रीडा प्रारम्भ की है ऐसी वह ज्ञानज्योति है ॥११२॥

टीका- पुण्य-पापरूप से दो पात्रों के रूप मे नाचने वाला कर्म एक पात्ररूप होकर बाहर निकल गया ।

११२ ॐ ह्री मोहमदिरारहितपवित्रस्वरूपाय नम

बोधसुधारसस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

मोह रूप मद पी भ्रम रस से कर्म भेद में जो मचता ।
वह अज्ञानी कर्म बधकर चारों गति के दुख रचता ॥
ज्ञान ज्योति से भव विभ्रम का अधकार जो करता ग्रास।
आत्म स्वरूप विकासित करता करता केवल ज्ञान प्रकाश॥

अकार्यकारण शक्ति अनूठी कारण कार्य नहीं परका ।
शक्तिमान स्वातंत्र्य स्वरूपी परका भार न तिल भरका ॥

अपनी ज्ञान ज्योति के बल से वह अनुभव क्रीड़ा करता।
केवल ज्ञान ज्योति के सग रह घाति अघाति सर्व हरता॥
पाप पुण्य दोनो बधन कारक है यह अब जान लिया ।
ज्ञान भाव है पूर्ण अबधक परम सत्य यह मान लिया ॥११२॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित श्री समयसार कलशशास्त्राय अर्घ्य नि ।

महाअर्घ्य

गीत

ज्ञान सम्राट हू मै तीन लोक का स्वामी ।
कोई परभाव नही मुझमे है मै निष्कामी ॥
राग द्वेषादि से सबध तोड़ डाला है ।
शुद्ध भावो से ही सबध जोड डाला है ॥
मै ही तो सिद्ध हू त्रैलोक्य मे परम नामी ।
ज्ञान सम्राट हू मै तीन लोक का स्वामी ॥
पुण्य पापो को मैने पूर्ण नष्ट कर डाला ।
जितना भी था विभाव उसे भ्रष्ट कर डाला ॥
अब तो मै पूर्णतया हो गया हू ध्रुवधामी ।
ज्ञान सम्राट हूँ मै तीन लोक का स्वामी ॥

ॐ ह्रीं पुण्य पाप अधिकार समन्वित श्री समयसार कलशशास्त्राय महाअर्घ्य नि ।

जयमाला

वीरछंद

निर्विकल्प उत्तम समाधि में जो रहता चैतन्य स्वरूप ।
द्वैताद्वैत विचार मुक्त हो पाता परम शान्ति चिद्रूप ॥
गहन गुफा पर्वत की हो या वन अटवी का शून्य प्रदेश।
ध्यान तीर्थ यात्रा आदिक हो हो इन्द्रिय निरोध सविशेष॥
जप से तप से अन्य क्रिया से कभी न होगी किंचित सिद्धि।
समता रहित तपश्चर्या है तो भी नहीं ज्ञान की वृद्धि ॥

भवभय करने वाले ये सावद्य समूह नष्ट कर दूं ।
मन वच काया की विभूति को निमिष मात्र में क्षय कर दूं ॥
शुद्ध शील को ही पाऊं मैं सीख ज्ञान की परम कला ।
शाश्वत समतामय जीवन जी पाऊं निर्भय मार्ग भला॥
पुण्य पाप की छाया का मै करू दूर से ही परिहार ।
सर्व आस्रव बध रहित हो नाश करू दुखमय संसार ॥

ॐ ह्रीं समयसारप्राभृतग्रन्थे पुण्यपापाधिकारे कलशस्वरूप पवित्रस्वरूपाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

आशीर्वाद :

पुण्य पाप अधिकार पढ पुण्य पाप लू जान ।
बंधमयी ये भाव है इन्हे करूं अवसान ॥

इत्याशीर्वाद :

मोह की रात का अब अंत निकट आया है ।
उजाला ज्ञान का इस बार मैने पाया है ॥
अब विभावों से मैने तर्क दोस्ती की है ।
स्वभाव से ही मैंने वास्ता बढ़ाया है ॥
मोह मिथ्यात्व से तोड़ा है मैने अब रिश्ता ।
स्वभाव भाव का ही साथ मैंने पाया है ॥
मोक्ष का मार्ग मैने आज स्वयं देख लिया ।
शुद्ध सम्यक्त्व का वैभव अपार पाया है ॥

त्यागोपादान शून्यत्व की शक्ति स्वरूप नियत निश्चित ।
निज स्वरूप मे कभी न घट बढ होती है किंचित निर्मित॥

ॐ

आस्रव अधिकार पूजन

स्थापना

रोला

निज स्वरूप से विचलित करने वाला आस्रव ।
भटकाता चारो गतियो में दुष्ट आस्रव ॥
छिपे हुए क्रोधादि भयकर सर्व आस्रव ।
उसी भाति मिथ्यात्व सर्प भी है यह आस्रव ॥
इससे बचने का उपाय ही करना होगा ।
आस्रव के भावो को पूरा हरना होगा ॥
आस्रव के क्षय हेतु नाथ करता हू पूजन ।
अब न विभावो के करना है मुझको बधन ॥

ॐ ह्री आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्
ॐ ह्री आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन।
ॐ ह्री आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

ताटक

द्रव्य और गुण पर्यायो के विकल्प मे जो रहता है ।
वही अन्य वश श्रमण भूल से भव सागर दुख सहता है॥
यह आस्रव अधिकार जानकर करू आस्रव का परिहार।
सभी शुभाशुभ आस्रव नाशूं जाऊ भव समुद्र के पार ॥

षड्गुण वृद्धि हानि रूपी परिणमन स्वतंत्र सदा होता ।
अगुरूलघुत्व शक्ति का उपवन स्व प्रतिष्ठ निज में होता॥

ॐ ह्रीं आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

आत्म चिन्तवन रूप यतीजन रहते भव चिन्ता से दूर ।
पचाचार पालते जिनगुण सपत्ति पाते हैं भरपूर ॥
यह आस्रव अधिकार जानकर करू आस्रव का परिहार।
सभी शुभाशुभ आस्रव नाशू जाऊ भव समुद्र के पार ॥

ॐ ह्री आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

जिसकी बुद्धि उदार वही भव कारण क्षय कर देता है।
सदा शिवमयी अक्षय पद को आदर पूर्वक लेता है ॥
यह आस्रव अधिकार जानकर करू आस्रव का परिहार।
सभी शुभाशुभ आस्रव नाशू जाऊ भव समुद्र के पार ॥

ॐ ह्री आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत नि ।

ब्रह्म निष्ठ हो सतत प्रयत्न शील रहते है जिन मुनिराज।
कामवाण वेदना नष्ट कर पा लेते हैं निज पद राज ॥
यह आस्रव अधिकार जानकर करू आस्रव का परिहार।
सभी शुभाशुभ आस्रव नाशू जाऊ भव समुद्र के पार ॥

ॐ ह्री आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि ।

तप इच्छा निरोध करते जो मुक्ति सपदा का कारण ।
क्षुधा आदि रोगो को क्षय करते बनते भवदधि तारण॥
यह आस्रव अधिकार जानकर करू आस्रव का परिहार।
सभी शुभाशुभ आस्रव नाशू जाऊ भव समुद्र के पार ॥

ॐ ह्रीं आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

है उत्पाद व्यय ध्रुवत्व की शक्ति सदा क्रम अक्रमरूप ।
क्रम प्रवृत्ति पर्याय तथा अक्रम प्रवृत्ति गुण ध्रुवत्व रूप ॥

जो जिनेन्द्र का मार्ग वही निर्वाण सपदा का दाता ।
ज्ञान दीप ही तम क्षय करता अजर अमर सुख का दाता॥
यह आस्रव अधिकार जानकर करू आस्रव का परिहार।
सभी शुभाशुभ आस्रव नाशू जाऊ भव समुद्र के पार ॥

ॐ ह्रीं आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय मोहन्धकार विनाशनाय दीप नि ।

भव कोलाहल से सुदूर है कर्मावलि का नाम नहीं ।
शुद्ध बोध रत्नाकर अधिपति कृतकृत्य कुछ काम नही॥
यह आस्रव अधिकार जानकर करू आस्रव का परिहार।
सभी शुभाशुभ आस्रव नाशूं जाऊ भव समुद्र के पार ॥

ॐ ह्रीं आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

निज रस के विस्तार पूर से आस्रव सब धो डाले है ।
भव अरण्य में एकमात्र ये ही तो शिव फल वाले हैं ॥
यह आस्रव अधिकार जानकर करूं आस्रव का परिहार।
सभी शुभाशुभ आस्रव नाशू जाऊ भव समुद्र के पार ॥

ॐ ह्रीं आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि. ।

आत्म निष्ठ योगी हो अथवा वीतराग सर्वज्ञ जिनेश ।
दोनों मे कुछ भेद नहीं है दोनों का सम अन्तर वेश ॥
धन्य धन्य हैं स्ववश महामुनि धन्य आत्म बुद्धि वाले ।
कर्मो से बाहर रहते हैं पद अनर्घ्य के मतवाले ॥
यह आस्रव अधिकार जानकर करूं आस्रव का परिहार।
सभी शुभाशुभ आस्रव नाशूं जाऊं भव समुद्र के पार ॥

व्यय उत्पाद ध्रौव्य आलिंगित सदृश असदृश द्रव्य स्वभाव।
है अस्तित्व मयी परिणाम स्व शक्ति जीव का यही स्वभाव॥

ॐ ह्रीं आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

अर्घ्यावलि

(आस्रव अधिकार)

(११३)

प्रथम टीकाकार कहते हैं कि- 'अब आस्रव प्रवेश करता है' । जैसे नृत्यमच पर नृत्यकार स्वाग धारण कर प्रवेश करता है उसी प्रकार यहा आस्रव का स्वाग है । उस स्वाग को यथार्थतया जानने वाला सम्यक्ज्ञान है उसकी महिमा रूप मगल करते हैं

द्रुतविलंबित

अथ महामदनिर्भरमंथरं
समररगपरागतमास्रवम् ।
अयमुदारगभीरमहोदयो
जयति दुर्जयबोधधनुर्धरः ॥११३॥

अर्थ- अब समरागण मे आये हुए, महामद से भरे हुए मदोन्मत्त आस्रव को यह दुर्जय ज्ञान-धनुर्धर जीत लेता हैं, जिसका महान् उदय उदार है अर्थात् आस्रव को जीतने के लिए जितना पुरुषार्थ चाहिये उतना वह पूरा करता है और गम्भीर है ॥११३॥

११३ ॐ ह्री अजिक्यबोधनुर्धरस्वरूपपवित्रस्वरूपाय नम ।

दुर्जयावबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

समरागण मे महा मद भरा मदोन्मत्त आस्रव दुर्जय ।
ज्ञान धनुर्धर उसे जीत लेता है ले निज का आश्रय ॥
ज्ञान रुप वाणावलि का पा उदय महा उदार पावन ।
निज पुरुषार्थ पूर्ण करता है, है गम्भीर हृदय भावन ॥

वर्ण गध रस स्पर्श रहित है आत्म प्रदेश सदैव त्रिकाल।
अमूर्तत्व की शक्ति जीव की इन्द्रिय ग्राह्य नहीं सुविशाल॥

निज स्वरूप के दर्शन पाऊ आस्रव भावो को जयकर।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊँ फिर हर्षित होकर॥११३॥

ॐ ह्री आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(११४)

अब, 'ज्ञानमय भाव ही भावास्रव का अभाव है' इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते है -

शालिनी

भावो रागद्वेषमोहैर्विना यो
जीवस्य स्याद् ज्ञाननिर्वृत्त एव ।
रुन्धन् सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघान्
एषोऽभाव: सर्वभावास्रवाणाम् ॥११४॥

अर्थ- जीव का जो रागद्वेषमोह रहित, ज्ञान से ही रचित भाव है और जो सर्व द्रव्यकर्म के आस्रव समूह को रोकने वाला है, वह भाव सर्व भावास्रव के अभावस्वरूप है ॥११४॥

११४ ॐ ह्री सर्वद्रव्यभावास्रवरहितनिरास्रवस्वरूपाय नम ।

ज्ञानरविस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

राग द्वेष मोहादि रहित है ज्ञान रचित जीवो का भाव ।
द्रव्य कर्म आस्रव समूह को रोक रहा है ज्ञान स्वभाव ॥
भावास्रव के अभाव रूप है ज्ञानमयी निज आत्म स्वभाव।
द्रव्य कर्म अरु भाव कर्म का कर देता है पूर्ण अभाव ॥
निज स्वरूप के दर्शन पाऊं आस्रव भावों को जयकर।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊँ फिर हर्षित होकर॥११४॥

ॐ ह्री आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

उपरमरूपी निवृत्ति स्वरूपी अकर्तृत्व की शक्ति महान ।
कोई कर्म भाव परिणाम नहीं करती बस ज्ञाता ज्ञान ॥

(११५)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते है -

उपजाति

भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो
द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्न : ।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो
निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥११५॥

अर्थ- भावास्रवो के अभाव को प्राप्त और द्रव्यास्रवो से तो स्वभाव से ही भिन्न ज्ञानी जो कि सदा एक ज्ञानमय भाववाला है निरास्रव ही है, मात्र एक ज्ञायक ही है ॥११५॥

११५ ॐ ह्री भावास्रवरहितनिरजनस्वरूपाय नम ।

ज्ञायकैकस्वरूपोऽहं ।

वीरछद

भावास्रव के अभाव को पा द्रव्यास्रव से स्वरूप भिन्न ।
ज्ञानी अपने ज्ञानमयी भावो से रहता सदा अभिन्न ॥
वह तो सदा निरास्रव ही है एकमात्र बस ज्ञायक है ।
निज स्वरूप साधना शक्ति से यह त्रिभुवन का नायक है ॥
निज स्वरूप के दर्शन पाऊं आस्रव भावो को जयकर।
समयसार मदिर पर कलश चढ़ाऊँ फिर हर्षित होकर॥११५॥

ॐ ह्री आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(११६)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :-

संन्यस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयं
वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन् ।
उच्छिंदन्परवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णो भव-
न्नात्मा नित्यनिरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा ॥११६॥

ज्ञान भाव का भोग सदा उपरम स्वभाव अनुभवमय है ।
भोक्तृत्व की शक्ति अनोखी निज स्वभाव निजगुणमय है॥

अर्थ-आत्मा जब ज्ञानी होता है तब, स्वय अपने समस्त बुद्धिपूर्वक राग को निरन्तर छोडता हुआ अर्थात् न करता हुआ, और जो अबुद्धिपूर्वक राग है उसे भी जीतने के लिये बारम्बार स्वशक्ति को स्पर्श करता हुआ वास्तव मे सदा निरास्रव है ॥११७॥

११६ ॐ ह्रीं समग्ररागरहितनिरास्रवस्वरूपाय नम.।

ज्ञानशक्तिस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

ज्ञानी जब ज्ञानी होता है तजता बुद्धि पूर्वक राग ।
बारम्बार यत्न करता जय करता बुद्धि पूर्वक राग ॥
पर परिणति को उखाडता है ज्ञान पूर्ण भाव होता ।
वही निरास्रव राग मात्र को हेय जान पूरा खोता ॥
निज स्वरूप के दर्शन पाऊ आस्रव भावो को जयकर।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊँ फिर हर्षित होकर११६॥

ॐ ह्रीं आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(११७)

अब शिष्य की आशका का श्लोक कहते हैं -

अनुष्टुप्

सर्वस्यामेव जीवंत्यां द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ ।
कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मति: ॥११७॥

अर्थ- ज्ञानी के समस्त द्रव्यास्रव की सतति विद्यमान होने पर भी यह क्यो कहा है कि ज्ञानी सदा ही नरास्रव है' ? यदि तेरी यह मति है तो अब उसका उत्तर कहा जाता है ॥११७॥

११७ ॐ ह्रीं द्रव्यप्रत्ययसततीरहितनिरंजनस्वरूपाय नम।

नित्यनिरास्रवस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

ज्ञानी को द्रव्यास्रव सतति विद्यमान होने पर भी ।
उसे निरास्रव क्यो कहते हो यह न उचित है अणु भर भी ॥

कर्म जनित कंपन से विरहित है निष्कंप अकंप स्वरूप ।
निष्क्रियत्व की शक्ति जीव की त्रैकालिक है उपरम रूप॥

पूर्व बद्ध सत्ता मे विद्य, नहीं है उनके प्रति कुछ राग ।
इसीलिए है सदा निरास्रव ज्ञानी उसे नहीं है राग ॥
निज स्वरूप के दर्शन पाऊ आस्रव भावों को जयकर।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊँ फिर हर्षित होकर॥११७॥
ॐ ह्रीं आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(११८)

अब इस आर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

विजहति न हि सत्तां प्रत्ययाः पूर्वबद्धाः
समयमनुसरंतो यद्यपि द्रव्यरूपाः ।
तदपि सकलरागद्वेषमोहव्युदासा-
दवतरति न जातु ज्ञानिनः कर्मबन्धः ॥११८॥

अर्थ- यद्यपि अपने-अपने समय का अनुसरण करने वाले पूर्वबद्ध द्रव्यरूप प्रत्यय अपनी सत्ता को नहीं छोडते, तथापि सर्व रागद्वेषमोह का अभाव होने से ज्ञानी के कर्मबन्ध कदापि अवतार नही धरता नहीं होते ॥११८॥

११८ ॐ ह्री पूर्वबद्धद्रव्यप्रत्ययरहितनिष्कलंकस्वरूपाय नम ।

शुद्धावबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरंछद

अपने अपने समय उदय में आने वाले पूरव बद्ध ।
द्रव्य रूप प्रत्यय सत्ता को नहीं छोडते रहते बद्ध ॥
तो भी राग द्वेष मोह का ज्ञानी को है सर्व अभाव ।
ज्ञानी को यह कर्म बंध अवतरित न होते यही स्वभाव॥
निज स्वरूप के दर्शन पाऊं आस्रव भावों को जयकर।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊँ मैं फिर हर्षित होकर॥

ॐ ह्रीं आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

अरहंतो सम निर्विकल्प हूँ अविकल्पी आनद स्वरूप ।
अरहतो सम मुझमे भी हैं नव केवल लब्धिया अनूप ॥

(११९)

अब इसी अर्थ को दृढ करने वाली आगामी दो गथाओ का सूचक श्लोक कहते है -

अनुष्टुप्

रागद्वेषविमोहाना ज्ञानिनो यदसभवः ।
तत एव न बंधोऽस्य ते हि बंधस्य कारणम् ॥११९॥

अर्थ क्योकि ज्ञानियो के रागद्वेष मोह का असम्भव है इसलिये उनके बन्ध नही है, कारण कि वे ही बन्ध का कारण है ॥११९॥

११९ ॐ ह्री बन्धकारणरागद्वेषमोहरहितकलकस्वरूपाय नम ।

नित्याकलंकोऽह ।

ताटक

क्योकि ज्ञानि को राग द्वेष मोहादि सदैव असभव है ।
इसीलिए तो बध नही है नही बध कारण अब है ॥
निज स्वरूप के दर्शन पाऊ आस्रव भावो को जयकर।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊँ फिर हर्षित होकर॥११९॥

ॐ ह्री आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१२०)

अब, ज्ञानी को बन्ध नही होता यह शुद्धनय का माहात्म्य है इसलिये शुद्धनय की महिमा दर्शक काव्य कहते है -

वसततिलका

अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिन्ह-
मैकाग्र्यमेव कालयंति सदैव ये ते ।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवतः
पश्यंति बधविधुर समयस्य सारम् ॥१२०॥

नियत प्रदेश शक्ति से अपने रहती लोकाकाश प्रमाण ।
है सकोच विस्तार जगत मे मुक्ति प्राप्ति पर अचल महान॥

अर्थ- उद्धत ज्ञान जिसका लक्षण है ऐसे शुद्धनय मे रहकर अर्थात् शुद्धनय का आश्रय लेकर जो सदा ही एकाग्रता का अभ्यास करते हैं वे, निरन्तर रागादि से रहित चित्तवाले वर्तते हुए, बन्ध रहित समय के सार को अनुभव करते हैं ।

१२० ॐ ह्रीं बन्धविधुरसमयसाराय नम ।

बोधचिह्नस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

उद्धत ज्ञान दबाये से दब सकता ना, है उन्नत ज्ञान ।
मात्र शुद्ध नय का आश्रय ले करते एकाग्रता का भान॥
सतत निरतर करते यह अभ्यास राग से सदा विहीन।
बध रहित निज समयसार का अनुभव करते ज्ञान प्रवीण॥
निज स्वरूप के दर्शन पाऊ आस्रव भावो को जयकर।
समयसार मदिर पर कलश चढ़ाऊँ फिर हर्षित होकर॥१२०॥

ॐ ह्री आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार गकलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१२१)

अब यह कहते है कि जो शुद्धनय से च्युत होते है वे कर्म बाँधते हैं-

वसंततिलका

प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु
रागादियोगमुपयांति विमुक्तबोधाः ।
ते कर्मबन्धमिह बिभ्रति पूर्वबद्ध-
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम् ॥१२१॥

अर्थ- जगत् मे जो शुद्धनय से च्युत होकर पुन. रागादि के सबध को प्राप्त होते हैं ऐसे जीव, जिन्होने ज्ञान को छोड़ा है ऐसे होते हुए, पूर्वबद्ध द्रव्यास्रव के द्वारा कर्मबन्ध को धारण करते हैं जो कि कर्मबन्ध अनेक प्रकार विकल्प जाल को करता है ॥१२१॥

१२१ ॐ ह्रीं विचित्रविकल्पजालयुक्तकर्मबन्धरहिताबधस्वरूपाय नम।

ज्ञानचिह्नस्वरूपोऽहं ।

स्वधर्म व्यापकत्व शक्ति का एक स्वरूपात्मक निज रूप।
देह धर्म होती न कभी भी निजस्वधर्म व्यापक अनुरूप ॥

वीरछंद

शुद्ध सुनय से च्युत हो जो रागादिक से करते सबध ।
पुन जिन्होने ज्ञान तजा है वे ही धारण करते बध ॥
पूर्व बद्ध द्रव्यास्रव द्वारा कर्म बाधते रहते है ।
विविध विकल्प जाल मे पडकर कष्ट अनतो सहते है ॥
निज स्वरूप के दर्शन पाऊ आस्रव भावो को जयकर।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊँ फिर हर्षित होकर॥१२१॥

ॐ ह्री आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१२२)

अनुष्टुप्

अब इस सर्व कथन का तात्पर्य रूप श्लोक कहते है -

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि ।
नास्ति बंधस्तदत्यागात्तत्यागाद्‍बध एव हि ॥१२२॥

अर्थ- यहा यही तात्पर्य है कि शुद्धनय त्यागने योग्य नही है, क्योकि उसके अत्याग से बन्ध नही होता और उसके त्याग से बन्ध ही होता है ॥१२२॥

१२२ ॐ ह्री निजध्रुवस्वरूपाय नम ।

शाश्वतज्ञानस्वरूपोऽहं ।

नही त्यागने योग्य शुद्धनय है अत्याग से बध नहीं ।
जो त्यागते शुद्धनय वे बंधो से होते मुक्त नहीं ॥
निज स्वरूप के दर्शन पाऊं आस्रव भावो को जयकर।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊँ फिर हर्षित होकर॥१२२॥

ॐ ह्रीं आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१२३)

'शुद्धनय त्याग करने योग्य नहीं है' इस अर्थ को दृढ करने वाला काव्य

साधारण असाधारण अरु साधारण असाधारण धर्मत्व ।
यही शक्ति त्रय भावो को धारण करती है सहज निजत्व ॥

पुन कहते है -

शार्दूल विक्रीडित

धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे निबध्नन्धृतिं
त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वंकषः कर्मणाम् ।
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः
पूर्णं ज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यंति शांत महः ॥१२३॥

अर्थ- धीर और उदार जिसकी महिमा है ऐसे अनादिनिधन ज्ञान मे स्थिरता को बॉधता हुआ शुद्धनय-जो कि कर्मो का समूल नाश करने वाला है- पवित्र धर्मात्मा पुरुषों के द्वारा कभी भी छोडने योग्य नही है । शुद्धनय मे स्थित वे पुरुष, बाहर निकलती हुई अपनी ज्ञान किरणो के समूह को अल्पकाल मे ही समेटकर, पूर्ण, ज्ञानघन के पुन्जरूप, एक, अचल, शान्त तेज को-तेज पुन्ज को देखते है अर्थात् अनुभव करते है ॥१२३॥

१२३ ॐ ह्री ज्ञानपर्यायरूपमरीचिचक्ररहितनिरास्रवस्वरूपाय नम ।

ज्ञानधनपुंजस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

धीर उदार महिम्नि अनादि निधन निज ज्ञान रूप मे थिर।
यही शुद्ध नय कर्म समूह नाश करने मे है तत्पर ॥
पवित्र धर्मात्मा के द्वारा नहीं, छोडने योग्य कभी ।
ज्ञान किरण के समूह को निज मे समेटते ज्ञान सभी॥
पूर्ण ज्ञानधन पुज रूप निज तेज पुज अनुभव करते ।
एक अचल ध्रुव शान्त तेज को देख परम सुख उर भरते॥
निज स्वरूप के दर्शन पाऊं आस्रव भावों को जयकर।
समयसार मंदिर पर कलश चढाऊँ फिर हर्षित होकर॥१२३॥

ॐ ह्रीं आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

है अनत धर्मत्व शक्ति लक्षण है एक विलक्षण भाव ।
भावित सदा अनत स्वभावों से ऐसा है एकीभाव ॥

(१२४)

अब, आस्रवो का सर्वथा नाश करने से जे ज्ञान प्रगट हुआ उस ज्ञान की महिमा-का सूचक काव्य कहते हैं -

रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां
नित्योद्योतं किमपि परमं वस्तु संपश्यतोऽन्तः ।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा-
नालोकांतादचलमतुल ज्ञानमुन्मग्नमेतत् ॥१२४॥

अर्थ- जिसका उद्योत नित्य है ऐसी किसी परम वस्तु को अन्तरग मे देखने वाले पुरुष को, रागादि आस्रवो का शीघ्र ही सर्व प्रकार नाश होने से, यह ज्ञान प्रगट हुआ-कि जो ज्ञान अत्यन्तात्यन्त विस्तार को प्राप्त निजरस के प्रसार से लोक के अन्त तक के सर्व भावो को व्याप्त कर देता है अर्थात् सर्व पदार्थों को जानता है, वह ज्ञान प्रगट हुआ तभी से सदाकाल अचल है अर्थात् प्रगट होने के पश्चात् सदा ज्यो का त्यो ही बना रहता है-चलायमान नही होता, और वह ज्ञान अतुल है अर्थात् उसके समान दूसरा कोई नहीं है ॥१२४॥

१२४ ॐ ह्री अचलज्ञानस्वरूपाय नम ।

अतुलज्ञानस्वरूपोऽह ।

ताटंक

नित्योद्योत स्वपरम वस्तु को अतरग जो देख रहा ।
रागादिक आस्रव विनाश कर ज्ञान ज्योति उर लेख रहा॥
अत्यन्ता अत्यत पूर्ण विस्तार सदा करता है प्राप्त ।
निज रस मयी सर्व भावो को लोक अत तक करता व्याप्त॥
निश्चल केवल ज्ञान स्वघट जब होता चलित नहीं होता।
ज्ञान समान नही है कोई ज्ञान अतुल न नष्ट होता ॥
निज स्वरूप के दर्शन पाऊ आस्रव भावो को जयकर।
समयसार मदिर पर कलश चढाऊँ फिर हर्षित होकर॥१२४॥

ॐ ह्रीं आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

है विरुद्ध धर्मत्व शक्ति लक्षण तत् अतत् रूप मयता ।
तत् स्वरूप है अतत् रूप है निज स्वरूप मे तन्मयता ॥

महाअर्घ्य

गीत

सावधान होके चलूं मुक्ति भवन तक ।
जागरूक हो के चलू अपने सदन तक ॥
पलभर विभाव भाव नही सग लू ।
एकत्व लेके चलू मुक्ति गगन तक ॥
सिद्धत्व शक्ति मेरे पास है अटूट ।
उसका प्रयोग करू पूर्ण लगन तक ॥
आस्रव को पूर्ण तया नष्ट करूं मै ।
बधो का नाश करू अत समय तक ॥

ॐ ह्री आस्रव अधिकार समन्वित श्री समयसार गकलश शास्त्राय महाअर्घ्यं नि ।

जयमाला

वीरछद

निरुपचार रत्नत्रयात्मक निरुपराग शिवमार्ग महान ।
इसमे सुस्थापित कर निज को पाएगा शाश्वत निर्वाण ॥
मुक्ति हेतु सम्यक् दर्शन चारित्र ज्ञान रत्नत्रय है ।
अविचल शुद्ध महा महिमामय यथाख्यात ही निश्चय है॥
आत्म प्रयत्न शील जो होते वे करते रत्नत्रय भक्ति ।
बाह्य प्रपचो की छवि क्षय कर प्रगटाते है निज की भक्ति॥
आत्म तत्त्व मे रहने वाले भव्य भवो का करते नाश ।
साक्षात् निज भाव लीन हो पाते केवल ज्ञान प्रकाश ॥
अपुनर्भव सुख को पाते है कर निर्वाण वधू सुख प्राप्त।
योग भक्ति से ही जिनपति भी हो जाते हैं निजपति आप्त॥

तत्व शक्ति तद्रूप भवन मयता स्वरूप परिणमन स्वतंत्र।
इसी शक्ति से चेतन चेतन रहता कभी न हो परतंत्र ॥

नय पक्षो का नाश, तत्त्व वेदी करता क्षय विकल्प जाल।
मात्र आत्म अनुभूति प्राप्त कर होजाता है परम विशाल॥
भव भय करने वाले बाह्यान्तर जल्पो का करो अभाव।
समता रस मय ज्ञान ज्योति का अभ्यतर मे लाओ भाव॥
धर्म शुक्ल ध्यानामृत रूपी सम रस में सुस्नान करो ।
बहिरात्मा अरु अन्तरात्मा के विकल्प अवसान करो ॥
दर्शन मोह चारित्र मोह क्षय करो अतुल महिमा पाओ ।
मुक्ति मूल चरित्र पुज से महा मुक्ति पद प्रगटाओ ॥
भव भय नाशक आत्म बुद्धि निर्मल श्रद्धा से ओत प्रोत।
सम्यक् मुक्ति मार्ग ये ही है शाश्वत सुख का पावन स्रोत॥

ॐ ह्री समयप्राभृतग्रन्थे आस्रवाधिकारे कलशस्वरूपनिरास्रवस्वरूपाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

आशीर्वाद

आस्रव भाव अभाव कर करूँ न कोई बध ।
फिर कर्मो को नष्ट कर हो जाऊँ निर्बंध ॥

इत्याशीर्वादः

मैं परभाव से भिन्न हूं पूर्ण ज्ञानी । मै निजभाव से हूं अभिन्न स्वध्यानी ॥
न संकल्प मन में न है जल्प मन में । मै अविकल्प हू मौन है पूर्ण वाणी ॥
स्वभावों को भूला तो दुख ही मिला है । मैंने चार गतियों की ही धूल छानी ॥
समय आगया है निजातम को निरखूं । यही एक मेरे लिए सौख्य दानी ॥

अतद्रूपमय भवन रूप है शक्ति अतत्व आत्मा की ।
चेतन जड होता न कभी भी महिमा सब निजात्मा की ॥

संवर अधिकार पूजन

स्थापना

छंद-सखान सवैया

राग नहीं है द्वेष नही है सवर का ही चमत्कार है ।
जिसे मुक्ति पाना है उसके मन मे केवल यह विचार है॥
पूर्ण अखड अभेद आत्मा का स्वामी है निर्विकार है ।
उसे पता है सर्व विभावों से विहीन ससार पार है ॥
इसीलिए सवर को सग ले बढता जाता है शिव पथपर।
जिनशासन से युक्त सदा रहता है सयम के ही रथ पर॥

ॐ ह्रीं सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्।
ॐ ह्री सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थपानं।
ॐ ह्रीं सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद-गीत

राग को हमने हटाया तो बुरा मान गए ।
ज्ञान को हमने बुलाया तो बुरा सुना गए ॥
शुद्ध सवर की पवन हमने आज पायी है ।
आस्रव भाव की बिनमौत मौत आयी है ॥

ॐ ह्रीं संवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

विद्यमान पर्याय अवस्था रूप मय पना जिसका काम ।
भाव शक्ति परिणमन कर रही ज्ञानी मे निर्मल परिणाम॥

मोह परिवार है दुश्मन ये हम तो जान गए ।
इसलिए मोह के परिवार बुरा मान गए ॥
शुद्ध संवर की पवन हमने आज पायी है ।
आस्रव भाव की बिनमौत मौत आयी है ॥

ॐ ह्री सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय ससार ताप विनाशनाय चदन नि ।

कष्ट मिथ्यात्व ने दिया है हम ये जान गए ।
हम न बहके तो सभी दुष्ट बुरा मान गए ॥
शुद्ध सवर की पवन हमने आज पायी है ।
आस्रव भाव की बिनमौत मौत आयी है ॥

ॐ ह्री सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत नि ।

स्वर्ग का सुख भी है दुख रूप आज जान गए ।
जितने है स्वर्ग सभी हम से बुरा मान गए ॥
शुद्ध सवर की पवन हमने आज पायी है ।
आस्रव भाव की बिनमौत मौत आयी है ॥

ॐ ह्री सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि ।

अपना परिणाम शुद्ध ज्ञान मात्र जान गए ।
खोटे परिणाम तो रो रो के बुरा मान गए ॥
शुद्ध सवर की पवन हमने आज पायी है ।
आस्रव भाव की बिनमौत मौत आयी है ॥

ॐ ह्री सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि ।

पंच बंधो को तोडना है आज जान गए ॥
इसलिए पाचो ही मिथ्यात्व बुरा मान गए ।
शुद्ध सवर की पवन हमने आज पायी है ।
आस्रव भाव की बिनमौत मौत आयी है ॥

ॐ ह्री सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय मोहन्धकार विनाशनाय दीप नि ।

जितने हैं कर्म सभी दुखमयी ये जान गए ।
इसलिए कर्म आठ हमसे बुरा मान गए ।
शुद्ध सवर की पवन हमने आज पायी है ।
आस्रव भाव की बिनमौत मौत आयी है ॥

ॐ ह्रीं सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

अपना उद्देश मोक्ष प्राप्ति का ये जान गए ।
इसलिए बध सभी व्यर्थ बुरा मान गए ॥
शुद्ध सवर की पवन हमने आज पायी है ।
आस्रव भाव की बिनमौत मौत आयी है ॥

ॐ ह्री सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

अर्घ्य जितने सभी ये भवमयी हैं जान गए ।
देखकर पद अनर्घ्य, को ये बुरा मान गए ॥
शुद्ध संवर की पवन हमने आज पायी है ।
आस्रव भाव की बिनमौत मौत आयी है ॥

ॐ ह्रीं सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

वर्त्तमान पर्याय भावमय दूजे समय अभावमयी ।
भाव अभाव शक्ति की महिमा है चैतन्य स्वभावमयी ॥

अर्घ्यावलि

(संवर अधिकार)

(१२५)

प्रथम टीकाकार आचार्यदेव कहते हैं कि 'अब सवर प्रवेश करता है।' आस्रव के रंगभूमि मे से बाहर निकल जाने के बाद अब सवर रगभूमि मे प्रवेश करता है । यहा पहले टीकाकार आचार्यदेव सर्व स्वॉग को जानने वाले सम्यक्ज्ञान की महिमादर्शक मगलाचरण करते हैं -

शार्दूल विक्रीडित

आसंसारविरोधिसंवरजयैकांतावलिप्तास्रव-
न्यक्कारात्प्रतिलब्धनित्यविजयं संपादयत्संवरम् ।
व्यावृत्तं पररूपतो नियमितं सम्यक्स्वस्वरूपेस्फुर-
ज्ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते ॥१२५॥

अर्थ- अनादि ससार से लेकर अपने विरोधी सवर को जीतने से जो एकान्त गर्वित हुआ है ऐसे आस्रव का तिरस्कार करने से जिसने सदा विजय प्राप्त की है ऐसे सवर को उत्पन्न करती हुई, पररूप से भिन्न अपने सम्यक् स्वरूप मे निश्चलता से प्रकाश करती हुई, चिन्मय, उज्ज्वल और निजरस के भार से युक्त-अतिशयता से युक्त ज्योति प्रगट होती है, प्रसारित होती है ॥१२५॥

१२५ ॐ ह्री चिन्मयज्योतिस्वरूपाय नम ।

निराबाधोऽहं ।

ताटंक

जो अनादि से सदा विरोधी संवर को ही जय करता ।
उस आस्रव का तिरस्कार तो यह केवल सवर करता॥
सवर ज्योति प्रगट होती है आस्रव को जय करने पर ।
चिन्मय उज्ज्वल निरावरण निर्मल दैदीप्यमान शिवकर॥

विद्यमान पर्याय व्यय हुई उदय हुई दूजी पर्याय ।
एक अभाव शक्ति है दूजी भाव शक्ति है ज्ञान प्रदाय ॥

निज चैतन्य स्वरस पाते ही ज्ञान ज्योति प्रसरित होती।
आस्रव का यह क्षय करती है बध नहीं होते देती ॥
समयसाररस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना ही भाऊं ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा सवर भाव हृदय लाऊ ॥१२५॥

ॐ ह्रीं सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शासस्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१२६)

अब इसी अर्थ को कलशरूप काव्य कहते है -

शार्दूल विक्रीडित

चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतो: कृत्वा विभागं द्वयो-
रन्तर्दारुण परितो ज्ञानस्य रागस्य च ।
भेदज्ञानमुदेति निर्मलमिदं मोदध्यमध्यासिता:
शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना संतो द्वितीयच्युता: ॥१२६॥

अर्थ- चिद्रूपता को धारण करने वाला ज्ञान और जडरूपता को धारण करने वाला राग-दोनो का अन्तरग मे दारुण विदारण के द्वारा सभी ओर से विभाग करके यह भेदज्ञान उदय का प्राप्त हुआ है, इसलिए अब नर्मल एक शुद्धविज्ञानघन के पुज्ज में स्थित और अन्य से अर्थात राग से रहित हे सत्पुरुषो! मुदित हौओ ॥१२६॥

१२६ ॐ ह्री शुद्धज्ञानघनौघस्वरूपाय नम ।

निर्मलबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरंछद

चिद्रूपता धारने वाला ज्ञान और जड धारक राग ।
अतरंग में किया विदारण हुआ राग से पूर्ण विराग ॥
भेद ज्ञान हो गया उदित्त अति निर्मल शुद्ध भाव जागा।
एक शुद्ध विज्ञान ज्ञानघनपुंज देख भ्रम तम भागा ॥
इसे प्राप्त कर हे सत्पुरुषो मुदित बनो पुलकित हो लो।
भेद ज्ञान की महा ज्योति से आस्रव के तम को धो लो॥

वर्त्तमान पर्याय भावमय भवनरूप प्रतिसमय नयी ।
भावभाव शक्ति की महिमा ज्ञानमयी त्रैलोक्य जयी ॥

समयसाररस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना ही भाऊ ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा सवर भाव हृदय लाऊ ॥१२६॥

ॐ ह्री सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शासस्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१२७)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

मालिनी

यदि कथमपि धारावाहिना बोधनेन
ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते ।
तदयमुदयदात्मारामात्मानमात्मा
परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥१२७॥

अर्थ-यदि किसी भी प्रकार से धारावाही ज्ञान से शुद्ध आत्मा को निश्चलतया अनुभव किया करे तो यह आत्मा, जिसका आत्मानन्द प्रगट होता जाता है ऐसे आत्मा को परपरिणति के निरोध से शुद्ध ही प्राप्त करता है ।

१२७ ॐ ह्रीं ध्रुवशुद्धज्ञानस्वरूपाय नम

नित्यबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटक

कैसे भी हो धारावाही ज्ञान भाव का अनुभव कर ।
निश्चलता से निजानद सागर मे ही अवगाहन कर ॥
पर परिणति के निरोध पूर्वक शुद्ध आत्मा कर ले प्राप्त।
निज अनुभव रस निर्झर पाले शुद्ध तरगे कर उर व्याप्त॥
समयसाररस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना ही भाऊ ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा सवर भाव हृदय लाऊ ॥१२७॥

ॐ ह्रीं सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शासस्त्राय अर्घ्यं नि ।

राग विभाव अभाव सर्वथा आगे भी है सदा अभाव ।
शक्ति अभाव जीव की उज्ज्वल धवलोज्ज्वल चैतन्य स्वभाव ॥

(१२८)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

मालिनी

निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या
भवति नियतमेषां शुद्धतत्त्वोपलंभः ।
अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरेस्थितानां
भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः ॥१२८॥

अर्थ- जो भेदविज्ञान की शक्ति के द्वारा अपनी महिमा मे लीन रहते हैं उन्हे नियम से शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि होती है, शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि होने पर, अचलित रूप से समस्त अन्य द्रव्यो से दूर वर्तते हुवे ऐसे उनके, अक्षय कर्ममोक्ष होता है ॥१२८॥

१२८ ॐ ह्री अक्षयसौख्यस्वरूपाय नम ।

सौख्यार्णस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

निज स्वरूप की महिमा मे जो भेद ज्ञान कर रहते लीन।
कर्म तथा नो कर्मो से हो भिन्न पूर्ण होते स्वाधीन ॥
दर्शन ज्ञान मयी आत्मा का सतत निरतर रहता ध्यान।
पर द्रव्यो का उल्लघन कर पाते हैं शाश्वत निर्वाण ॥
समयसाररस कलश प्राप्त कर ज्ञान भावना ही भाऊ ।
अमृतचद्राचार्य कृपा पा सवर भाव हृदय लाऊं॥१२८॥

ॐ ह्रीं सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शासस्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१२९)

सवर होने के क्रम मे सवर का पहला ही कारण भेदविज्ञान कहा है अब उसकी भावना के उपदेश का काव्य कहते हैं -

कर्त्ता कर्म क्रियादि कारकों से जो विरहित भवन स्वरूप।
भाव शक्ति चेतन की अद्‌भुत है त्रिकाल अविकल्प स्वरूप॥

उपजाति

संपद्यते संवर एष साक्षा-
च्छुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलंभात् ।
स भेदविज्ञानत एव तस्मात्
तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम् ॥१२९॥

अर्थ- यह साक्षात् सवर वास्तव मे शुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि से होता है और वह शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि भेदविज्ञान से ही होती है । इसलिये वह भेदविज्ञान अत्यन्त भाने योग्य है ।

१२९ ॐ ह्री निजशुद्धात्मस्वरूपाय नम ।

शुद्धबोधधनस्वरूपोऽहं ।

ताटक

आत्म तत्त्व उपलब्धि पूर्वक साक्षात् सवर होता ।
आत्म तत्त्व का दर्शन केवल भेद ज्ञान से ही होता ॥
अत भेद विज्ञान सदा ही भाने अनुभव करने योग्य ।
आस्रवभाव जीतना है तो तज दे सारे भाव अयोग्य ॥
समयसार रस कलश पान कर अपरिग्रही अनिच्छुक बन ।
सवर भाव जाग्रत करके आस्रव का कर त्वरित हनन॥१२९॥

ॐ ह्रीं सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शासस्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१३०)

अब, काव्य द्वारा यह बतलाते हैं कि भेदविज्ञान कहा तक भाना चाहिये ।

अनुष्टुप्

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमिच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥१३०॥

अर्थ- यह भेदविज्ञान अच्छिन्न-धारा से तब तक भाना चहिये जब तक परभावो से छूटकर ज्ञान ज्ञान मे ही स्थिर हो जाये ।

क्रिया शक्ति से ज्ञान क्रिया ही करता रहता है ज्ञायक ।
राग क्रिया से सदा दूर रह हो जाता त्रिभुवन नायक ॥

१३० ॐ ह्रीं अखण्डज्ञानप्रकाशस्वरूपाय नमः।

सदावबोधरविस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

भेद ज्ञान की अच्छिन्न धारा बिन विच्छेद सदा ही भा ।
परभावों से छूट जाएगा ज्ञान भाव में हर्षित जा ॥
समयसार रस कलश पान कर अपरिग्रही अनिच्छुक बन ।
सवर भाव जाग्रत करके आस्रव का कर त्वरित हनन॥१३०॥

ॐ ह्रीं सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शासस्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१३१)

अब पुन भेंदविज्ञान की महिमा बतलाते हैं -

अनुष्टुप

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धाः ये किल केचन ।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥१३१॥

अर्थ- जो कोई सिद्ध हुए हैं वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं , और जो कोई बँधे हैं वे उसके अभाव से बँधे हैं ॥१३१॥

१३१ ॐ ह्रीं नित्यज्ञानवीर्यस्वरूपाय नम।

अपूर्वज्ञानस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो भी सिद्ध हुए हैं अब तक भेद ज्ञान से सिद्ध हुए ।
जो भी बधे भेदज्ञान के ही अभाव में विद्ध हुए ॥
भेदज्ञान बिन कोई भी तो नहीं हुआ है अब तक सिद्ध।
और न आगे होने वाला रहने वाले सभी असिद्ध ॥
समयसार रस कलश पान कर अपरिग्रही अनिच्छुक बन ।
संवर भाव जाग्रत करके आस्रव का कर त्वरित हनन॥१३१॥

ॐ ह्रीं संवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शासस्त्राय अर्घ्यं नि. ।

कर्म शक्ति चेतन की अपनी सिद्ध रूप भावों का स्रोत ।
दर्शनज्ञान चरित्र मयी पर्यायो से है ओत प्रोत ॥

(१३२)

अब, सवर अधिकार पूर्ण करते हुए, सवर होने से जो ज्ञान हुआ उस ज्ञान की महिमा का काव्य कहते हैं -

मंदाक्रान्ता

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलंभा-
द्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण ।
बिभ्रत्तोष परमममलालोकमम्लानमेकं
ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत् ॥१३२॥

अर्थ- भेदज्ञान प्रगट करने के अभ्यास से शुद्ध तत्व की उपलब्धि हुई, शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि से राग समूह का बिलय हुआ, राग समूह के विलय करने से कर्मो का सवर हुआ और कर्मों का सवर होने से, ज्ञान मे ही निश्चल हुआ ऐसा यह ज्ञान उदय को प्राप्त हुआ- कि जो ज्ञान परम सतोष को धारण करता है, जिसका प्रकाश निर्मल है जो अम्लान है , जो एक है और जिसका उद्योत शाश्वत है ॥१३२॥

टीका- इस प्रकार सवर बाहर निकल गया । भावार्थ- रगभूमि मे सवर का स्वाग आया था उसे ज्ञान ने जान लिया इसलिये वह नृत्य करके बाहर निकल गया ।

१३२ ॐ ह्री रागग्रामरहितशाश्वतोद्योतरूपज्ञानस्वरूपाय नम ।

अमलानंदस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

भेद ज्ञान अभ्यास पूर्वक शुद्ध तत्त्व उपलब्धि हुई ।
शुद्ध तत्त्व उपलब्धि हुई तो रागो की मति दग्ध हुई ॥
रागो की मति दग्ध हुई तो कर्मो का सवर पाया ।
निश्चल निर्मल परम, सौख्य बल उज्ज्वल ज्ञान हृदय आया॥
ज्ञान परम सतोष धारता अमल प्रकाश प्राप्त निर्मल ।
लोकालोक जानता सारा रंच नहीं है वह निर्बल ॥

सिद्ध रूप भावना सु भावकपना मयी कर्तृत्व अनूप ।
कर्तृ शक्ति का ठाठ निराला निज स्वरूप के ही अनुरूप॥

जो क्षयोपशम भेद अभी था वह भी अब है नहीं कहीं ।
शाश्वत अविनश्वर प्रकाश उद्योतित है कुछ राग नहीं ॥
समयसार रस कलश पान कर अपरिग्रही अनिच्छुक बन ।
सवर भाव जाग्रत करके आस्रव का कर त्वरित हनन॥१३२॥

ॐ ह्री सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

महाअंर्घ्य

गीत

विभावों के महलो को गिन गिन अभी ।
धडाधड धडाधड गिराओ सभी ॥
नहीं इनकी छाया भी बाकी रहे ।
परम ज्ञान रवि से उडाओ सभी ॥
अगर उनके चक्कर मे फिर आओगे ।
सदा को ही फिर दुख उठाओ सभी ॥
कही मान लो तुम हमारी जिया ।
स्वभावो को उर से लगाओ अभी ॥
नही छोडना दुष्ट मिथ्यात्व को ।
इसे पूर्ण बल से मिटाओ अभी ॥
परम शुद्ध सवर तुम्हारा है मित्र ।
इसे लेके आस्रव भगाओ सभी ॥

ॐ ह्रीं सवर अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय महाअर्घ्य नि ।

जयमाला

वीरछंद

निज वैभव एकत्व पास हैं फिर क्यो करूं पराई आस।
पर से सदा विभक्त तत्त्व हू मुझको है यह दृढ विश्वास॥
'वदित्तु सव्वसिद्धे' की ध्वनि सुन पवित्र हो जाता हू।
मैं भी सिद्ध समान त्रिकाली अतरंग में ध्याता हूं ॥

साधक साधनपनामयी है करण शक्ति प्रतिसमय प्रसिद्ध।
ज्ञायक गुणी स्वभाव वान है करण शक्ति से होता सिद्ध॥

वस्तु शुद्ध कल्याणमयी है इसका ही आता बहुमान ।
गुण अनत का सागर हू मै शक्ति अनतानत महान ॥
अब बोलो किसका आश्रय लू बोलो किसके जोड़ूँ हाथ।
ध्रुव त्रिकाल ज्ञायक हू पावन कैसे इसका छोड़ू साथ ॥
व्यवहारी जन समझ न पाते तो इसमे मेरा क्या दोष ।
मै निश्चय भूतार्थ आत्मा पूर्णतया ही हू निर्दोष ॥
कर्म प्रकृतियो का बधन भी मुझमे होता कभी नहीं ।
मै स्वतत्र सत्ता का स्वामी मुझमे कोई राग नही ॥
मै ही तो प्रभु सवर पति हू आस्रव रहित महान स्वतत्त्व।
बध आदि से सदा रहित हू मेरा आत्म स्वरूप समत्व ॥

ॐ ह्री समयसारप्राभृतग्रन्थे सवराधिकारे कलशस्वरूपनिज ज्ञानानदस्वरूपाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

आशीर्वाद :

सवर का सबल मिले आस्रव करू अभाव ।
निज स्वभाव की शक्ति से पाऊ शुद्ध स्वभाव॥

इत्याशीर्वाद :

जो जमता है अपने भीतर । जो थमता है अपने भीतर ॥
वही मुक्ति पथ पाता है । वही मोक्ष में जाता है ॥
जो जमता है परके द्वारे । वह थमता संसार किनारे है ॥
वह भव के दुख पाता है । चारों गति में जाता है ॥

लेने देने वाला पात्र स्वयं ही शुद्ध स्वभावी है ।
संप्रदान की शक्ति भरी है साम्यभाव समभावी है ॥

निर्जरा अधिकार पूजन

स्थापना

पंच चामर

स्वरूप में हो सावधान आत्म ध्यान कर ।
चरित्र मे हो सावधान आत्म भान कर ॥
संयमी होकर महान आत्म ज्ञान कर ।
कर्म अष्ट पूर्ण अब अवसान कर ॥
निज स्वभाव शक्ति से निज वितान पर ।
निर्विकल्प निर्जरा का निज विहान वर ॥

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अत्र अवतर अवतर सवौषट् ।

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन ।

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

माधव मालती

स्व पर ज्ञान अगर मिला है तो उसे मत भूल जाना ।
एक क्षण को भी कभी निज के नहीं प्रतिकूल जाना ॥
निर्जरा के गीत गाकर निर्जरा को ही नचाना ।
पूर्व बध विनाश करके मुक्ति सुख उर में सजाना ॥

हानि नाश से हानि न पाता अपादान की है ध्रुव शक्ति ।
आलिगित उत्पाद व्ययों से सदा ध्रौव्य से है सयुक्त ॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

प्रथम समकित प्राप्त कर आत्म तत्त्व प्रतीत लाना ।
आत्म तत्त्व स्वरूप निर्णय कर सदा अनुकूल जाना ॥
निर्जरा के गीत गाकर निर्जरा को ही नचाना ।
पूर्व बध विनाश करके मुक्ति सुख उर मे सजाना ॥

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

भक्ति रत्नत्रय ह्रदय मे पूर्ण ही अनुकूल लाना ।
षषम सप्तम गुण स्थानो मे सहज ही झूल जाना ॥
निर्जरा के गीत गाकर निर्जरा को ही नचाना ।
पूर्व बध विनाश करके मुक्ति सुख उर मे सजाना ॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत नि ।

गुण स्थानों से न गिरना अधोगति मत कभी पाना ।
शीघ्र चढना सतत उपर मुक्ति सुख के फूल लाना ॥
निर्जरा के गीत गाकर निर्जरा को ही नचाना ।
पूर्व बध विनाश करके मुक्ति सुख उर मे सजाना ॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि ।

जब तुम्हारे ह्रदय मे निज आत्मा की प्रीति जागे ।
चले आना शीघ्र समकित के किनारे मोह भागे ॥
निर्जरा के गीत गाकर निर्जरा को ही नचाना ।
पूर्व बंध विनाश करके मुक्ति सुख उर में सजाना ॥

भाव्यमान भावनाधार है शक्ति अधिकरण बलशाली ।
चेतन का आधार स्वचेतन पर से पृथक ध्रौव्य लाली ॥

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

आत्मा पर दया करना चलाना तुम मत दुधारे ।
सिद्ध पद लेना सजग हो भव समुद्र विनाश खारे ॥
निर्जरा के गीत गाकर निर्जरा को ही नचाना ।
पूर्व बध विनाश करके मुक्ति सुख उर मे सजाना ॥

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय मोहन्धकार विनाशनाय दीप नि ।

जलाकर ध्यानाग्नि पूरी कर्म वसु पूरे जलाना ।
शीघ्र निज शुद्धात्मा का ध्यान ही तुम नित लगाना ॥
निर्जरा के गीत गाकर निर्जरा को ही नचाना ।
पूर्व बध विनाश करके मुक्ति सुख उर मे सजाना ॥

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

मोह के क्षय हेतु अब तो पूर्ण श्रद्धा उर जगाना ।
मोक्षफल की प्राप्ति के हित ज्ञान के तरु ही लगाना ॥
निर्जरा के गीत गाकर निर्जरा को ही नचाना ।
पूर्व बंध विनाश करके मुक्ति सुख उर मे सजाना ॥

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि ।

अर्घ्य भवमय मत चढाना पद अनर्घ्य तुम्हे मिलेगा ।
आत्म अबुज ज्ञान रवि पा स्वत. ही पूरा खिलेगा ॥
निर्जरा के गीत गाकर निर्जरा को ही नचाना ।
पूर्व बध विनाश करके मुक्ति सुख उर में सजाना ॥

स्वस्वामित्त्व मय ही स्वभाव है स्वस्वामित्त्व मय ही संबंध।
कोई नहीं किसी का स्वामी अत: जीव है सदा अबंध ॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

अर्घ्यवलि

(श्री निर्जरा अधिकार)

(१३३)

अब, सर्व स्वॉग को यथार्थ जानने वाले सम्यक्ज्ञान को मगलरूप जानकर आचार्यदेव मंगल के लिए प्रथम उसी-निर्मल ज्ञानज्योति को ही प्रगट करते हैं --

शार्दूल विक्रीड़ित

रागाद्यास्रवरोधतो निजधुरां धृत्वा परः संवरः
कर्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुंधन् स्थितः ।
प्राग्बद्धं तु तदेव दग्धुमधुना व्याजृम्भते निर्जरा
ज्ञानज्योतिरपावृंत न हि यतो परागादिभिर्मूर्छति ॥१३३॥

अर्थ- परम सवर, रागादि आस्रवो को रोकने से अपनी कार्य-धुरा को धारण करके समस्त आगामी कर्म को अत्यन्ततया दूर से ही रोकता हुआ खडा है , और पूर्वबद्ध कर्म को जलाने के लिये अब निर्जरा फैल रही है जिससे ज्ञानज्योति निरावरण होती हुई रागादिभावों के द्वारा मूर्च्छित नहीं होती-सदा अमूर्च्छित रहती है ॥१३३॥

१३३. ॐ ह्रीं रागादिमूर्च्छारहितनिर्ममत्वरूपाय नम ।

ज्ञानज्योतिस्वरूपोऽहं ।

गीतिका

परम सवर सर्व आस्रव रोकता है भली भाति ।
निज धुरा को धारता है प्राप्त करता पूर्ण कांति ॥
बद्ध कर्मो को जलाने निर्जरा होती प्रगट ।
राग में ना मूर्छित अब राग भाव हुए विघट ॥

सैंतालीस शक्तियाँ अद्भुत है प्रत्येक जीव के पास ।
शक्ति अनंतों का स्वामी चैतन्य राज कर निज में वास॥

समयसार महान के ऊपर चढ़ाने कलश आज ।
स्व पर ज्ञान करूं प्रभो मैं सिद्ध हो अब मोक्ष काज॥१३३॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१३४)

अब आगामी गाथाओं की सूचना के रूप में श्लोक कहते हैं -

तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्य विरागस्यैव वा किल ।
यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुंजानोऽपि न बध्यते ॥१३४॥

अर्थ- वास्तव मे वह सामर्थ्य ज्ञान की ही है अथवा विराग की ही है कि कोई कर्मों को भोगता हुआ भी कर्मों से नहीं बँधता । ॥१३४॥

१३४ ॐ ह्रीं ज्ञानविरागस्वरूपाय नम ।

ज्ञानानंदधामस्वरूपोऽहं ।

गीतिका

वास्तव मे ज्ञान ध्यान विराग की सामर्थ्य है ।
भोगता है कर्म ज्ञानी पर न बंधता सत्य है ॥
देखकर आश्चर्य करता मूढ़ अज्ञानी सदा ।
किन्तु ज्ञानी ज्ञान मे निर्भीक रहता सर्वदा ॥
स्वानुभूति महान हो तो परम सुख भंडार है ।
समयसार स्व रस कलश ही परम भाव अपार है ॥
समयसार महान के ऊपर चढ़ाने कलश आज ।
स्व पर ज्ञान करूं प्रभो मैं सिद्ध हो अब मोक्ष काज॥१३४॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१३५)

अब इस अर्थ का और आगामी गाथा के अर्थ का सूचक काव्य कहते हैं

सिद्धो के सम नित्य निरंजन मेरी आत्मा सिद्धस्वरूप ।
सिद्धों के सम मेरी आत्मा सदा शुद्ध कृतकृत्यस्वरूप ॥

रथोद्धता

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत्

स्वं फलं विषयसेवनस्य ना ।

ज्ञानवैभवविरागताबलात्

सेवकोऽपि तदसावसेवकः ॥१३५॥

अर्थ क्योकि यह पुरुष विषय सेवन करता हुआ भी ज्ञानवैभव और विरागता के बल से विषय सेवन के निजफल को नही भोगता-प्राप्त नही होता, इसलिये यह सेवक होने पर भी असेवक है ।

१३५ ॐ ह्री विषयसेवनरहितपरिपूर्णज्ञानस्वरूपाय नम ।

ज्ञानवैभवस्वरूपोऽहं ।

गीतिका

विषय सेवन करे ज्ञानी भोगता पर फल नही ।
ज्ञान वैभव बल विराग महान है उर मे सही ॥
देखने मे लगे सेवक पर असेवक है सदा ।
किसी भी परिणाम का फल नही पाता सर्वदा ॥
समयसार महान के ऊपर चढाने कलश आज ।
स्व पर ज्ञान करू प्रभो मै सिद्ध हो अब मोक्ष काज॥१३५॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१३६)

अब आगे की गाथाओ का सूचक काव्य कहते हैं-

मंदाक्रान्ता

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः

स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या।

यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च

स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ॥१३६॥

तीर्थंकर सम पच महाकल्याणाकित है मेरा रूप ।
अरहंतों सम मेरी आत्मा परम अनत चतुष्टय रूप ॥

अर्थ- सम्यक्दृष्टि के नियम से ज्ञान और वैराग्य की शक्ति होती है; क्योंकि वह स्वरूप का ग्रहण और परका त्याग करने की विधि के द्वारा अपने वस्तुत्व का अभ्यास करने के लिए, ' यह स्व है और यह पर है' इस भेद को परमार्थ से जानकर स्व मे स्थिर होता है और पर से राग के योग से सर्वत विरमता है । यह रीति ज्ञानवैराग्य की शक्ति के बिना नहीं हो सकती ॥१३६॥

१३६ ॐ ह्री सर्वरागयोगरहितनीरागस्वरूपाय नम ।

ज्ञानैश्वर्यसंपन्नोऽहं ।

गीतिका

नियम से सम दृष्टि को है ज्ञान ध्यान विराग बल ।
निज स्वरूप ग्रहण है अरु त्याग पर का है प्रबल ॥
भेद पर का और निज का जानता परमार्थ से ।
राग योगो से विरम है स्व मे थिर भूतार्थ से ॥
समयसार महान के ऊपर चढाने कलश आज ।
स्व पर ज्ञान करू प्रभो मै सिद्ध हो अब मोक्ष काज़॥१३६॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१३७)

'जो जीव परद्रव्य में आसक्त-रागी हैं और सम्यग्दृष्टित्व का अभिमान करते हैं वे सम्यग्दृष्टि नहीं हैं, वे वृथा अभिमान करते है' इस अर्थ का कलशरूप काव्य अब कहते है -

मंदाक्रान्ता

सम्यग्दृष्टि: स्वयमयमहं जातु बंधो न में स्या-
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु ।
आलंबंतां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा ।
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वरिक्ता: ॥१३७॥

एकद्रव्यमयपने रूप पर्याय अनेको मे व्यापक ।
ऐसी है एकत्व शक्ति यह अनेकत्त्व की परिचायक ॥

अर्थ- ' यह मैं स्वय सम्यग्दृष्टि हूँ, मुझे कभी बन्ध नहीं होता ऐसा मानकर जिनका मुख गर्व से ऊँचा और पुलकित हो रहा है ऐसे रागी जीव भले ही महाव्रतादि का आचरण करे तथा समितियों की उत्कृष्टता का आलम्बन करें तथापि वे पापी ही हैं, क्योकि वे आत्मा और अनात्मा के ज्ञान से रहित होने से सम्यक्त्व से रहित हैं ॥१३७॥

१३७ ॐ ह्रीं पापकर्मरहितनिष्पापस्वरूपाय नम ।

अनघज्ञानस्वरूपोऽहं ।

गीतिका

सुन जरा हे अध प्राणी राग मे क्यो सदा मत्त ।
जग रहा तू मध्य जिस पद वह न पद है है अपद ॥
अनादि ससार की पर्याय उस पर्याय मे ।
मूढ़ बनकर विचरता है फॅसा भव दुख दाय मे ॥
अरे बस हो अरे बस हो अब स्वपद का ज्ञान कर ।
शुद्ध निज चैतन्य धातु महान का ही भान कर ॥
स्वरस पूरित शाश्वत भावत्व को अब प्राप्त हो ।
भिन्न हो पर द्रव्य सबसे सौख्य ध्रुव उर व्याप्त हो ॥
समयसार महान के ऊपर चढ़ाने कलश आज ।
स्व पर ज्ञान करू प्रभो मै सिद्ध प्रभु मोक्ष गज ॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१३८)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं, जिस काव्य के द्वारा आचार्यदेव अनादिकाल से रागादिको अपना पद जानकर सोये हुए रागी प्राणियों को उपदेश देते हैं -

मंदाक्रान्ता

आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ता :
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमंधा: ।

है अनेक पर्यायमयपना एक द्रव्य से व्यापक जो ।
अनेकत्व की शक्ति प्रभावी ज्ञान स्वरूप नियामक जो ॥

एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति ॥१३८॥

अर्थ- हे अन्ध प्राणियों । अनादि ससार से लेकर पर्याय , पर्याय में यह रागी जीव सदा मत्त वर्तते हुए जिस पद मे सो रहे हैं वह पद अर्थात् स्थान अपद है-अपद है, ऐसा तुम समझो । इस ओर आओ-इस ओर आओ, तुम्हारा पद यह है-यह है, शुद्ध-शुद्ध चैतन्यधातु निज रसकी अतिशयता के कारणस्थायी भावत्व को प्राप्त है जहाँ अर्थात् स्थिर है-अविनाशी है ॥१३८॥

१३८ ॐ ह्रीं शुद्धचैतन्यरसस्वरूपाय नम ।

शुद्धचैतन्यधातुस्वरूपोऽहं ।

गीतिका

शयन जिस पद मे किया है वह तुम्हारा पद नहीं ।
स्वपद तो चैतन्य धातुमयी है वह जड नहीं ॥
अतरग विकार विरहित शुद्ध ध्रुव शाश्वत महान ।
उसी पद को प्राप्त कर लो वही है चैतन्य प्राण ॥
समयसार महान के ऊपर चढ़ाने कलश आज ।
स्व पर ज्ञान करू प्रभो मै सिद्ध हो अब मोक्ष काज॥१३८॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१३९)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

अनुष्टुप

एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम् ।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः ॥१३९॥

अर्थ- वह एक ही पद आस्वादन के योग्य है जो कि विपत्तियों का अपद है और जिसके आगे अन्य पद अपद ही भासित होते हैं ॥१३९॥

अरहंतों सम है अनत अतिशय से शोभित मेरा रूप ।
सिद्धों सम शुद्ध आत्मा मेरी स्वात्मोपलब्धि स्वरूप ॥

१३९ ॐ ह्रीं विपद स्वरूपापदरहितनिजगुणसपत्स्वरूपाय नम ।

आत्मवैभवस्वरूपोऽहं ।

गीतिका

एक निज पद आस्वादन योग्य है यह मान ले ।
किन्तु पर पद तो अपद है आपदा है जान ले ॥
आत्म अनुभव के बिना जिन धर्म होता ही नहीं ।
ज्ञान का तो स्वाद पलभर तनिक आता ही नही ॥
ज्ञान पद ही आत्मा का है उसे ही प्राप्त कर ।
अतरग अपूर्व रसमय उसे उसमे व्याप्त कर ॥
समयसार महान के ऊपर चढाने कलश आज ।
स्व पर ज्ञान करू प्रभो मै सिद्ध हो अब मोक्ष काज॥१३९॥

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१४०)

अब यहॉ कहते हैं कि जब आत्मा ज्ञान का अनुभव करता है तब इस प्रकार करता है -

यहॉ यह प्रश्न होता है कि छद्मस्थ को पूर्णरूप केवलज्ञान का स्वाद कैसे आवे? इसका उत्तर पहले शुद्धनयका कथन करते हुए दिया जा चुका है कि शुद्धनय आत्मा का शुद्ध पूर्ण स्वरूप बतलाता है इसलिये शुद्धनय के द्वारा पूर्णरूप केवलज्ञान का परीक्ष स्वाद आता है॥१४०॥

एक ज्ञायक भावनिर्भर महास्वादं समासादयन् ।
स्वादं द्वन्दमयं विधातु मसह: स्वां वस्तुवृत्तिं विदन् ।
आत्मात्मानुभवानुभावविवशो भ्रश्यद्विशेषोदयं
सामान्यं कलयन् किलैष सकलं ज्ञानं नयत्येकताम् ॥१४०॥

सिद्धों सम क्षायिक सम्यक दर्शन मय हूँ कैवल्यस्वरूप ।
सिद्धों सम है मेरी आत्मा पूर्ण शुद्ध सुस्मरण स्वरूप ॥

अर्थ-- एक ज्ञायक भावसे भरे हुए महास्वाद को लेता हुआ, द्वन्द्वमय स्वाद के लेने में असमर्थ आत्मानुभव के-स्वाद के- प्रभाव के आधीन होने से निज वस्तुवृत्ति को जानता आस्वाद लेता हुआ यह आत्मा ज्ञान के विशेषो के उदय को गौण करता हुआ, सामान्य मात्र ज्ञान का अभ्यास करता हुआ, सकल ज्ञान को एकत्व मे लाता है-एकरूप मे प्राप्त करता है ॥१४०॥

१४० ॐ ह्री एकज्ञायकनिर्भरस्वरूपाय नम.।

बोधरससंपन्नोऽहं ।

गीतिका

एक ज्ञायक भाव निर्झर महा स्वाद महान ले ।
द्वदमय पर स्वाद मे असमर्थ ज्ञान स्व जान ले ॥
आत्म अनुभव स्वपद ही निज वस्तु वृत्ति सुजान कर ।
ज्ञान के अभ्यास से निज ज्ञान में एकत्व कर ॥
ज्ञान के भी भेद हैं जो गौण हो जाते त्वरित ।
ज्ञान ही तो ज्ञेय रूप महान होता है अमित ॥
समयसार निजात्मा ही रस कलश सुखदाय है ।
मुक्ति पाने का सुनिश्चित यही एक उपाय है ॥
समयसार महान के ऊपर चढाने कलश आज ।
स्व पर ज्ञान करू प्रभो मै सिद्ध हो अब मोक्षकाज॥१४०॥

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१४१)

अब, 'कर्म के क्षयोपशम के निमित्त से ज्ञान मे भेद होने पर भी उसके स्वरूप का विचार किया जाये तो ज्ञान एक ही है और वह ज्ञान ही मोक्ष का उपाय है'

अब, इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

सिद्धों के सम मैं भी हूँ कैवल्य ज्ञानमय शिव सुखरूप ।
सिद्धों के सम द्रव्य भाव नो कर्म रहित है मेरा रूप ॥

शार्दूल विक्रीडित

अच्छाच्छाः ,स्वयमुच्छलंति यदिमाः संवेदनव्यक्तयो
निष्पीताखिलभावमंडलरसप्राग्भारमत्ता इव ।
यस्याभिन्नरसः स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवन्
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्‌भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः ॥१४१॥

अर्थ- समस्त पदार्थों के समूह रूपी रस को पी लेने की अतिशयता से मानो मत्त हो गई हो ऐसी जिनकी यह निर्मल से भी निर्मल सवेदन व्यक्त अपने आप उछलती है, वह यह भगवान अद्‌भुत निधिवाला चैतन्यरत्नाकर, ज्ञानपर्यायरूपी तरगो के साथ जिसका रस अभिन्न है ऐसा, एक होने पर भी अनेक होता हुआ, ज्ञानपर्यायरूपी तरंगों के द्वारा दौलायमान होता है-उछलता है ॥१४१॥

१४१ ॐ ह्री निजभगवानाद्‌भुतनिधिस्वरूपाय नम ।

चैतन्यरत्नाकरस्वरूपोऽहं ।

राधिका

सारे पदार्थ रस पीकर तृप्त हुआ है ।
निर्मल से निर्मल वेदन व्यक्त हुआ है ॥
निर्मल स्वज्ञान पर्याय सदैव उछलती ।
निज से अभिन्न हो शुद्ध आत्मा चलती ॥
रस कलश भरू मै समयसार का पावन ।
प्रतिपल प्रतिक्षण पीता जाऊँ मन भावन ॥१४१॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१४२)

अब इसी बात को विशेष कहते हैं-

शार्दूल विक्रीडित

क्लिश्यंतां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यंतां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम् ।

साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं बिना कथमपि प्राप्तुं क्षमंते न हि ॥१४२॥

अर्थ- कई जीव तो दुष्करतर और मोक्ष से पराङ्मुख कर्मों के द्वारा स्वयमेव क्लेश पाते हैं तो पाओ और अन्य कोई जीव महाव्रत औरतपके भार से बहुत समय तक भग्न होते हुए क्लेश प्राप्त करें तो करो, जो साक्षात् मोक्षस्वरूप है, निरामय पद है और स्वयं संवेद्यमान है ऐसे इस ज्ञानको ज्ञानगुण के बिना किसी भी प्रकार से वे प्राप्त नहीं कर सकते ॥१४२॥

१४२ ॐ ह्रीं निरामयबोधस्वरूपाय नम.।

निरागसज्ञानस्वरूपोऽहं ।

राधिका

जो मोक्ष सपदा से परांगमुख होते ।
कर्मो के द्वारा क्लेश बीज वे बोते ॥
कोई कोई मोक्षोन्मुख तप करते हैं ।
रागो मे अटक महाव्रत भी धरते हैं ॥
ऐसा करने पर भी दुख नाश न होता ।
जब तक कि ज्ञान निज शुद्ध न उर में होता ॥
शिव पद जाने बिन कर्म कान्ड पूरा है ।
गुण ज्ञान बिना यह क्रिया कान्ड कूरा है ॥
रस कलश भरूं मैं समयसार का पावन ।
प्रतिपल प्रतिक्षण पीता जाऊँ मन भावन ॥१४२॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१४३)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

द्रुतविलंबित

पदमिदं ननु कर्मदुरासदं
सहजबोधकलासुलभं किल ।

सिद्धों सम कैवल्य ज्ञान उत्पत्ति स्वकारण हूँ अनुरूप ।
करुणामय अरहतो की दिव्य ध्वनिसम दिव्यध्वनिरूप॥१४॥

तत इदं निजबोधकलाबलात्
कलयितुं यततां सततं जगत् ॥१४३॥

अर्थ- यह पद कर्म से वास्तव मे दुरासद है और सहज ज्ञान की कला के द्वारा वास्तव मे सुलभ है, इसलिये निजज्ञान की कला के बल से इस पदको अभ्यास करने के लिए जगत सतत प्रयत्न करो ॥१४३॥

१४३ ॐ ह्री सहजबोधकलास्वरूपाय नम ।

निजबोधकलास्वरूपोऽहं ।

राधिका

है ज्ञान स्वपद कर्मो से पूर्ण दुरासद ।
है सहज ज्ञान की कला वास्तव मे जु सुलभ ॥
इसका अभ्यास करो जाग्रत हो प्रतिपल ।
निज ज्ञान स्वपद का पाओगे शीतल जल ॥
रस कलश भरू मै समयसार का पावन ।
प्रतिपल प्रतिक्षण पीता जाऊँ मन भावन ॥१४३॥

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१४४)

अब, ज्ञानानुभव की महिमा का और आगामी गाथा की सूचना का काव्य कहते है -

अचिंत्यशक्तिः स्वयमेव देव-
श्चिन्मात्रचिंतामणिरेष यस्मात् ।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते
ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥१४४॥

अर्थ- क्योंकि यह स्वय ही अचित्य शक्तिवाला देव है और चिन्मात्र चिन्तामणि है इसलिये

मैं भी स्वपर प्रकाशक केवल ज्ञान सूर्य हूँ प्रकाशरूप ।
चार महामंगल सम मैं भी मगल मय हूँ मंगलरूप ॥

जिसके सर्व अर्थ सिद्ध है ऐसा स्वरूप होने से ज्ञानी दूसरे के परिग्रह से क्या करेगा?॥

१४४ ॐ ह्रीं अचिन्त्यशक्तिसंपन्नस्वदेवस्वरूपाय नम।

चिन्मात्रचिंतामणिस्वरूपोऽहं ।

राधिका

ज्ञानी अचिन्त्य बल का है स्वामी जानो ।
चिन्मात्र यही चिन्तामणि है पहचानो ॥
जब सर्व अर्थ हो गए सिद्ध ज्ञानी को ।
क्यो ग्रहण करेगा वह अब पर द्रव्यो को ॥
रस कलश भरू मै समयसार का पावन ।
प्रतिपल प्रतिक्षण पीता जाऊँ मन भावन ॥१४४॥

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१४५)

अब इस अर्थ का कलशरूप और आगामी कथन का सूचनारूप काव्य कहते हैं-

वसंततिलका

इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव
सामान्यतः स्वपरयोरविवेकहेतुम् ।
अज्ञानमुज्झितुमना अधुना विशेषाद् ।
भूयस्तमेव परिहर्तुमयं प्रवृत्तः ॥१४५॥

अर्थ-- इस प्रकार समस्त परिग्रह को सामान्यत छोडकर अब स्व-परके अविवेक के कारण रूप अज्ञान को छोडने का जिनका मन है ऐसा यह पुन उसीको विशेषत छोडने को प्रवृत्त हुआ है ॥१४५॥

१४५ ॐ ह्रीं स्वपराविवेककारणाज्ञानरहितज्ञानस्वरूपाय नम।

ज्ञानचिंतामणिस्वरूपोऽहं ।

सर्वोत्तम चारों पदार्थ सम मैं भी हूं परमार्थ स्वरूप ।
हूं अरहत सिद्ध साधु जिन धर्म शरण सम शरणस्वरूप॥

पंच चामर

सर्व ही परिग्रह हैं छोड़े जिस जीव मे ।
अब तो विशेष भी छोडे उस जीव ने ॥
अब तो अनिच्छुक वह पूरा ही होगया ।
अपरिग्रह भाव पूर्ण अब जाग्रत होगया ॥
अपरिग्रह भाव का और विस्तार किया ।
हो गया अनिच्छुक ये हलका भवभार किया ॥
समयसार कलश का भाव उर ग्रहण करू ।
ज्ञान कला प्राप्त करू मोह का दमन करूं ॥१४५॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१४६)

अब आगामी गाथा का सूचक काव्य कहते हैं -

स्वागता

पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकात
ज्ञानिनो यदि भवत्युपभोग: ।
तद्भवत्वथ च रागवियोगात्
नूनमेति न परिग्रहभावम् ॥१४६॥

अर्थ- पूर्वबद्ध अपने कर्म के विपाक के कारण ज्ञानी के यदि उपभोग हो तो हो परन्तु राग के वियोग के कारण वास्तव में वह उपभोग परिग्रहभाव को प्राप्त नहीं होता ॥१४६॥

१४६ ॐ ह्रीं पूर्वबद्धकर्मविपाकरहितज्ञानस्वरूपाय नम।

चित्कलास्वरूपोऽहं ।

चामर

पूर्व बद्ध कर्म उदय सामग्री प्राप्त हो ।
राग अज्ञान से भोगे तो बध हो ॥
ज्ञानी को राग का वियोग सतत विद्यमान ।
इससे उपभोग नही नहीं परिग्रह विहान ॥

सहज शुद्ध स्वाभाविक ज्ञानानंदी हूँ आनंद स्वरूप ।
सर्व क्रियाओं से विरहित टकोत्कीर्ण ध्रुव अनल रूप ॥

समयसार कलश का भाव उर ग्रहण करू ।
ज्ञान कला प्राप्त करूं मोह का दमन करू ॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१४७)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

स्वागता

वेद्यवेदकविभावचलत्वाद
वेद्यते न खलु कांक्षितमेव ।
तेन कांक्षति न किञ्चन विद्वान्
सर्वतोऽप्यतिविरक्तिमुपैति ॥१४७॥

अर्थ- वेद्य-वेदकरूप विभावभावो की चलता होने से वास्तव मे वाछितका वेदन नहीं होता, इसलिये ज्ञानी कुछ भी वाछा नही करता, सबके प्रति अत्यन्त विरक्तता को प्राप्त होता है ॥१४८॥

१४७ ॐ ह्री वेद्यवेदकविभावरहितनिष्काक्षस्वरूपाय नम ।

निष्कामज्ञानस्वरूपोऽहं ।

चामर

वेद्य वेदक स्वरूप अस्थिर विभाव भाव ।
वाछित के वेदन का होता न कभी भाव ॥
अतएव ज्ञानी कुछ वांछा ना करता है ।
अत्यंत वैराग्य भाव हृदय धरता है ॥
समयसार कलश का भाव उर ग्रहण करू ।
ज्ञान कला प्राप्त करू मोह का दमन करूं ॥१४७॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१४८)

अब इस अर्थ का कलशरूप और आगामी कथन का सूचक श्लोक

परमौदारिक दिव्य शरीरी कोटि सूर्य प्रभसमनिजरूप ।
सकल ज्ञेय ज्ञायक सिद्धो सम मैं हूँ पुरुषाकार स्वरूप ॥

कहते हैं -

स्वागता

ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं
कर्म रागरसरिक्ततयैति ।
रगयुक्तिरकषायितवस्त्रे-
स्वीकृतैव हि बहिर्लुठतीह ॥१४८॥

अर्थ- जैसे लोध और फिटकरी इत्यादि से जो कसायला नहीं किया गया हो ऐसे वस्त्र मे रग का सयोग, वस्त्र के द्वारा अगीकार न किया जाने से ऊपर ही लौटता है-वस्त्र के भीतर प्रवेश नहीं करता, इसीप्रकार ज्ञानी रागरूपी रस से रहित है इसलिए उसे कर्म परिग्रहत्व को प्राप्त नहीं होता।

१४८ ॐ ह्री रागरसरहितचैतन्यरसस्वरूपाय नम ।

नीरंगस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

लोध फिटकरी बिना वस्त्र पर रग नहीं चढता जिस भांति।
राग बिना ज्ञानी को होता नही परिग्रह भी उस भाति॥
समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१४९)

अब पुन कहते हैं कि-

स्वागता

ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यतः स्यात् ।
सर्वरागरसवर्जनशीलः ।
लिप्यते सकलकर्मभिरेषः
कर्ममध्यपतितोऽपि ततो न ॥१४९॥

रागादिक लेपो से विरहित निरुपम हूँ निर्लेप स्वरूप ।
सिद्धों के सम परम देह से किंचितून्यून शुद्धमयरूप ॥

अर्थ- क्योंकि ज्ञानी निजरस से ही सर्व रागरस के त्यागरूप स्वभाववाला है इसलिये वह कर्मों के बीच पडा हुआ भी सर्व कर्मों से लिप्त नही होता ॥१४९॥

१४९ ॐ ह्रीं सर्वरागरसरहितारसस्वरूपाय नमः

चैतन्यरसरसायनस्वरूपोऽहं ।

तांटंक

सर्व राग रस त्यागी को तो राग नहीं कुछ भी होता ।
कर्म बीच रहता है पर कर्मो से लिप्त नहीं होता ॥
समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है ॥१४९॥

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१५०)

अब इस अर्थ का और आगामी कथन का सूचक कलशरूप काव्य कहते हैं -

शार्दूल विक्रीडित

यादृक् तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः
कर्तु नैष कथंचनापि हि परैरन्यादृशः शक्यते ।
अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेज्ज्ञानं भवत्संततं
ज्ञानिन् भुंक्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बंधस्तव ॥१५०॥

अर्थ- इस लोक मे जिस वस्तु का जैसा स्वभाव होता है उसका वैसा स्वभाव उस वस्तु के अपने वश से ही होता है । ऐसा वस्तु का स्वभाव वह पर वस्तुओं के द्वारा किसी भी प्रकार से अन्य जैसा नही किया जा सकता । इसलिये जो निरन्तर ज्ञानरूप परिणमित होता है वह कभी भी अज्ञान नहीं होता, इसलिये हे ज्ञानी तू उपभोग को भोग, इस जगत मे परके अपराध से उत्पन्न होने वाला बन्ध तुझे नही है ॥१५०॥

१५० ॐ ह्रीं परापराधजनितबन्धरहितनिर्बन्धस्वरूपाय नम ।

निरपराधचित्स्वरूपोऽहं ।

सिद्धों सम शत इन्द्रों द्वारा वदित मै भी सिद्ध स्वरूप ।
अरहंतों सम चौंतीसों अतिशय से शोभित शुद्ध स्वरूप ॥

वीरछद

जिस वस्तु का जो स्वभाव है वह स्ववस्तु के हैं आधीन।
पर वस्तु से नहीं परिणमित होता है रहता स्वाधीन ॥
ज्ञान रूप परिणमित जीवको तो अज्ञान नहीं होता ।
अत भोग उपभोग कर रहा बध नहीं उसको होता ॥
समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है ॥१५०॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१५१)

अब इसका कलशरूप काव्य कहते हैं-

शार्दूल विक्रीडित

ज्ञानिन् कर्म न जातु कर्तुमुचितं किंचित्तथाप्युच्यते
भुंक्षे हंत न जातु मे यदि परं दुर्भुक्त एवासि भोः ।
बंधः स्यादुपभोगतो यदि न तत्किं कामचारोऽस्ति ते
ज्ञानं सन्वस बंधमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवम् ॥१५१॥

अर्थ- हे ज्ञानी ! तुझे कभी कोई भी कर्म करना उचित नहीं है तथापि यदि तू यह कहे कि 'परद्रव्य मेरा कभी भी नहीं है और मैं उसे भोगता हूँ' तो तुझसे कहा जाता है कि हे भाई, तू खराब प्रकार से भोगने वाला है, जो तेरा नहीं है उसे तू भोगता है यह महा खेद की बात है ! यदि तू कहे कि 'सिद्धान्त मे यह कहा है कि परद्रव्य के उपभोग से बन्ध नहीं होता इसलिये भोगता हूँ', तो क्या तुझे भोगने की इच्छा है? तू ज्ञानरूप होकर निवास कर, अन्यथा तू निश्चयत अपने अपराध से बन्ध को प्राप्त होगा ॥१५१॥

१५१ ॐ ह्री ज्ञानरसरसायनस्वरूपाय नम ।

ज्ञानकलास्वरूपोऽहं ।

ताटक

ज्ञानी तुझको उचित नहीं है कोई कभी कर्म करना ।
पर मेरा है मैं पर का हू भोक्ता हूं ऐसा कहना ॥

अरहंतो सिद्धों के सम मैं भी हूँ परम पवित्र अनूप ।
शुद्ध आत्मा परमानंद स्वरूपी सहजानंद स्वरूप ॥

जो तेरा है नही उसे तू भोग रहा यह खेद जनक ।
पर मेरा है नहीं भोगता हूं कहता है अरे अथक ॥
तो क्या तुझे भोगने की इच्छा है रह तू ज्ञान स्वरूप ।
यदि इच्छा होगी तो तू है निश्चय से ही बंध स्वरूप ॥
इच्छा से भोगेगा तो तू बधन को ही होगा प्राप्त ।
तेर निज अतर मे होंगे कभी नहीं कुछ भी सुख व्याप्त॥
समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है ॥१५१॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१५२)

अब आगे की गाथा का सूचक काव्य कहते हैं-

शार्दूल विक्रीडित

कर्तारं स्वफलेन यत्किल बलात्कर्मैव नो योजयेत्
कुर्वाणः फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मणः ।
ज्ञानं संस्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा
कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः ॥१५२॥

अर्थ- कर्म ही उसके कर्त्ता को अपने फलके साथ बलात् नहीं जोड़ता। फल की इच्छावाला ही कर्म को करता हुआ कर्म के फल को पाता है; इसलिए ज्ञानरूप रहता हुआ और जिसने कर्म के प्रतिराग की रचना दूर की है ऐसा मुनि, कर्मफल के परित्याग रूप ही एक स्वभाववाला होने से, कर्म करता हुई भी कर्म से नहीं बधता ॥१५२॥

१५२ ॐ ह्रीं रागरचंनारहितसहजज्ञानस्वरूपाय नम ।

विरागवैभवसंपन्नोऽहं ।

ताटंक

हे ज्ञानी ये कर्म कभी करना तुम उचित नहीं जानो ।
भोग रहा परद्रव्य भोगना उसे योग्य भी ना मानो ॥

सिद्धों के सम जन्म जराअरु मरण रोग से रहित अरूप।
सिद्धों के सम परमानद मयी हूँ मै भी शिव सुखरूप ॥

पर द्रव्यो के भोक्ता जन को चोर कहा जाता जानो ।
इच्छा बिन जो कर्म कर रहा उसको बध नही मानो ॥
समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है ॥१५२॥

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१५३)

अब, 'जिसे फल की इच्छा नही है वह कर्म क्यो करे?' इस आशका को दूर करने के लिए काव्य कहते हैं -

शार्दूल विक्रीडित

त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं
किंत्वस्यापि कुतोऽपि किंचिदपि तत्कर्मावशेनापतेत् ।
तस्मिन्नापतिते त्वकंपपरमज्ञानस्वभावे स्थितो
ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति क: ॥१५३॥

अर्थ- जिसने कर्म का फल छोड दिया है वह कर्म करता है ऐसी प्रतीति तो हम नही कर सकते। किन्तु वहा इतना विशेष है कि- उसे भी किसी कारण से कोई ऐसा कर्म अवशता से आ पडता है। उसके आ पडने पर भी, जो अकम्प परमज्ञानस्वभाव मे स्थित है ऐसा ज्ञानी करता है या नहीं यह कौन जानता है ?॥१५३॥

१५३ ॐ ह्रीं अकम्पपरमज्ञानस्वरूपाय नम ।

निष्कम्पज्ञानस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

ज्ञानी को परवशता से यदि आ पडता है कर्म उदय ।
किन्तु ज्ञान से चलायमान वह होता नहीं यही निश्चय ॥
अचल ज्ञान से कर्म करे यह बात समझ के बाहर है ।
ज्ञानी करता कर्म या नहीं यही समझ के बाहर है ॥

समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बंद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है ॥१५३॥

ॐ ह्री निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१५४)

अब, इसी अर्थ का समर्थक और आगामी गाथा का सूचक काव्य कहते हैं

शार्दूल विक्रीडित-

सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमंते परं
यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि ।
सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शंका विहाय स्वयं
जानंत: स्वमवध्यबोधवपुष्पं बोधाच्च्यवंते न हि ॥१५४॥

अर्थ- जिसके भय से चलायमान होते हुवे-तीनों लोक अपने मार्ग को छोड देते हैं ऐसा वज्रपात होने पर भी, ये सम्यग्दृष्टि जीव, स्वभावत निर्भय होने से, समस्त शका को छोडकर, स्वय अपने को जिसकी ज्ञानरूपी शरीर अबध्य है ऐसा जानते हुए, ज्ञान से च्युत नही होते। ऐसा परम साहस करने के लिये मात्र सम्यग्दृष्टि ही समर्थ है ॥१५४॥

१५४ ॐ ह्री निसर्गनिर्भयबोधस्वरूपाय नम।

अवध्यबोधवपुरोऽहं ।

ताटंक

सम्यक् दृष्टि निशकित निज गुण युक्त सदा ही होता है।
चाहे जैसा कर्म उदय हो यह ज्ञानी ही रहता है ॥
वज्रपात होने पर भी यह ज्ञान शरीरी रहता है ।
जान रहा पर्याय विनश्वर यह अविनाशी होता है ॥
समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बंद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है ॥१५४॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

सार भूत उत्तम पदार्थ हूँ रत्नत्रय स्वरूप गुणभूप ।
सिद्धों के सम परम स्वस्थ हूँ त्रिविध ताप से रहित अनूप॥

(१५५)

अब सात भयो के कलशरूप काव्य कहे जाते हैं, उसमे से पहले इहलोक और परलोक के भयो का एक काव्य कहते हैं -

शार्दूल विक्रीड़ित

लोकः शाश्वत एक एष सकलव्यक्तो विविक्तात्मन-
श्चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येककः ।
लोकोऽयं न तवापरस्तदपरस्तस्यास्ति तद्भीः कुतो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥१५५॥

अर्थ- यह चित्स्वरूप लोक ही भिन्न आत्मा का भिन्न रूप परिणमित होते हुए आत्मा का शाश्वत, एक और सकलव्यक्त लोक है, क्योकि मात्र चित्स्वरूप लोक को यह ज्ञानी आत्मा स्वयमेव एकाकी देखता है-अनुभव करता है। यह चित्स्वरूप लोक ही तेरा है, उससे भिन्न दूसरा कोई लोक यह लोक या परलोक-तेरा नही है ऐसा ज्ञानी विचार करता है, जानता है, इसलिए ज्ञानी को इस लोक का तथा परलोक का भय कहाँ से हो? वह तो स्वय निरन्तर नि शक वर्तता हुआ सहज ज्ञान का सदा अनुभव करता है ॥१५५॥

१५५ ॐ ह्रीं इहपरलोकभयरहितनिर्भयस्वरूपाय नम.।

चिल्लोकस्वरूपोऽहं ।

चित्स्वरूप निज लोक आत्मा का है शाश्वत लोक महान।
ज्ञानी आत्मा एकाकी हो अनुभव करता लोक स्वज्ञान ॥
उससे भिन्न लोक दूसरा या परलोक नहीं कोई ।
सहज ज्ञान का अनुभव करता अन्य नहीं करता कोई॥
समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बंद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है ॥१५५॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१५६)

अब वेदनाभय का काव्य कहते हैं-

सिद्धों सम परम अनंत चतुष्टय मय भूतार्थ स्वरूप ।
सिद्धों के सम परम स्वसंवेदनमय है मेरा आत्म स्वरूप ॥

शार्दूल विक्रीडित

ऐषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते
निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलादेकं सदानाकुलैः ।
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥१५६॥

अर्थ- अभेदस्वरूप वर्तते हुवे वेद्य-वेदक के बल से एक अचल ज्ञान ही स्वय निराकुल पुरुषो के द्वारा सदा वेदन मे आता है, यह एक ही वेदना ज्ञानियों के है। ज्ञानी के दूसरी कोई आगत वेदना होती ही नहीं, इसलिए उसे वेदना का भय कहाँ से हो सकता है? वह तो स्वय निरन्तर नि शक वर्तता हुआ सहज ज्ञान का सदा अनुभव करता है ॥१५७॥

१५६ ॐ ह्री वेदनाभयरहितानाकुलज्ञानस्वरूपाय नम.।

अचलबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

वेद्य और वेदक बल से वह अभेद स्वरूप वर्त्तता है ।
अचल ज्ञान रस उसे सदा ही वह वेदन मे करता है ॥
ज्ञानी निज चैतन्य लोक को जान रहा है अपना लोक।
इस छोड़ कर अन्य नहीं है इस त्रिभुवन में कोई लोक॥
निज चैतन्य लोक का कोई कर सकता है नहीं बिगाड़।
उसे लोक परलोक भय कहाँ उसका अनुभव परम उदार ॥
समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बंद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है ॥१५६॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१५७)

अब अरक्षाभय काव्य कहते हैं-

शार्दूल विक्रीडित

यत्सन्नाशमुपैति तन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः ।

जड तन से सर्वथा भिन्न हूँ परम भेद विज्ञान स्वरूप ।
ज्ञानावरणादिक आठों कर्मों से रहित सदा मम रूप ॥

अस्यात्राणमतो न किंचन भवेत्तद्भी: कुतो ज्ञानिनो
निश्शंक: सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥१५७॥

अर्थ- जो सत् है वह नष्ट नहीं होता ऐसी वस्तुस्थिति नियमरूप से प्रगट है । यह ज्ञान भी स्वयमेव सत् है । इसलिए परके द्वारा उसका रक्षण कैसा? इस प्रकाररर उसका किंचित्मात्र भी अरक्षण नहीं हो सकता इसलिए ज्ञानी को अरक्षा भय कहाँ से हो सकता ? वह तो स्वय निरन्तर निशक वर्तता हुआ सहज ज्ञान का सदा अनुभव करता है ।

१५७ ॐ ह्रीं अत्राणभयरहितशाश्वतज्ञानस्वरूपाय नम.।

सज्ज्ञानस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो सत् है वह नष्ट न होता यही नियम से वस्तु स्वरूप।
सत् स्वरूप है वस्तु स्वयं ही पर रक्षा से सदा अरूप ॥
निज से ज्ञानी नित रक्षित है पर आरक्षण कभी नही ।
सो ज्ञानी को कभी अरक्षा का भय होता कभी नहीं ॥
निर्भय निज में वर्तन करता अनुभव करता है निज ज्ञान।
वह निशक वर्तता स्वयं मे उसे नहीं किंचित अज्ञान ॥
समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है ॥१५७॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१५८)

अब मरणभय का काव्य कहते हैं-

शार्दूल विक्रीडित

स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्ति: स्वरूपे न य-
च्छक्त: कोऽपि पर: प्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नु:।
अस्यागुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भी: कुतो ज्ञानिनो
निश्शंक: सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥१५८॥

सिद्धों के सम मैं भी हूँ लोकाग्रनिवासी शुद्धस्वरूप ।
सिद्धो सम चैतन्य कला भूषित मैं हूँ चित्कला स्वरूप ॥

अर्थ- वास्तव मे वस्तु का स्व-रूप ही वस्तु की परम 'गुप्ति' है क्योंकि स्वरूप मे कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता, अकृतज्ञान पुरुष का अर्थात् आत्मा का स्वरूप है, इसलिये आत्मा की किंचित्‌मात्र भी अगुप्तता न होने से ज्ञानी को अगुप्तिका भय कहाँ से हो सकता है? वह तो स्वयं निरन्तर नि.शक वर्तता हुआ सहज ज्ञान का सदा अनुभव करता है ॥१५८॥

१५८ ॐ ह्री अगुप्तिभयरहितनिर्भयज्ञानस्वरूपाय नम.।

परमगुप्तस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

वास्तव मे तो वस्तु का स्वस्वरूप वस्तु की परम सुगुप्ति।
कोई अन्य प्रवेश न करता उसमे ऐसी है यह गुप्ति ॥
किचित मात्र अगुप्ति नही है ऐसी है आत्मा की गुप्ति ।
अत अगुप्ति भय उसे नही है अनुभव ज्ञानमयी है गुप्ति॥
समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बद ज्ञान का कमल वही तब खिलता हैं ॥१५८॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१५९)

अब मरणभय का काव्य कहते हैं-

शार्दूल विक्रीडित

प्राणोच्छेदमुदाहरंति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो
ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित्।
तस्यातो मरणं न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥१५९॥

अर्थ प्राणो के नाशको मरण कहते हैं । निश्चय से आत्मा के प्राण तो ज्ञान है । वह स्वयमेव शाश्वत होने से उसका कदापि नाश नहीं होता , इसलिये आत्मा का मरण किचित्‌मात्र भी नहीं होता । अत ज्ञानी को मरण का भय कहा से हो सकता है ? वह तो स्वयं निरन्तर नि शंक वर्तता हुआ सहज ज्ञान का सदा अनुभव करता है ॥

सिद्धों के सम अष्ट आत्म गुण से मंडित मम शुद्ध स्वरूप।
सिद्धों के सम विद्यमान हूँ शाश्वत ध्रुव त्रैकालिक रूप ॥

१५९ ॐ ह्रीं मरणभयरहितामरज्ञानस्वरूपाय नमः।

चैतन्यप्राणस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

मरण कहा जाता है उसको जब होता प्राणों का नाश ।
निश्चय से तो नित्यात्मा को प्राण नहीं है क्यो हो नाश॥
ज्ञानी को भय मरण नहीं है वह निशंक वर्तता सहज ।
सतत ज्ञान का अनुभव करता रहता है वह अभय सहज॥
समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बंद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है ॥१५९॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१६०)

अब आकस्मिक भय का काव्य कहते हैं -

शार्दूल विक्रीडित

एकं ज्ञानमनाद्यनंतमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो
यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः ।
तन्नाकस्मिकमत्र किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो ।
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥१६०॥

अर्थ-यह स्वत सिद्ध ज्ञान एक है, अनादि है, अनन्त है, अचल है । वह जब तक है तब तक सदा ही वही है, उसमे दूसरे का उदय नहीं है । इसलिये इस ज्ञान मे आकस्मिक कुछ भी नहीं होता । ऐसा जानने वाले ज्ञानी को अकस्मात् का भय कहाँ से हो सकता है? वह तो स्वय निरन्तर नि शक वर्तता हुआ सहज ज्ञान का सदा अनुभव करता है ॥१६०॥

१६०. ॐ ह्रीं आकस्मिकभयरहितानाद्यनंतज्ञानस्वरूपाय नम ।

सनातनस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

स्वत सिद्ध है ज्ञान एक है सदा अनादि अनत अचल।
नहीं उदय है किसी दूसरे का उसमें ऐसा निश्चल ॥

शुद्ध आत्मा के अनंत चिन्हों से भूषित मैं चिद्रूप ।
शुद्ध आत्मा समयसार है मैं भी समयसार अनुरूप ॥

ज्ञानी को तो अकस्मात भय होता कभी नहीं किंचित ।
वह तो स्वयं निशक वर्तता निज अनुभव करता निश्चित॥
समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१६१)

अब आगे की गाथाओ का सूचक काव्य कहते हैं -

मंदाक्रान्ता

टंकोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाज:
सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकलं घ्नंति लक्ष्माणि कर्म ।
तत्तस्यास्मिन्पुनरपि मनाक्कर्मणो नास्ति बंध:
पूर्वोपात्तं तदनुभवतो निश्चितं निर्जरैव॥१६१॥

अर्थ- निजरस से परिपूर्ण ज्ञान के सर्वस्वको भोगने वाले सम्यग्दृष्टि के जो नि शकित आदि चिन्ह हैं वे समस्त कर्मों को नष्ट करते हैं, इसलिये, कर्म का उदय वर्तता होने पर भी, सम्यग्दृष्टि क पुन कर्म का बन्ध किचित् मात्र भी नहीं होता, परन्तु जो कर्म पहले बधा था उसके उदय को भोगने पर उसको नियम से उस कर्म की निर्जरा ही होती है ॥१६१॥

१६१ ॐ ह्रीं टंकोत्कीर्णचैतन्यरसस्वरूपाय नम ।

बोधप्राणस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

टंकोत्कीर्ण पूर्ण निज रस से ज्ञान भोगता सम्यक् दृष्टि।
नि.शंकित अभीत चिन्हों से भूषित है यह है सम दृष्टि॥
कर्म उदय आने पर भी यह कर्म बंध करता न कभी ।
जो पहिले से बधा कर्म था करता है निर्जरा सभी ॥
समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बंद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है ॥१६१॥

सिद्धों सम स्वात्मानुभूतिमय मैं भी हूँ अनुभव रस कूप ।
सिद्धों के सम देह चेतना मयी शुद्ध चैतन्य स्वरूप ॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१६२)

अब, निर्जरा के यथार्थ स्वरूप को जनने वाले और कर्मों के नवीन बन्ध को रोककर निर्जरा करने वाले सम्यग्दृष्टि की महिमा करके निर्जरा अधिकार पूर्ण करते हैं -

मंदाक्रान्ता

रुंधन् बंधं नवमिति निजैः संगतोऽष्टाभिरंगेः
प्रगग्बद्धं तु क्षयमुपनयन् निर्जरोज्जृम्भणेन ।
सम्यग्दृष्टि स्वयमतिरसादादिमध्यांतमुक्तं
ज्ञानं भूत्वा नटति गगनाभोगरंगं विगाह्य ॥१६२॥

अर्थ- इस प्रकार नवीन बन्ध को रोकता हुआ और अपने आठ अगो से युक्त होने के कारण निर्जरा प्रगट होने से पूर्वबद्ध कर्मों का नाश करता हुआ सम्यग्दृष्टि जीव स्वय अति रस से आदि-मध्य-अन्त रहित ज्ञानरूप होकर आकाश के विस्ताररूपी रगभूमि मे अवगाहन करके नृत्य करता है ॥१६२॥

भावार्थ- इस प्रकार, जिसने रगभूमि में प्रवेश किया था वह निर्जरा अपना स्वरूप प्रगट बताकर रगभूमि से बाहर निकल गई ।

१६२ ॐ ह्रीं नवबधरहितापूर्वचिस्वरूपाय नम ।

स्वावलंबनज्ञानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

नूतन बध रोकता है वह अष्ट अग से होकर युक्त ।
पूर्व बद्ध भी क्षय करता है साम्य भाव से हो सयुक्त ॥
आदि मध्य अरु अत रहित है रहता ज्ञान रूप होकर ।
ज्ञान गगन मंडल में करता नृत्य सदा प्रमुदित होकर ॥
पर ज्ञानेच्छुक पर वश होकर मोह गरल भ्रम से पीता।
आश्चर्य है हमको फिर फिर मर मर कर पर मे जीता॥

सिद्ध स्वयंभू उनसमकर्म रहित हूँ परम स्वयंभू रूप ।
केवल दर्शनमयी सिद्धसम मैं भी केवल दर्शन रूप ॥

समयसार अध्यात्म कलश तो अनुभव से ही मिलता है।
जो अनादि से बंद ज्ञान का कमल वही तब खिलता है ॥१६२॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

महाअर्घ्य

गीतिका

निर्जरा का राज्य ही निर्दोष है अविकल्प है ।
बध तत्त्व कहीं नहीं है नहीं अन्य विकल्प है ॥
विकल्पात्मक भावना का अब न कुछ भी काम है ।
भेद ज्ञान महान का फल स्वय मे विश्राम है ॥
ज्ञान दर्शन चरित का पुरुषार्थ ही पुरुषार्थ है ।
साध्य साधन सिद्धि युत है यही तो परमार्थ है ॥
दिव्य ध्वनि अमृत मिला है अमृतचद्राचार्य से ।
अमृतचंद्र ने इसे पाया कुन्दकुन्दाचार्य से ॥
शुद्ध भाव प्रसिद्ध द्वारा अब इसे ही पीजिये ।
जन्म मृत्य अभाव कर निज भाव मे ही जीजिये ॥
कुछ समय कौतूहली बन आत्म का अनुभव करो ।
देह से हो भिन्न अपने भाव को निर्मल करो ॥
सकल कर्म कलंक अपने पूर्णत तत्क्षण हरो ।
महामंगल मूर्त्ति बनकर ज्ञान रस से घट भरो ॥

ॐ ह्रीं निर्जरा अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय महाअर्घ्यं नि ।

जयमाला

ताटंक

जिन ध्वनि की मत करो उपेक्षा तुम अनाथ बन जाओगे।
मानव तन जिनकुल पाकर भी चहुगति के दुख पाओगे॥

केवल दर्शनमयी सिद्धसम मैं भी केवल दर्शन रूप ।
सिद्धों के सम अनंत अतिशय धारी उत्तम अतिशयरूप ॥

रुचि अनुयायी वीर्य काम करता है अपनी रुचि बदलो।
रुचि बदलोगे तो फिर सम्यक् निधि तत्क्षण ही पाओगे॥
सम्यक् ज्ञान परम बॉधव है परम मित्र सम्यक् चारित्र।
यदि पुरुषार्थ करोगे तो तुम सिद्ध स्वपद निज पाओगे॥
सत्य प्राप्ति के लिए सत्य की खोज तुम्हे करना होगी।
इसी सत्य का बल पाकर तुम भव दुख पूर्ण मिटाओगे॥
आत्म तत्त्व मे लीन रहोगे तो द्विविधा सब जाएगी ।
द्विविधा जाएगी तो तुम अद्वैत अवस्था पाओगे ॥
धर्म पिता परमात्मा का यह विरह महा दुख देता है ।
आत्म तत्त्व दर्शन होते ही विरह नही तुम पाओगे ॥
तत्त्व लब्धि पाने के पहिले करण लब्धि आवश्यक है ।
यदि पुरुषार्थ करोगे तो तुम करण लब्धि भी पाओगे ॥
साधक की भूमिका प्राप्त कर अन्तरोन्मुख बन जाओगे।
साध्य स्वय चरणो मे आएगा शाश्वत सुख पाओगे॥
तुम अपने सम्पूर्ण बुद्धि वैभव का ही उपयोग करो ।
फिर एकत्व विभक्त आत्मा का वैभव तुम पाओगे ॥
अप्रति बुद्ध अवस्था तजकर निर्विकल्प अब हो जाओ।
आत्म स्वधर्म लीन होते ही मोक्ष महल मे जाओगे ॥

ॐ ह्रीं समयसारप्राभृतग्रन्थे निर्जराधिकारे कलशस्वरूपनित्यज्ञानानदस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं ।नेर्वपामीति स्वाहा ।

आशीर्वाद

शुद्ध निर्जरा शक्ति से हो जाऊ निर्बंध ।
मोक्षमार्ग मे ही नहीं बध भाव का द्वद ॥

इत्याशीर्वाद :

सिद्धों सम मैं सदा अचल हूँ अविचल चिदानंद चिद्रूप ।
अरहंतों सम गुण अचिन्त्य से शोभित मै अरहंत स्वरूप॥

बंध अधिकार पूजन

स्थापना

गीत

अपनी निज आत्मा की ली है मैने पूर्ण शरण ।
अपने निज शुद्ध भाव का ही किया मैने वरण ॥
मोह मिथ्यात्व नही कष्ट फिर दे पाएगे ।
राग के भाव भी मुझसे न कुछ भी पाएगे ॥
मै तो अब हो गया हू एक मात्र ज्ञानधरण ।
अपनी निज आत्मा की ली है मैंने पूर्ण शरण ॥
कोटि उपसर्ग नही मुझको डरा पाएगे ।
कोटि परिषह भी नही कष्ट कुछ दे पाएंगे ॥
किया है बध भाव नाश हेतु शुद्धि करण ।
अपनी निज आत्मा की ली है मैने पूर्ण शरण ॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्।
ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र त्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन।
ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद-मानव

जीवादि सात तत्त्वो का निर्णय न कभी कर पाया ।
इसलिए जगत में भटका सुख चैन न उरभर पाया ॥

अरहतों सम घाति कर्म के चतुष्क से विरहित निजरूप ।
अरहतो के सम त्रिभुवन का गुरु हूँ केवल ज्ञानस्वरूप ॥

मै बध भाव मे अटका चारो गति मे भ्रमता हू ।
जीवत शक्ति को भूला परभावो मे थमता हू ॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

पापो से परिचय करके दुर्गतियो मे ही जाता ।
पुण्यो से परिचय करके फिर फिर स्वर्गों मे जाता ॥
मै बध भाव मे अटका चारो गति मे भ्रमता हू ।
जीवत शक्ति को भूला परभावो मे थमता हू ॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

जब निज से परिचय होता तो यह फिर निज मे आता।
निज मे आते ही तत्क्षण अपना अक्षय पद पाता ॥
मै बध भाव मे अटका चारो गति मे भ्रमता हू ।
जीवत शक्ति को भूला परभावो मे थमता हू ॥

ॐ ह्री बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अक्षय पद प्रापप्ताय अक्षत नि ।

मै महाशील का स्वामी हू काम भाव से पीडित ।
करता हू विविध तपस्या होता निज से निष्क्रीडित ॥
मै बध भाव मे अटका चारो गति मे भ्रमता हू ।
जीवत शक्ति को भूला परभावो मे थमता हू ॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय कामबाण विनशनाय पुष्प नि ।

यह क्षुधारोग की पीडा मुझसे न सही अब जाती ।
उदराग्नि सदा ही मुझको निर्मम हो सदा जलाती ॥

अरहंतो सम अष्टादश दोषों से रहित शुद्ध निजरूप ।
सिद्धो सम निर्गति रूपी चारों गतियों से रहित अनूप ॥

मै बंध भाव मे अटका चारों गति में भ्रमता हू ।
जीवंत शक्ति को भूला परभावों मे थमता हूं ॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि ।

मिथ्यात्व महातमने ही दुख दिया सदा ही जी भर ।
जब ज्ञान दीप को देखा तो भागा तत्क्षण डरकर ॥
मै बध भाव मे अटका चारो गति में भ्रमता हू ।
जीवत शक्ति को भूला परभावो मे थमता हू ॥

ॐ ह्री बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि ।

कर्माग्नि बुझाने का भी मैं यत्न नही कर पाया ।
मै ने तो पच परावर्त्तन करके अति दुख पाया ॥
मै बध भाव मे अटका चारो गति में भ्रमता हू ।
जीवत शक्ति को भूला परभावो मे थमता हू ॥

ॐ ह्री बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि ।

स्वर्गों के नदन वन में स्वर्गों का सुख मिलता है ।
जब शुद्ध भाव होता है तो मोक्ष सुफल झिलता है ॥
मैं बध भाव मे अटका चारों गति मे भ्रमता हूं ।
जीवत शक्ति को भूला परभावों मे थमता हू ॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

अर्घ्यावलि बहुत चढायी पर वह भी भव सुख वाली ।
पदवी अनर्घ्य पाऊ जो है शाश्वत शिव सुख वाली ॥

सिद्धो के सम मैं भी हूँ त्रैलोक्यपूज्य परमात्मस्वरूप ।
सिद्धो के सम लोक शिखर का भव्य निवासी मैं चिन्रूप॥

मै बध भाव मे अटका चारो गति मे भ्रमता हू ।
जीवत शक्ति को भूला परभावो मे थमता हूं ॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

अर्घ्यावलि

(बंध अधिकार)

(१६३)

प्रथम टीकाकार कहते हैं कि 'अब बन्ध प्रवेश करता है '। जैसे नृत्यमच पर स्वॉग प्रवेश करता है उसी प्रकार रगभूमि मे बन्धतत्त्व का स्वॉग प्रवेश करता है ।

उसमे प्रथम ही, सर्व तत्त्वो को यथार्थ जानने वाला सम्यग्ज्ञान बन्ध को दूर करता हुआ प्रगट होता है, इस अर्थ का मगलरूप काव्य कहते हैं -

शार्दूल विक्रीडित

रागोद्‌गारमहारसेन सकलं कृत्वा प्रमत्तं जगत्
क्रीडंतं रसभावनिर्भरमहानाट्येन बंधं धुनत् ।
आनंदामृतनित्यभोजि सहजावस्थां स्फुटं नाटयद्-
धीरोदारमनाकुलं निरुपधि ज्ञानं समुन्मज्जति ॥१६३॥

अर्थ- जो राग के उदयरूपी महारस के द्वारा समस्त जगत को प्रमत्त करके, रस के भाव से भरे हुए महा नृत्य के द्वारा खेल रहा है ऐसे बन्धको उडाता-दूर करता हुआ, ज्ञान उदय को प्राप्त होता है। वह ज्ञान आनन्दरूपी अमृत का नित्य भोजन करने वाला है, अपनी ज्ञातृक्रियारूप सहज अवस्था को पगट नचा रहा है, धीर है, उदार अनाकुल है, उपाधि रहित है ॥१६३॥

१६३ ॐ ह्रीं आनंदामृतरूपानाकुलज्ञानस्वरूपाय नम‌ः।

ज्ञानमहारसस्वरूपोऽहं ।

सिद्धों के सम तीन लोक से वन्दनीय हूँ बुद्ध स्वरूप ।
सिद्धों के सम ज्ञानरूप जल से पूरित ज्ञानार्णवरूप ॥

वीरछंद

राग उदय क्रीडा के द्वारा सकल जगत को करके मत्त।
बंध नृत्य के द्वारा नाच रहा है करके बंधन युक्त ॥
किन्तु ज्ञान आनद स्वरूपी अमृत का भोजन करता ।
धीर अनाकुल उदार है यह सदा उपाधि रहित रहता ॥
समयावधि मे समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बध॥१६३॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१६४)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

पृथ्वी

न कर्मबहुलं जगन्न चलनात्मकं कर्म वा
न नैककरणानि वा न चिदचिद्वधो बंधकृत् ।
यदैक्यमुपयोगभूः समुपयति रागादिभिः
स एव किल केवलं भवति बंधहेतुर्नृणाम् ॥१६४॥

अर्थ- कर्मबन्ध को करने वाला कारण न तो बहु कर्मयोग्य पुद्गल से भरा हुआ लोक है न चलनस्वरूप कर्म है, न अनेक प्रकार के कारण हैं और न चेतन-अचेतन का घात है । किन्तु 'उपयोग भू' अर्थात् आत्मा रागादि के साथ जो ऐकत्व को प्राप्त होता है वही एकमात्र वास्तव में पुरुषो के बन्धकारण हैं ॥१६४॥

१६४ ॐ ह्रीं रागैक्योपयोगरहितनिराकुलज्ञानस्वरूपाय नम.।
ज्ञानप्राणस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

कर्म पुद्गलों से पूरित यह लोक न कर्म बंध कारण ।
मन वच काया योग क्रियादिक विविध न कभी बंध कारण॥

सिद्धों के सम मै गतिगति के परिभ्रमण से रहित अनूप।
सिद्धों के सम ध्रौव्य त्रिकाली मात्र शुद्ध चैतन्य स्वरूप ॥

पर रागादिक से यह आत्मा एक्य प्राप्त कर करता बध।
वास्तव में तो पुरुषो को है कारण वही मूलत बध ॥
समयावधि मे समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बध॥१६४॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१६५)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

शार्दूल विक्रीड़ित

लोकः कर्मततोऽस्तु सोऽस्तु च परिस्पन्दात्मकं कर्म तत्
तान्यस्मिन्करणानि संतु चिदचिद्व्यापादनं चास्तु तत् ।
रागादीनुपयोगभूमिमनयन् ज्ञानं भवन्केवलं
बंधं नैव कुतोऽप्युपैत्ययमहो सम्यग्दृगात्मा ध्रुवम् ॥१६५॥

अर्थ- इसलिए वह बहु कर्मो से भरा हुआ लोक है सो भले रहो, वह मन-वचन-कायका चलनस्वरूप कर्म है सो भी भले रहो, वे और वह चेत-अचेतनाका घात भी भले हो, परन्तु अहो ! यह सम्यग्दृष्टि आत्मा, रागादि को उपयोग भूमि में न लाता हुआ, केवल ज्ञानरूप परिणमित होता हुआ, किसी भी कारण से निश्चयत· बन्ध को प्राप्त नहीं होता ॥१६५॥

१६५ ॐ ह्रीं चिदचिद्व्यापादनरहितज्ञानस्वरूपाय नम·।

सत्ताप्राणस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

वसुकर्मो से भरे लोक में कर्म योग भी भले रहो ।
पूर्वोक्त हो करण तथा कारण भी वे भी भले रहो ॥
चेतन तथा चेतना का हो घात भले पर सम्यक् दृष्टि ।
रागादिक उपयोग भूमि में कभी न जाता है समदृष्टि ॥
ज्ञानरूप ही परिणत होता अत नहीं पाता है बध ।
यह विपरीत परिस्थितियों में भी तो करता है कभी न बंध॥

सिद्धों के सम सकल व्यग्रता से विहीन सुख शान्ति स्वरूप।
अरहंतों सम राग द्वेष से रहित वीतरागी निज रूप ॥

समयावधि में समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बंध॥१६५॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१६६)

अब उपरोक्त भावार्थ में कथित आशय को प्रगट करने के लिए,
व्यवहारनय की प्रवृत्ति कराने के लिए, काव्य कहते हैं -

पृथ्वी

तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनां
तदायतनमेव सा किल निरर्गला व्यापृतिः ।
अकामकृतकर्म तन्मतमकारणं ज्ञानिनां
द्वयं न हि विरुध्यते किमु करोति जानाति च ॥१६६॥

अर्थ- तथापि ज्ञानियो को निरर्गल प्रवर्त्तना योग्य नहीं है, क्योंकि वह निरर्गल प्रवर्तन वास्तव मे बन्ध का ही स्थान है । ज्ञानियो के वाछारहित कर्म होता है वह बन्ध का कारण नहीं कहा है, क्योंकि जानता भी है और करता भी है-यह दोनो क्रियाए क्या विरोध रूप नहीं हैं? ॥१६६॥

१६६ ॐ ह्रीं बन्धायतनरूपनिरर्गलव्यापृतिरहिताबन्धस्वरूपाय नम ।

निरर्गलज्ञानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

लोक आदि कारण न बंध के, रागादिक से ही है बंध।
स्वच्छंदता पूर्वक अज्ञानी प्रवृत होकर है अंध ॥
ज्ञान, वांछा रहित कर्म करता है वह न बंध कारण ।
जान रहा है तथा कर रहा यह विरोध है दुख दारुण॥
ज्ञाता होगा तो फिर इसको कभी नहीं होगा कुछ बंध ।
कर्त्ता होगा तो अवश्य ही प्रतिपल प्रतिक्षण होगा बंध ॥

अरहतों सिद्धो के सम हूँ मैं क्षायिक सम्यक्त्वस्वरूप ।
आचार्यों सम शुद्ध त्रयोदशविध चारित्राचारस्वरूप ॥

समयावधि मे समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बध॥१६६॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१६७)

'जो जानता है सो करता नही और जो करता है सो जानता नहीं, करना तो कर्म का राग है, सो अज्ञान है तथा अज्ञान बन्ध का कारण है।' इस अर्थ का काव्य कहते है -

वसंततिलका

जानाति यः स न करोति करोति यस्तु
जानात्ययं न खलु तत्किल कर्मरागः ।
रागं त्वबोधमयमध्यवसायमाहु-
मिथ्यादृशः स नियतं स च बंधहेतु : ॥१६७॥

अर्थ- जो जानता है सो करता नही जो करता है सो जानता नहीं । करना तो वास्तव मे कर्म का राग है, और राग को अज्ञानमय अध्यवसाय कहा है, जो कि वह नियम से मिथ्यादृष्टि के होता है और वह बन्ध का कारण है ॥१६७॥

१६७ ॐ ह्री अबोधमयाध्यवसायरूपरागरहितबोधस्वरूपाय नम ।

नीरागबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जानन हार नही करता है करता जाननहार नहीं ।
वास्तव मे तो जिसे कर्म का राग उसे ही बध सही ॥
यह अज्ञानमयी है अध्यवसान राग को दुखदायी ।
मिथ्यादृष्टि को ही होता कारण बध न सुखदायी ॥
समयावधि में समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बंध॥१६७॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

आचार्यों सम निर्मल पंच प्रकारी धर्माचार स्वरूप ।
सिद्धों सम हूँ समता रस परिपूर्ण समरसिक एक स्वरूप॥

(१६८)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

वसंततिलका

सर्व सदैव नियतं भवति स्वकीय-
कर्मोदयान्मरणजीवितदु:खसौख्यम् ।
अज्ञानमेतदिह यत्तु पर: परस्य
कुर्यात्पुमान्ममरणजीवितदु:खसौख्यम् ॥१६८॥

अर्थ- इस जगत में जीवो के मरण, जीवित, दु ख, सुख सब सदैव नियम से अपने कर्मोदय से होता है, ' दूसरा पुरुष दूसरे के मरण, जीवन, दु ख, सुखको करता है' ऐसा जो मानना वह तो अज्ञान है ॥१६८॥

१६८ ॐ ह्री कर्मोदयजनितमरणादिरहितज्ञास्वरूपाय नम ।

ज्ञानसौख्यस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जीवन मरण सुक्ख दुक्ख सब कर्म उदय में होते हैं ।
जीवन मरण तथा सुख दुख दूजा दूजे को करते हैं ॥
मूढ मान्यता अज्ञानी की इसमे भरा हुआ अज्ञान ।
प्रकृत नियम को भूल गया है इसके उर मे तनिक न ज्ञान॥
समयावधि मे समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बंध॥१६८॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१६९)

पुन इसी अर्थ को दृढ करने वाला और आगामी कथन का सूचक काव्य कहते है-

तर्क वितर्क रहित सिद्धों सम स्व गुण अनत अतर्क्य स्वरूप।
सिद्धों समकर्मांजनविरहित शाश्वत नित्य निरंजन रूप ॥

वसंततिलका

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य
पश्यंति ये मरणजीवितदु:खसौख्यम् ।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकिर्षवस्ते
मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवंति ॥१६९॥

अर्थ- इस अज्ञान को प्राप्त करके जो पुरुष, परसे परके मरण, जीवन, दु ख, सुख को देखते हैं अर्थात् मानते है, वे पुरुष जो कि इस प्रकार अहकार रस से कर्मों को करने के इच्छुक हैं वे नियम से मिथ्यादृष्टि है, अपने आत्मा का घात करने वाले है ॥१६९॥

१६९ ॐ ह्रीं कर्माहंकाररसरहितनिर्मदस्वरूपाय नम।

निर्मानस्वरूपोऽहं ।

ताटक

पर से पर का सुख दुख जीवन मरण आदि जो मान रहे।
अहकार से कर्मो को करने के इच्छुक सदा रहे ॥
ऐसा मिथ्यादृष्टि नियम से करते है आत्मा का घात ।
वे स्वरूप से च्युत हिंसक है जिनवर की मानी ना बात॥
हिंसा तो रागादि भाव है क्रिया नही कुछ हिंसा है ।
जिसके उर मे राग नहीं है उसके हृदय अहिंसा है ॥
समयावधि मे समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बध॥

ॐ ह्री बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१७०)

अब आगे के कथन का सूचक श्लोक कहते हैं -

अनुष्टुप्

मिथ्यादृष्टे: स एवास्य बंधहेतुर्विपर्ययात् ।
य एवाध्यवसायोऽयमज्ञानात्माऽस्य दृश्यते ॥१७०॥

सिद्धों सम जीवंत स्वरूपी अतत्त्व विरहित तत्व स्वरूप ।
सिद्धों के सम शुद्ध आत्मा क्षायिक दर्शन ज्ञान स्वरूप ॥

अर्थ- मिथ्यादृष्टि के जो यह अज्ञानस्वरूप अध्यवसाय दिखाई देता है वह अध्यवसाय ही विपर्ययस्वरूप होने से, उस मिथ्यादृष्टि के बन्ध का कारण है ॥१७०॥

१७० ॐ ह्रीं अज्ञानस्वरूपाध्यवसायरहितस्वरूपाय नम.।

ज्ञानचंद्रस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

मिथ्यादृष्टी का यह अध्यवसाय सदा अज्ञान स्वरूप ।
यही विपर्यय रुप सदा है कारण ही है बध कुरूप ॥
यह मिथ्या अभिप्राय सदा ही है मिथ्यात्व महादुखरूप ।
वही बध का कारण जानो ऐसा ही है बध स्वरूप ॥
समयावधि मे समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बध॥१७०॥

ॐ ह्री बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१७१)

अब इस अर्थ का कलशरूप और आगामी कथन का सूचक श्लोक कहते हैं-

अनुष्टुप्

अनेनाध्यवसायेन निष्फलेन विमोहितः ।
तत्किंचनापि नैवास्ति नामात्मात्मानं करोति यत् ॥१७१॥

अर्थ- इस निष्फल अध्यवसाय से मोहित होता हुआ आत्मा अपने को सर्वरूप करता है,-ऐसा कुछ भी नहीं है जिस रूप अपने को न करता हो ॥१७१॥

१७१ ॐ ह्रीं निष्फलाध्यवसानमोहरहितनिर्मोहस्वरूपाय नम ।

ज्ञानसूर्यस्वरूपोऽहं ।

निष्फल अध्यवसाय विमोहित भ्रमता चहुंगति में अनजान।
विविध रूप करता अपने को शुद्ध रूप का रंच न भान॥

सिद्धों के सम आयुकर्म से रहित शुद्ध अवगाहन रूप ।
रागद्वेष आदिक विभाव परिणाम शून्य अविकल्पस्वरूप ॥

समयावधि में समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बध॥१७१॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१७२)

अब इस अर्थ का कलशरूप तथा आगामी कथन का सूचक काव्य कहते हैं-

इन्द्रवज्रा

विश्वाद्विभक्तोऽपि हि यत्प्रभावा-
दात्मानमात्मा विदधाति विश्वम् ।
मोहैककंदोऽध्यवसाय एष
नास्तीह येषां यतयस्त एव ॥१७२॥

अर्थ- विश्व से भिन्न होने पर भी आत्मा जिसके प्रभाव से अपने को विश्वरूप करता है ऐसा यह अध्यवसाय कि जिसका मोह ही एक मूल है वह-जिनके नही है वे ही मुनि है ॥१७२॥

१७२ ॐ ह्री मोहकदरहितनिर्बंधस्वरूपाय नम ।

ज्ञानसाम्राज्यस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

अखिल जगत से भिन्न आत्मा निज को विश्व रूप करता।
यह है अध्यवसाय मोह का मूल यही बधन करता ॥
किन्तु महामुनियो को होता कभी नहीं यह अध्यवसाय ।
वे तो अपने भीतर रहते मुक्ति प्राप्ति का सतत उपाय ॥
समयावधि मे समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बंध॥१७२॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१७३)

'अध्यवसान त्यागने योग्य कहे हैं इससे ऐसा ज्ञात होता है कि व्यवहार का त्याग और निश्चय का ग्रहण कराया है'-इस अर्थ का, एवं आगामी कथन का सूचक काव्य कहते हैं -

शार्दूल विक्रीडित

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिने-
स्तन्मन्ये व्यहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः ।
सम्यङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कंपमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बन्धंति संतो धृतिम् ॥१७३॥

अर्थ- आचार्यदेव कहते हैं कि सर्व वस्तुओ मे जो अध्यवसान होते हैं वे सब जिनेन्द्र भगवान ने पूर्वोक्त रीति से त्यागने योग्य कहे हैं इसलिये हम यह मानते हैं कि 'पर जिसका आश्रय है ऐसा व्यवहार ही सम्पूर्ण छुडाया है ।' तब फिर, यह सतपुरुष एक सम्यक् निश्चय को ही निषश्चलतया अगीकार करके शुद्धज्ञानघनस्वरूप निज महिमा मे स्थिरता क्यों धारण नहीं करते ?॥१७३॥

१७३ ॐ ह्रीं सर्वाध्यवसानरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

शुद्धज्ञानघनस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

सर्व वस्तुओं मे जो अध्यवसाय त्यागने योग्य सदा।
जिसका आश्रय ही व्यवहार उसे ही तजना श्रेष्ठ सदा॥
सम्यक् निश्चय को अंगीकृत निश्चलता से क्यो न करो।
शुद्ध ज्ञानघन रूप स्वमहिमा धारण जिय क्यो नहीं करो॥
हमको है आश्चर्य आत्मा निज में क्यों सुस्थिर न कभी।
कैसे मुक्ति मार्ग पाएगा खोटे हैं कर्तृत्व सभी ॥
समयावधि में समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बंध॥१७३॥

सिद्धों के सम सदानंद मय परमोत्कृष्ट शुद्ध निजरूप ।
सिद्धों के सम शक्ति अनतानतों का स्वामी निजरूप ॥

(१७४)

अब आगामी कथन का सूचक काव्य कहते हैं-

उपजाति

रागादयो बंधनिदानमुक्ता-
स्ते शुद्धचिन्मात्रमहोऽतिरिक्ताः ।
आत्मा परो वा किमु तन्निमित्त-
मिति प्रणुन्नाः पुनरेवमाहुः ॥१७४॥

अर्थ- रागादिको बन्ध का कारण कहा और उन्हे शुद्धचैतन्यमात्र ज्योति से भिन्न कहा, तब फिर उस रागादिका निमित्त आत्मा है या कोई अन्य?' इस प्रकार प्रश्न से प्रेरित होते हुए आचार्य भगवान पुन इस प्रकार कहते है ॥१७४॥

१७४ ॐ ह्री बन्धनिदानरूपरागादिरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

शुद्धचिन्मात्रमहोस्वरूपोऽहं ।

ताटक

रागादिक को बध हेतु कह आत्म ज्योति से भिन्न कहा।
रागादिक से भिन्न आत्मा या कोई है अन्य बता ॥
समयावधि मे समयसार रस कलश भरो होलो निर्बध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बध॥१७४॥

ॐ ह्री बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१७५)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

उपजाति

न जातु रागादिनिमित्तभाव-
मात्मात्मनो याति यथार्ककांतः ।
तस्मिन्निमित्तं परसंग एव
वस्तुस्वभावोऽमुदेति तावत् ॥१७५॥

सिद्धों के सम नाम कर्म क्षय से हूँ परम सूक्ष्म चिद्रूप ।
सिद्धों सम मैं शुद्ध बुद्ध चैतन्य कल्पतरु फल शिवरूप ॥

अर्थ- सूर्यकातमणि की भांति आत्मा अपने को रागादिका निमित्त कभी भी नहीं होता, उसमें निमित्त परसग ही ऐसा वस्तुस्वभाव प्रकाशमान है ॥१७५॥

१७५ ॐ ह्रीं परसगरहितज्ञानस्वरूपाय नम।

निः संगस्वरूपोऽहं ।

सूर्य कान्त मणि स्वत. परिणमित होती कभी न अग्नि स्वरूप।
सूर्य बिम्ब उसमे निमित्त तब होती है वह अग्नि स्वरूप॥
आत्मा अपने रागादिक का कभी निमित्त नहीं होता ।
आत्मा को तो पर द्रव्यो का ही यह सग निमित्त होता ॥
समयावधि में समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बध॥१७५॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१७६)

' ऐसे वस्तुस्वभाव को जानता हुआ ज्ञानी रागादिको निजरूप नहीं करता'
इस अर्थ का, तथा आगामी गाथा का सूचक श्लोक कहते हैं

अनुष्टुप्

-इति वस्तुस्वभावं स्वं ज्ञानी जानाति तेन सः ।
रागादीन्नात्मनः कुर्यान्नातो भवति कारकः ॥१७६॥

अर्थ- ज्ञानी ऐसे अपने वस्तु स्वभाव को जानता है इसलिये वह रागादि को निजरूप नहीं करता, अत. वह कर्ता नहीं है ॥१७६॥

१७६. ॐ ह्रीं रागादिकारकरहितज्ञानस्वरूपाय नम।

विरागपीयूषस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

ज्ञानी वस्तु स्वरूप जानता है निजरूप न करता राग ।
इसीलिए वह रागादिक का कर्त्ता नहीं न भोक्ता राग ॥

वेदनीय क्षय से सिद्धो सम उज्ज्वल अव्याबाध स्वरूप।
सिद्धों के सम गोत्र कर्म से रहित अगुरुलघुत्व स्वरूप॥

राग राग में ही होता है आत्मा मे न कभी होता ।
जो ज्ञाता दृष्टा होता है वह न राग लिप्त होता ॥
समयावधि मे समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बध॥१७६॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१७७)

'अज्ञानी ऐसे वस्तुस्वभाव को नही जानता इसलिये वह रागादि भावोका कर्त्ता होता है' इस अर्थ का, आगामी गाथा का सूचक श्लोक कहते है-

अनुष्टुप्

इति वस्तुस्वभाव स्वं नाज्ञानी वेत्ति तेन सः ।
रागादीनात्मनः कुर्यादतो भवति कारकः ॥१७७॥

अर्थ- अज्ञानी अपने ऐसे वस्तु स्वभाव को नही जानता इसलिये वह रागादि को अपना करता है, अत वह उनका कर्ता होता है ॥१७७॥

१७७ ॐ ह्री कषायादिकारकरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

एनसरहितोऽहं ।

वीरछद

वस्तु स्वभाव जु नहीं जानता अज्ञानी करता है राग।
अत राग का कर्त्ता बनता करता है रागो का राग ॥
समयावधि मे समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बध॥१७७॥

ॐ ह्री बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

सिद्धो के सम पचेन्द्रिय से रहित निरिन्द्रिय मेरा रूप ।
सिद्धो सम मैं मोह रहित सर्वथा परम निर्मोह स्वरूप ॥

(१७८)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं, जिसमे परद्रव्य के त्यागने का उपदेश है -

शार्दूल विक्रीड़ित

इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं बलात
तन्मूलां बहुभावसंततिमिमामुद्धर्तुकामः समम् ।
आत्मान समुपैति निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतं
येनमूलितबंध एष भगवानात्मात्मनि स्फूर्जति ॥१७८॥

अर्थ- इस प्रकार विचार करके, परद्रव्यमूलक बहुभावो की सतति को एक ही साथ उखाड़ फेकने का इच्छुक पुरुष, उस समस्त परद्रव्य को बलपूर्वक भिन्न करके अतिशयता से बहते हुए पूर्ण एक सवेदन से युक्त अपने आत्मा को प्राप्त करता है, कि जिससे जिसने कर्मबन्धन को मूल से ही उखाड फेका है ऐसा वह भगवान आत्मा अपने मे ही स्फुरायमान होता है ॥१७८॥

१७८ ॐ ह्री परद्रव्यमूलकबहुभावसततिरहितज्ञानस्वरूपाय नम।
पूर्णानदस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

इस प्रकार पर द्रव्य भाव अपने का कर्त्ता विचार कर ।
निमित्त नैमित्तिकता को तुम जानो अब राग द्वेष हरकर ॥
पर आश्रित बहु भावो की सतति को फेको अभी उखाड।
पर द्रव्यों को विक्रम पूर्वक भिन्न करो यह करो जुगाड॥
पर से भिन्न पूर्ण सवेदन युक्त आत्मा को पालो ।
जिसने कर्म मूल को नाशा है वह निज वृष ही पालो ॥
समयावधि में समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बंध॥१७८॥

ॐ ह्रीं बंध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

आचार्यों सम आत्मानदी निश्चय पंचाचार स्वरूप ।
आचार्यों सम सप्त भयो से रहित सदा हूँ निर्भयरूप ॥

(१७९)

अब बन्ध अधिकार को पूर्ण करते हुए उसके अन्तिममगल के रूप में ज्ञान की महिमा के अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

मन्दाक्रान्ता

रागादीनामुदयमदयं दारयत्कारणानां
कार्यं बंधं विविधमधुना सद्य एव प्रणुद्य ।
ज्ञानज्योतिः क्षपिततिमिरं साधु सन्नद्धमेतत्
तद्वद्यद्वत्प्रसरमपरः कोऽपि नास्यावृणोति ॥१७९॥

अर्थ- बन्ध के कारणरूप रागादि के उदय को निर्दयतापूर्वक विदारण करती हुई, उस रागादिके कार्यरूप अनेक प्रकार के बन्ध को अब तत्काल ही दूर करके, यह ज्ञानज्योति कि जिसने अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश किया है वह भलीभाति सज्ज हुई, ऐसी सज्ज हुई,-कि उसके विस्तार को अन्य कोई आवृत नही कर सकता ॥

१७९ ॐ ह्री अज्ञानतिमिररहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

बोधज्योतिस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

बध हेतु रागादि उदय को ज्ञान ज्योति करती विध्वस।
उन रागादिक कार्य रूप बधो को कर देती है ध्वस ॥
जिसने जीता अधकार को भली भाति वह सज्ज हुआ।
उसका निज विस्तार न कोई आवृत करता प्रज्ञ हुआ ॥
जब होता है ज्ञान प्रगट तब ये रागादि नहीं होते ।
उनका कार्य बधना होता वे प्रकाशमय ही होते ॥
समयावधि मे समयसार रस कलश भरो होलो निर्बंध ।
समयावधि जाने पर होगा वसु कर्मो का फिर फिर बध॥१७९॥

ॐ ह्रीं बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

सिद्धों सम केवल ज्ञानादिक गुणपति सकल विमल निजरूप।
सिद्धों के सम मन वच कायत्रियोग रहित निज आत्म स्वरूप॥

भावार्थ- रंगभूमि में बध के स्वाग ने प्रवेश किया था। जब ज्ञान ज्योति प्रगट हुई कि तब वह बध स्वांग को अलग करके बाहर निकल गया।

महाअर्घ्य

गीतिका

एकत्व निश्चय गत समय निर्बंध है निर्द्वंद है ।
अप्रमत्त है न प्रमत्त है ज्ञायक सदैव अबध है ॥
शुद्ध एकाकार है निज से सदैव अभिन्न है ।
निर्भार है पर से सदा परिपूर्ण शुद्ध सदैव है ॥
शरीराश्रित भक्ति भी व्यवहार से है कुछ समय ।
आत्माश्रित भक्ति से ही प्राप्त होता स्वसमय ॥
उल्लसित हो आत्मार्थी निज स्वज्ञायक को भजे ।
शक्ति निज चैतन्य की पा गुण अनतो से सजे ॥

ॐ ह्री ॐ ह्री बध अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय महार्घ्यं नि ।

जयमाला

ताटंक

आत्म तत्त्व की सुदृढ प्रीति जागी जिसके अतर मे है।
ज्ञान ज्योति की सकल जगमगाहट भी निज अभ्यंतर में है ॥
नहीं कहीं अब राग भाव है आशाओं से सदा सुदूर ।
आत्म तत्त्व अनुभव रस पावन जिसके उर में है भरपूर॥
उस ज्ञानी की पावन पद रज भव विभ्रम का करती नाश।
उसको चरणों की छाया में मिल जाता है ज्ञान प्रकाश॥
नव निधि चौदह रत्नों की इच्छा भी रंच न उर मे है।
इन्द्रादिक पद की आकाक्षा लेश नहीं अतर में है ॥

सिद्धों के सम ऊर्ध्व स्वभावी त्रिलोकाग्रपति चिन्मय रूप।
सिद्धों के सम गुण अनत का स्वामी शुद्ध अचिन्त्य स्वरूप॥

प्राणी के भव सागर तारणहार हमारे मुनिवर है ।
स्वयं तरें औरो को तारें निसदेह ऋषीश्वर हैं ॥
वन पर्वत सरिता तरु कोटर में ही जिनका सदा निवास।
जिनके चरणो की सुगध से आती ध्रुव चदन की वास॥
तन इनका नयनाभिराम है मन.इन का है चद्र समान ।
परम शान्त मुद्रा के धारी ज्ञान ध्यानरत श्रेष्ठ महान ॥
आस्रव नाश कर चुके सारे पूर्व बद्ध कर रहे विनाश ।
निश्चित पाने ही वाले हैं उज्ज्वल केवल ज्ञान प्रकाश ॥

ॐ ह्रीं समयसारप्राभृतग्रन्थे बन्धाधिकारे कलशस्वरूप निर्बन्धचित्स्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

आशीर्वाद :

बध भाव को नष्ट करू आत्म कल्याण ।
आप कृपा से हे प्रभो पाऊ पद निर्वाण ॥

इत्याशीर्वाद :

निज स्वरूप समझे बिन कोई भव का पार नहीं पाता ।
जो स्वरूप को पूर्ण समझता वह ही परम सौख्य पाता ॥
क्रियाकान्ड में जो रत रहता वह कर्मो से बंधता है ।
ज्ञान मार्ग का जो निषेध करता वह नरकों में जाता ॥
अन्तर भेद बिना जाने जो बाह्य क्रिया में रहता लीन ।
निज स्वरूप को नहीं जानता चारों गति में दुख पाता ॥

मैं ही हूँ परमार्थ स्वरूपी त्रिभुवन पति परमार्थ अनूप ।
सिद्धों सम केवल दर्शन केवल ज्ञानी हूँ ज्योतिस्वरूप ॥

मोक्ष अधिकार पूजन

स्थापना

गीत

बद मोक्षमार्ग हुआ स्वय भूल से ।
जुड न सका आज तलक मै स्वकूल से ॥
ज्ञान दर्शन चरित्र मै न कभी पा सका ।
भाग नही पाया मै पर .के दुकूल से ॥
मिथ्यात्व मोह से ही पीडित हू आज मै ।
पीछा न छुड़ा पाया हू भव दुक्ख शूल से ॥
मोक्ष सौख्य चाह मेरे उर मे जगी है ।
अत मै बचूगा विभावो की धूल से ॥

ॐ ह्री मोक्षअधिकार समन्वित श्री समयसाराय कलश शास्त्र अत्र अवतर अवतर सवौषट्।
ॐ ह्रीं मोक्षअधिकार समन्वित श्री समयसाराय कलश शास्त्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन।
ॐ ह्रीं मोक्षधिकार समन्वित श्री समयसाराय कलश शास्त्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

चामर

ज्ञान भावना के दीप प्रज्ज्वलित हुए ।
शुद्ध भाव अतरंग उज्ज्वलित हुए ॥
मोक्ष मार्ग मिल गया तो मोक्ष हो गया ।
सर्व संसार भाव पूरा खो गया ॥

सिद्धों के सम अष्ट स्वगुण से मडित विशिष्टाष्ट गुण रूप।
सिद्धों के सम अतरग रत्नत्रय मेरा विमल स्वरूप ॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

ज्ञान दर्शन स्वय ही आके मिल गए ।
मोह मिथ्यात्व के शृग हिल गए ॥
मोक्ष मार्ग मिल गया तो मोक्ष हो गया ।
सर्व ससार भाव पूरा खो गया ॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

शुद्ध सम्यक्त्व पाके ज्ञान झिल गया ।
चरित्र शुद्ध देख असयम भी टल गया ॥
मोक्ष मार्ग मिल गया तो मोक्ष हो गया ।
सर्व ससार भाव पूरा खो गया ॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत नि ।

अनादि से कषाय भाव उर मे थमा था ।
राग द्वेष मेरु के समान जमा था ॥
मोक्ष मार्ग मिल गया तो मोक्ष हो गया ।
सर्व ससार भाव पूरा खो गया ॥

ॐ ह्रीं मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय कामबाण विनाशनाय पुष्प नि ।

आत्मा मे आत्मा का वास होगया ।
शुद्ध मोक्ष मे सदा निवास होगया ॥
मोक्ष मार्ग मिल गया तो मोक्ष हो गया ।
सर्व ससार भाव पूरा खो गया ॥

मै ही परम सत्य शिव सुन्दर हूँ अनुपम सत्यार्थ स्वरूप।
मैं निश्चय भूतार्थ तत्व हूँ एकमात्र भूतार्थ स्वरूप ॥

ॐ ह्रीं मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि ।

विलीयमान हो गए विभाव भाव सब ।
जागरूक हो गए स्वभाव भाव अब ॥
मोक्ष मार्ग मिल गया तो मोक्ष हो गया ।
सर्व ससार भाव पूरा खो गया ॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि ।

कर्म भाव भी तो आज कही चल दिए ।
जब तलक रहे हृदय मे बहुत छल किए ॥
मोक्ष मार्ग मिल गया तो मोक्ष हो गया ।
सर्व ससार भाव पूरा खो गया ॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि ।

विमूढ बुद्धि की न शेष ऑच रही है ।
मोक्ष फल की भावना ही नाच रही है ॥
मोक्ष मार्ग मिल गया तो मोक्ष हो गया ।
सर्व ससार भाव पूरा को गया ॥

ॐ ह्रीं मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि ।

ज्ञान कैवल्य पुष्प पल्लवित हुए ।
ज्ञान चेतना के प्राण उल्लसित हुए ॥
कर्म चेतना के भाव क्षय त्वरित हुए ।
निमिष मात्र में ये धूल धूसरित हुए ॥

अरहतो सिद्धो के सम हूँ मै क्षायिक चरित्र स्वरूप ।
आचार्यों सम निश्चय षड आवश्यक मेरा निश्चय रूप ॥

मोक्ष मार्ग मिल गया तो मोक्ष हो गया ।
सर्व ससार भाव पूरा खो गया ॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

अर्घ्यावलि

(मोक्ष अधिकार)

(१८०)

प्रथम टीकाकार आचार्यदेव कहते है कि 'अब मोक्ष प्रवेश करता है ।' जैसै नृत्यमच पर स्वॉग प्रवेश करता है उसी प्रकार यहॉ मोक्ष तत्त्व का स्वॉग प्रवेश करता है । वहॉ ज्ञान सर्व स्वॉग का ज्ञाता है, इसलिये अधिकार के प्रारम्भ मे आचार्यदेव सम्यग्ज्ञान की महिमा के रूप मे मगलाचरण कहते है-

शिखरिणी

द्विधाकृत्य प्रज्ञाक्रकचदलनाद्बंधपुरुषौ
नयन्मोक्षं साक्षात्पुरुषमुपलंभैकनियतम् ।
इदानीमुन्मज्जत्सहजपरमानंदसरसं
परं पूर्ण ज्ञानं कृतसकलकृत्यं विजयते ॥१८०॥

अर्थ-अब प्रज्ञारूपी करवतसे विदारण द्वारा बन्ध और पुरुष, को द्विधा करके, पुरुष को-कि जो पुरुष मात्र अनुभूति के द्वारा ही निश्चित है । उसे साक्षात् मोक्ष प्राप्त कराता हुआ, पूर्ण ज्ञान जयवन्त प्रवर्तता है। वह ज्ञान प्रगट होने वाले सहज परमानन्द के द्वारा सरस अर्थात् रसयुक्त है, उत्कृष्ट है, और जिसने करने योग्य समस्त कार्य कर लिये है ऐसा है ॥१८०॥

१८० ॐ ह्री सहजपरमानदसरसस्वरूपाय नम ।

भरितावस्थोऽहं ।

आचार्यो सम सदा जागृत निश्चय पचाचार स्वरूप ।
आचार्यो सम अष्ट सुविध दर्शन आचार स्वरूप अनूप ॥

चामर

ज्ञान, बध-पुरुष को भिन्न भिन्न दो करता ।
ज्ञान ही पुरुष को मोक्ष सुखमयी करता ॥
निर्मल दैदीप्यमान मग्न अतरग मे ।
आनद आ रहा है दोनो के भग मे ॥
ज्ञान रस युक्त जीव जयवत उत्कृष्ट है ।
ज्ञान कथन मगलमय सर्वोत्कृष्ट है ॥
मोक्ष प्राप्ति का उपाय एक मात्र आत्म ज्ञान ।
समयसार कलश की जग मे महिमा महान ॥१८०॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१८१)

अब इसका कलशरूप काव्य कहते हैं-

स्रग्धरा

प्रज्ञाछेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः
सूक्ष्मेऽन्तः सधिबन्धे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य ।
आत्मानं मग्नमंतः स्थिरविशदलसद्धाम्नि चैतन्यपूरे
बन्धं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्नभिन्नौ ॥१८१॥

अर्थ- यह प्रज्ञारूपी तीक्ष्ण छैनी प्रवीण पुरुषो के द्वारा किसी भी प्रकार से सावधानतया पटकने पर, आत्मा और कर्म-दोनो के सूक्ष्म अन्तरग सन्धि के बन्ध मे शीघ्र पडती है। किसप्रकार पड़ती है? वह आत्मा को तो जिसका तेज अन्तरंग में स्थिर और निर्मलतया दैदीप्यमान है ऐसे चैतन्यप्रवाह मे मग्न करती हुई और बन्ध को अज्ञानभाव में निश्चल करती हुई-इस प्रकार आत्मा और बन्ध को सर्वत भिन्न-भिन्न करती हुई पडती है ॥१८१॥

१८१ ॐ ह्रीं सूक्ष्मान्त सधिबन्धरहितानदस्वरूपाय नम ।

चैतन्यपुरस्वरूपोऽहं ।

मै भी परम शुक्ल ध्यानमय उज्ज्वल परम समाधिस्वरूप।
आचार्यों सम मैं भी हूँ द्वादश विधितप आचार स्वरूप ॥

चामर

प्रज्ञा, रूपी तीक्ष्ण छैनी निपुणो द्वारा ।
निष्प्रमाद पटकते जैसे हो यह आरा ॥
कर्म और आत्मा प्रथक प्रथक कर देता।
चैतन्य का प्रवाह अतरग भर देता ॥
निर्मल दैदीप्यमान मग्न अतरग मे ।
आनद आ रहा है दोनो के भग मे ॥
ज्ञान रस युक्त जीव जयवत उत्कृष्ट है ।
ज्ञान कथन मगलमय सर्वोत्कृष्ट है ॥
मोक्ष प्राप्ति का उपाय एक मात्र आत्म ज्ञान ।
समयसार कलश की जग मे महिमा महान ॥१८१॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१८२)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

शार्दूल विक्रीडित

भित्त्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तुं हि यच्छक्यते
चिन्मुद्राकितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यहम् ।
भिद्यन्ते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि
भिद्यन्तां न भिदास्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति ॥१८२॥

अर्थ-जो कुछ भी भेदा जा सकता है उस सबको स्वलक्षण के बल से भेदकर, जिसकी चिन्मुद्रा से अकित निर्विभाग महिमा है ऐसा शुद्ध चैतन्य ही मैं हूँ । यदि कारक के, अथवा धर्मों के, या गुणो के भेद हो, तो भले हो, किन्तु शुद्ध विभु, ऐसा चैतन्यभाव मे तो कोई भेद नहीं है ॥१८२॥

जिस प्रकार सिद्धो की आत्मा मैं भी वैसा आत्म स्वरूप।
सिद्धो सम जीवत्व भावमय मै हूँ पचम भाव स्वरूप ॥

१८२ ॐ ह्री चिन्मुद्रास्वरूपाय नम।

शुद्धचिद्देवस्वरूपोऽहं ।

चामर

चिन्मय स्वलक्षण निज बल से ही भेदता ।
शुद्ध चैतन्य ही अतर मे वेदता ॥
धर्म और गुणो के चाहे जो भेद हो ।
चैतन्य भाव मे तो न कोई भेद दो ॥
मोक्ष प्राप्ति का उपाय एक मात्र आत्म ज्ञान ।
समयसार कलश की जग मे महिमा महान ॥१८२॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१८३)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

शार्दूल विक्रीड़ित

अद्वैतापि हि चेतना जगति चेद् दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्
तत्सामान्यविशेषरूप विरहात्साऽस्तित्वमेव त्यजेत् ।
तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापका-
दात्मा चान्तमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्तु चित् ॥१८३॥

अर्थ- जगत मे निश्चयत चेतना अद्वैत है तथापि यदि वह दर्शनज्ञानरूप को छोड दे तो सामान्य विशेषरूप के अभाव से अपने अस्तित्व को ही छोड देगी; और इस प्रकार चेतना अपने अस्तित्व को छोडने पर, चेतन के जडत्व आ जायेगा-अर्थात् आत्मा जड हो जाय और व्यापक के बिना व्याप्य जो आत्मा वह नष्ट हो जायेगा। इसलिये चेतना नियम से दर्शनज्ञानरूप ही हो ॥१८३॥

१८३ ॐ ह्री चितिशक्तिस्वरूपाय नम.।

दृशिशक्तिस्वरूपोऽहं ।

स्त्री पुरुष नपुसक वेदो से विरहित निर्वेद स्वरूप ।
जीव द्रव्य निज परमानदी परम वीतरागी निजरूप ॥

चामर

निश्चय से चेतना अद्वैत एक है ।
कर्मो के मोह से होती अनेक है ॥
यदि वह दर्शन ज्ञान रूप कभी छोड दे ।
तो निज अस्तित्व को उस क्षण ही तोड दे ॥
कर्मो के सग मे जड जैसी जानिए ।
ज्ञान के सग है तो ज्ञान ही प्रमाणिए ॥
चेतना के बिना आत्मा न कही रहता है ।
दर्शन स्वज्ञान रूप नियम से वह रहता है ॥
मोक्ष प्राप्ति का उपाय एक मात्र आत्म ज्ञान ।
समयसार कलश की जग मे महिमा महान ॥१८३॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१८४)

चामर

अब आगामी कथन का सूचक श्लोक कहते है -

इन्द्रवज्रा

एकश्चितश्चिन्मय एव भावो
भावा: परे ये किल ते परेषाम् ।
ग्राह्यस्ततश्चिन्मएवभावो
भावा: परे सर्वत एव हेया: ॥१८४॥

अर्थ– चैतन्य का तो एक चिन्मय ही भाव है, और जो अन्यभाव हैं वे वास्तव में दूसरो के भाव है, इसलिए चिन्मय भाव ही ग्रहण करने योग्य है, अन्य भाव सर्वथा त्याज्य हैं ॥१८४॥

१८४ ॐ ह्री चिन्मयज्योतिस्वरूपाय नम ।

सच्चित्स्वरूपोऽहं ।

निर्विकल्प हूँ अविकल्पी हूँ मात्र स्वसंवेदन मयी अनूप ।
मै अभेद रत्नत्रय स्वामी परमध्यान पति ध्यान स्वरूप ॥

चामर

चैतन्य का तो एक चिन्मय ही भाव है ।
जो अन्य भाव है दूसरो का भाव है ॥
चिन्मय का भाव ही ग्रहण योग्य जानिए ।
अन्य भाव सर्वथा ही पूर्ण त्याज्य मानिए ॥
मोक्ष प्राप्ति का उपाय एक मात्र आत्म ज्ञान ।
समयसार कलश की जग में महिमा महान ॥१८४॥

ॐ ह्रीं मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१८५)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

शार्दूल विक्रीड़ित

सिद्धांतोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम् ।
एते ये तु समुल्लसंति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ॥१८५॥

अर्थ- जिनके चित्त का चरित्र उदात्त है ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करें कि 'मै तो सदा शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही हूँ, और जो यह भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं वे मैं नहीं हूँ, क्योकि वे सभी मेरे लिये परद्रव्य हैं ' ॥१८५॥

१८५ ॐ ह्रीं शुद्धचिन्मयपरमज्योतिस्वरूपाय नम.।

निजानंदस्वरूपोऽहं ।

चामर

जिनके चित् का चरित्र तो उदात्त उज्ज्वल है ।
उसको ही सेवे जो परम ज्योति निर्मल है ॥
अपने से भिन्न विविध भाव वह मैं नहीं ।
वह सब परद्रव्य हैं मेरे तो है नहीं ॥

ज्ञान स्वभाव भूत लक्षण से मै सदैव ही ज्ञान स्वरूप ।
सब व्यवहार भेद से विरहित मै हूँ निश्चय धर्म स्वरूप ॥

मोक्ष प्राप्ति का उपाय एक मात्र आत्म ज्ञान ।
समयसार कलश की जग मे महिमा महान ॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१८६)

अब आगामी कथन का सूचक श्लोक कहते है-

अनुष्टुप्

परद्रव्यग्रह कुर्वन् बध्येतैवापराधवान् ।
बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो यति : ॥१८६॥

अर्थ- जो परद्रव्य को ग्रहण करता है वह अपराधी है इसलिये बन्ध मे पडता है, और जो स्वद्रव्य मे ही सवृत है ऐसा यति निरपराधी है इसलिए बँधता नही है ॥१८६॥

१८६ ॐ ह्री परद्रव्यग्रहणरहितानदस्वरूपाय नम ।

अक्षयानदस्वरूपोऽह ।

चामर

पर द्रव्य ग्रहण कर्त्ता ही है अपराधी ।
पर द्रव्य जो न ग्रहण करे वह निरपराधी ॥
जो स्वद्रव्य मे ही सवृत्त है वोही महान ।
जो रत पर द्रव्य मे मूढो मे वही प्रधान ॥
मोक्ष प्राप्ति का उपाय एक मात्र आत्म ज्ञान ।
समयसार कलश की जग मे महिमा महान ॥

ॐ ह्रीं मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१८७)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

मालिनी

अनवरतमनंतबध्यते सापराध:
स्पृशति निरपराधो बन्धनं नैव जातु ।

ज्ञान मात्र से लोकालोक जानने वाला ज्ञान स्वरूप ।
दर्शन से यह लोकालोक देखने वाला दर्शन रूप ॥

नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो
भवति निरपराधः साधु शुद्धात्मसेवी ॥१८७॥

अर्थ- सापराध आत्मा निरन्तर अनन्त पुद्गलपरमाणुरूप कर्मों से बँधता है, निरपराध आत्मा बन्धनक को कदापि स्पर्श नही करता । जो सापराध आत्मा है वह तो नियम से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ सापराध है, निरपराध आत्मा तो भलीभाँति शुद्ध आत्मा का सेवन करने वाला होता है ॥१८७॥

१८७ ॐ ह्री अनन्तपुद्गलपरमाणुरूपबन्धनरहितानदस्वरूपाय नम ।

निर्दोषस्वरूपोऽहं ।

चामर

सापराध आत्मा कर्मो से बंधता है ।
निरपराध आत्मा कभी नही बधता है ॥
जो अशुद्ध सेवन करता वह है सापराध ।
शुद्ध आत्मा का सेवक ही है निरपराध ॥
मोक्ष प्राप्ति का उपाय एक मात्र आत्म ज्ञान ।
समयसार कलश की जग मे महिमा महान ॥१८७॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१८८)

अब इस कथन का कलशरूप काव्य कहते हैं-

मालिनी

अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां
प्रलीन चापलमुन्मूलितमालंबनम् ।
आत्मन्येवालानितं च चित्त-
मासंपूर्ण विज्ञानघनोपलब्धेः ॥१८८॥

अर्थ- इस कथन से, सुखासीन प्रमादी जीवो को हत कहा है चापल्य का प्रलय किया

त्रिविध कर्म मल रहित सर्वथा शुद्ध बुद्ध ज्ञानी का रूप ।
अरहतो सम दर्शन ज्ञान अनत वीर्य सुख मडित रूप ॥

है पर आलम्बन को उखाड फेका है जब तक सम्पूर्ण विज्ञानघन आत्मा की प्राप्ति न हो तब तक आत्मारूपी स्तम्भ से ही चित्त को बाँध रखा है पू वमे चित्त भ्रमण रता था उसे शुद्ध चैतन्यमात्र आत्मा मे ही लगाने को कहा है क्योकि वही मोक्ष का कारण है ॥१८८॥

१८८ ॐ ह्री चापलकार्यरहितनिश्चलानदस्वरूपाय नम ।

विज्ञानघनानदोऽहं ।

चामर

सुखासीन जीव प्रमादी को हत कहते है ।
उनको समझाने को ज्ञानी मुनि कहते है ॥
आत्म क्रिया से विहीन मोक्ष कारण नही ।
द्रव्य प्रतिक्रमण हेय निर्दोष है नही ॥
मोक्ष प्राप्ति का उपाय एक मात्र आत्म ज्ञान ।
समयसार कलश की जग मे महिमा महान ॥१८८॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१८९)

यहाँ निश्चयनय से प्रतिक्रमणादि को विषकुम्भ कहा और अप्रतिक्रमणादिको अमृतकुम्भ कहा इसलिये यदि कोई विपरीत समझकर प्रतिक्रमणादिको छोडकर प्रमादी हो जाये तो उसे समझाने के लिये कलशरूप काव्य कहते हैं -

वसंततिलक

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतं
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात् ।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः
कि नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निषप्रमादः ॥१८९॥

अर्थ- जहाँ प्रतिक्रमण को ही विष कहा है, वहा अप्रतिक्रमण अमृत कहा से हो सकता है

? तब फिर मनुष्य नीचे ही नीचे गिरता हुआ प्रमादी क्यो होता है ? निष्प्रमाद होता हुआ ऊपर ही ऊपर क्यो नही चढता?

१८९ ॐ ह्री प्रतिक्रमणादिविकल्परहितानदस्वरूपाय नम.।

शिवसुधास्वरूपोऽहं ।

चामर

प्रतिक्रमण को ही जब मुनिवर विष कहते है ।
क्यो फिर अप्रतिक्रमण अमृत हो सकते है ॥
हाय हाय प्रमादी नीचे क्यो गिरता है ।
निष्प्रमादी हो क्यो ऊपर को न चढता है ॥
मोक्ष प्राप्ति का उपाय एक मात्र आत्म ज्ञान ।
समयसार कलश की जग मे महिमा महान ॥१८९॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१९०)

अब इस अर्थ को दृढ करता हुआ काव्य कहते हैं–

प्रमादकलित: कथं भवति शुद्धभावोऽलस:
कषायभरगौरवादलसता प्रमादो यत: ।
अत: स्वरसनिर्भरे नियमित: स्वभावे भवन्
मुनि: परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते वाऽचिरात् ॥१९०॥

अर्थ- कषाय के भार से भारी होने से आलस्य का होना सो प्रमाद है, इसलिये यह प्रमादयुक्त आलस्यभाव शुद्धभाव कैसे हो सकता है? इसलिये निजरस से परिपूर्ण स्वभाव मे निश्चल होने वाला मुनि परम शुद्धता को प्राप्त होता है अथवा शीघ्र-अल्पकाल में ही-छूट जाता है ॥१९०॥

१९० ॐ ह्री कषायभरगौरवरहितानंदस्वरूपाय नम ।

निरालसस्वरूपोऽहं ।

उपाध्याय सम मेरी आत्मा द्वादशागवाणी अनुरूप ।
साधु समान आत्मा मेरी वसु प्रवचन मातृका स्वरूप ॥

चामर

भार है कषाय का अलस ही प्रमाद है ।
प्रमाद युक्त को न कभी कोई शुद्धभाव है ॥
निज रस से पूर्ण अचल मुनि शुद्धता पाते ।
अल्प काल मे ही छूट कर्मो से वे जाते ॥
मोक्ष प्राप्ति का उपाय एक मात्र आत्म ज्ञान ।
समयसार कलश की जग मे महिमा महान ॥१९०॥

ॐ ह्री मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१९१)

अब, मुक्त होने का अनुक्रम-दर्शक काव्य कहते है -

व्यक्त्वाड शुद्धि विधायि तत्किल परद्रव्य समग्र स्वय ।
स्वद्रव्येरतिअति यः स नियतसर्वापराध च्युत : ॥
बंदध्वसमुपेत्य नित्यमुदितः स्वज्योतरच्छोच्छल-
च्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धो भवन्मुच्यते ॥१९१॥

अर्थ- जो पुरुष वास्तव मे अशुद्धता करने वाले समस्त परद्रव्य को छोडकर स्वय परद्रव्य मे लीन होता है, वह पुरुष नियम से सर्व अपराधो से रहित होता हुआ, बन्ध के नाश को प्राप्त होकर नित्य-उदित अपनी ज्योति से निर्मलतया उछलता हुआ जो चैन्यरूपी अमृत के प्रवाह द्वारा जिसकी पूर्ण महिमा है ऐसा शुद्ध होता हुआ, कर्मों से मुक्त होता है ॥१९१॥

१९१ ॐ ह्री अशुद्धिविधायिपरद्रव्यरहितानदस्वरूपाय नम ।

चैतन्यामृतपूरस्वरूपोऽहं ।

चामर

जो अशुद्ध पर द्रव्य तज स्व द्रव्य लीन हो ।
नियम से वो निरपराध ज्ञान रस प्रवीण हो ॥
नित्योदित शक्ति से बध नाश करता है ।
चैतन्यामृत प्रवाह पा मुक्त होता है ॥

मंगलोत्तम शरण भूत मेरी आत्मा है सहज स्वरूप ।
पाँचों परमेष्ठी सम मेरी आत्मा है परमेष्ठि स्वरूप ॥

मोक्ष प्राप्ति का उपाय एक मात्र आत्म ज्ञान ।
समयसार कलश की जग में महिमा महान ॥१९१॥

ॐ ह्रीं मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१९२)

अब मक्ष अधिकार को पूर्ण करते हुए उसके अन्तिम मगल रूप पूर्ण ज्ञान की महिमा का कलशरूप काव्य कहते हैं -

बंधच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेत-
न्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकांतशुद्धम् ।
एकाकारस्वरसभरतोऽत्यंतगंभीरधीरं
पूर्णज्ञान ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि ॥१९२॥

अर्थ- कर्मबन्ध के छेदने से अतुल अक्षय मोक्ष का अनुभव करता हुआ, नित्य उद्योतवाली सहज अवस्था जिसकी खिल उठी है ऐसा एकसाथ शुद्ध और एकाकार निजरस की अतिशयता से जो अत्यन्त गम्भीर और धीर है ऐसा यह पूर्ण ज्ञान प्रकाशित हो उठा है और अपनी अचल महिमा मे लीन हुआ है ॥१९२॥ टीका इस प्रकार मोक्ष बाहर निकल गया ।

भावार्थ- रगभूमि मे मोक्ष का स्वाग आया था। जहॉ ज्ञान प्रगट हुआ वहा उस मोक्ष का स्वॉग रगभूमि से बाहर निकल गया ।

१९२ ॐ ह्री अक्षयातुलानदस्वरूपाय नम.।

पूर्णज्ञानस्वरूपोऽहं ।

चामर

कर्म बध छेदने से मोक्ष अनुभव हुआ ।
नित्योद्योत दशा खिल उठी तो शुद्ध हुआ ॥
है एकाकार और गभीर धीर है ।
निज रस की अतिशयता का ही समीर है ॥

ज्ञानमयी वैराग्य भाव उपयुक्त हो गया उसी समय ।
द्रव्य दृष्टि से सदा शुद्ध निज भाव हो गया उसी समय॥

पूर्ण ज्ञान हो गया प्रकाशित निजतर मे ।
आत्म द्रव्य जाज्ज्वल्यमान प्रगट निज घर मे ॥
मोक्ष प्राप्ति का उपाय एक मात्र आत्म ज्ञान ।
समयसार कलश की जग मे महिमा महान ॥१९२॥

ॐ ह्रीं समयसारप्राभृतग्रन्थे मोक्षाधिकारे कलशस्वरूप परमानदस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्य

समान सवैया

श्रुताभ्यास का नीर सिचकर ज्ञान भाव की उपज बढाओ।
पहिले गुणस्थान के ऊपर चौथे में पग सहज बढाओ॥
फिर ऊपर चढते जाना तुम दसवें में कुछ क्षण थम जाओ ।
ग्यारहवें को लाघ शीघ्र ही बारहवें की महिमा पाओ ॥
तेरहवा हो प्रगट स्वयं ही पद अरहत त्वरित दे देगा ।
धरती छूना नहीं पडेगी अंतरीक्ष तुम को लेलेगा ॥
परमौदरिक देह बनेगी स्वपर प्रकाश अतर होगा ।
सकल ज्ञेय ज्ञायक तू होगा आत्म ज्ञान का यह फल होगा॥
वीतराग सर्वज्ञ दशा ही सादि अनत काल छाएगी ।
सिद्ध दशा भी परम विमलता तुमको देकर हर्षाएगी ॥

ॐ ह्रीं मोक्ष अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय महाअर्घ्यं नि ।

जयमाला

छंद-मानव

रागादि भाव क्षय करने का ही मेरा निश्चय है ।
तत्त्वो के निर्णय पूर्वक शुद्धात्मा का आश्रय है ॥
सम्यक्त्व ज्ञान गगा में अवगाहन नित करता हू ।
आताप विभावों का मैं शीतल होकर हरता हू ॥

जीव तत्व का आलबन संवर निर्जरा मोक्ष हित रूप ।
है आलबन अजीव तत्व का आस्त्रव बंध अहित दुख रूप ॥

ऋद्धिया चरण मे आतीं तो उन्हे न गले लगाता ।
सिद्धिया अगर बहकातीं तो उनको त्वरित भगाता ॥
मै आत्म ऋद्धि सम्पन्नित क्यो अन्य ऋद्धियां चाहू ।
मै आत्म सिद्धि से शोभित क्यो और सिद्धिया चाहू ॥
मुझको न मोक्ष की इच्छा बधन से मुझे न भय है ।
समभावी साम्य स्वभावी त्रिभुवन मे मेरी जय है ॥
है यथाख्यात चिन्हाकित जय ध्वज मेरे द्वय कर मे ।
मेरी श्रेणी क्षायिक है कैवल्य विभा अतर मे ॥
अरहतो जैसा ही हू उनमे मुझमे क्या अतर ।
सिद्धो जैसा गुणपति हू शाश्वत ध्रुव पद बाह्यान्तर ॥

ॐ ह्रीं समयसार प्राभृतग्रथे मोक्ष अधिकारे कलश स्वरूप परमानद स्वरूप जयमाला पूर्णार्घ्य नि ।

आशीर्वाद :

मोक्ष महल का प्राप्त हो नाथ प्रथम सोपान।
सम्यक् दर्शन नाम है जो है निज श्रद्धान ॥

इत्याशीर्वाद :

परिणति स्वभाव ने गीत गाया है ।
मेरे चेतन ने नया मीत पाया है ॥
तोड़े मिथ्यात्व के सारे ही बंधन ।
मोह के भाव को ये जीत आया है ॥
सम्यक्त्व निधि पायी अपनी ही शक्ति से ।
सारे विभावों से ये रीत आया है ॥

आचार्यों सम आत्मानदी निश्चय पचाचार स्वरूप ।
आचार्यों सम सप्त भयों से रहित सदा हूँ निर्भयरूप ॥

ॐ

श्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार पूजन

स्थापना

भुजगी

असीमित को इस बार सीमित करो ।
स्वय को कभी ना असीमित करो ॥
तजो साथ अविरति का होकर असग ।
असयम को तज करके सयम धरो ॥
ये सयम ही भव पार ले जाएगा ।
स्व सयममयी अपना जीवन करो ॥
सहज ज्ञान की पूर्ण पाओ विशुद्धि ।
त्वरित सर्व ससार के दुख हरो ॥

ॐ ह्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र अवतर अवतर सवौषट् ।

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन ।

ॐ ह्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

वीरछंद

सुगति प्राप्त करने के इच्छुक सुकृत मे रहते तल्लीन।
जिन्हे कुगतियो मे जाना है वे सुकृत से सदा विहीन ॥

सिद्धो सम केवल ज्ञानादिक गुण पति सकल विमलनिजरूप।
सिद्धों के सम मन वच कायत्रियोग रहित निज आत्म स्वरूप॥

सर्व विशुद्धि ज्ञान की महिमा तीन लोक मे अनुपम हैं ।
महामोक्ष फल इस प्राणी को देती बिना परिश्रम है ॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

सदाचरण की भूमि बनाने का पुरुषार्थ प्रथम पुरुषार्थ ।
इसी भूमि पर निर्मित होता ज्ञान भवन उत्तम सत्यार्थ ॥
सर्व विशुद्धि ज्ञान की महिमा तीन लोक मे अनुपम है ।
महामोक्ष फल इस प्राणी को देती बिना परिश्रम है ॥

ॐ ह्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

आत्म ज्ञान का यही मार्ग है जो सदैव ही शुद्ध अडोल।
करुणा दया प्रेम अनुकपा करती है जिसमे कल्लोल ॥
सर्व विशुद्धि ज्ञान की महिमा तीन लोक मे अनुपम है ।
महामोक्ष फल इस प्राणी को देती बिना परिश्रम है ॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत नि ।

इसी भाति चलने पर होता सफल जीव का निज पुरुषार्थ।
एक बार यदि बोधि लाभ हो तो होता निश्चय भूतार्थ ॥
सर्व विशुद्धि ज्ञान की महिमा तीन लोक मे अनुपम है ।
महामोक्ष फल इस प्राणी को देती बिना परिश्रम है ॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय कामबाण विनाशनाय पुष्प नि ।

अवर्णनीय अमरत्व ज्ञान से ही सदैव होता है प्राप्त ।
वन्दनीय अमरत्व विकासित होता है जिय होता आप्त ॥

सिद्धों के सम ऊर्ध्व स्वभावी त्रिलोकाग्रपति चिन्मय रूप।
सिद्धो के सम गुण अनत का स्वामी शुद्ध अचिन्त्य स्वरूप॥

सर्व विशुद्धि ज्ञान की महिमा तीन लोक मे अनुपम है ।
महामोक्ष फल इस प्राणी को देती बिना परिश्रम है ॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

दर्शन ज्ञान स्वरूप अरूपी एक आत्मा नित्य महान ।
त्रैकालिक ध्रुव परमानदी सदा शाश्वत का हो ध्यान ॥
सर्व विशुद्धि ज्ञान की महिमा तीन लोक मे अनुपम है ।
महामोक्ष फल इस प्राणी को देती बिना परिश्रम है ॥

ॐ ह्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय मोहन्धकार विनाशनाय दीप नि ।

तब होती सम्पूर्ण शक्तिया सचालित चेतन द्वारा ।
महिमामयी अनत गुण सहित क्षय करता भव दुखकारा॥
सर्व विशुद्धि ज्ञान की महिमा तीन लोक मे अनुपम है ।
महामोक्ष फल इस प्राणी को देती बिना परिश्रम है ॥

ॐ ह्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

रवि कैवल्य प्राप्त होता है होता सिद्ध स्वपद सम्पन्न ।
नहीं कभी भव मे आता फिर राग नही होता उत्पन्न ॥
सर्व विशुद्धि ज्ञान की महिमा तीन लोक मे अनुपम है ।
महामोक्ष फल इस प्राणी को देती बिना परिश्रम है ॥

ॐ ह्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय मोक्ष फल प्राप्ताय फल नि ।

अतर लोचन से देखो शुद्धात्म तत्त्व निज का सौन्दर्य।
अनुभव से ही तुम पाओगे परम ज्ञान मय निज ऐश्वर्य॥

मैं ही हूँ परमार्थ स्वरूपी त्रिभुवन पति परमार्थ अनूप ।
सिद्धो सम केवल दर्शन केवल ज्ञानी हूँ ज्योतिस्वरूप ॥

सर्व विशुद्धि ज्ञान की महिमा तीन लोक मे अनुपम है ।
महामोक्ष फल इस प्राणी को देती बिना परिश्रम है ॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

अर्घ्यावलि

(सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार)

(१९३)

प्रथम टीकाकार आचार्यदेव कहते हैं कि 'अब सर्वविशुद्धज्ञान प्रवेश करता है' । मोक्षतत्त्व के स्वाग के निकल जाने के बाद सर्वविशुद्धज्ञान प्रवेश करता है ।' रगभूमि मे जीव-अजीव, कर्ताकर्म, पुण्य-पाप, आस्रव, सवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष ये आठ स्वाग आये, उनका नृत्य हुआ और वे अपना-अपना स्वरूप बताकर निकल गये । अब सर्व स्वाँगो के दूर होने पर एकाकार सर्वविशुद्धज्ञान प्रवेश करता है । उसमें प्रथम ही, मंगलरूप से ज्ञानपुञ्ज आत्मा की महिमा का काव्य कहते हैं -

मन्दाक्रान्ता

नीत्वा सम्यक् प्रलयमखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान्
दूरीभूतः प्रतिपदयं बंधमक्षप्रक्लृप्तेः ।
शुद्धः शुद्धः स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चि-
ष्टंकोत्कीर्ण प्रकट महिमा स्फूर्जति ज्ञानपुंजः ॥१९३॥

अर्थ- समस्त कर्ता-भोक्ता आदि भावों को सम्यक् प्रकार से नाश को प्राप्त कराके पद-पद पर बध-मोक्ष की रचना से दूर वर्तता हुआ, शुद्ध-शुद्ध जिसका पवित्र अचल तेज निजरस के विस्तार से परिपूर्ण है ऐसा, और जिसकी महिमा टंकोत्कीर्ण प्रगट है ऐसा यह, ज्ञानपुञ्ज आत्मा प्रगट होता है ॥१९३॥

सिद्धों के सम अष्ट स्वगुण से मंडित विशिष्टाष्ट गुण रूप।
सिद्धो के सम अतरग रत्नत्रय मेरा विमल स्वरूप ॥

१९३ ॐ ह्री टङ्कोत्कीर्णज्ञानपुजस्वरूपाय नम·।

पवित्राचलार्चिस्वरूपोऽहं ।

चामर

ज्ञान रूप आत्मा बध मोक्ष कृति रहित ।
तथा कर्तृत्व भोक्तृत्व भाव से रहित ॥
अकर्तृत्व भाव का यह धनी महान है ।
अभोक्तृत्भाव का यही नृप प्रधान है ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥१९३॥

ॐ ह्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१९४)

अब सर्वविशुद्ध ज्ञान को प्रगट करते है । उसमे प्रथम 'आत्मा कर्ता-भोकात भाव से रहित है' इस अर्थ का, आगामी गाथाओ का सूचक श्लोक कहते हैं --

अनुष्टभ्

कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत् ।
अज्ञानादेव कर्ताय तदभावादकारका: ॥१९४॥

अर्थ- कर्तृत्व इस चित्स्वरूप आत्मा का स्वभाव नही है, जैसे भोक्तृत्व स्वभाव नहीं है । वह अज्ञान से ही कर्ता है, अज्ञान का अभाव होने पर अकर्ता है ॥१९४॥

१९४ ॐ ह्रीं कर्ताभोक्तारहितज्ञानस्वरूपाय नम.।

अभोक्तास्वरूपोऽहं ।

चामर

कर्तृत्व चित्स्वरूप आत्म का स्वभाव नहीं ।
भोर्क्तृत्व चित्स्वरूप आत्म का स्वभाव नहीं ॥

मैं ही परम सत्य शिव सुन्दर हूँ अनुपम सत्यार्थ स्वरूप।
मै निश्चय भूतार्थ तत्व हूँ एकमात्र भूतार्थ स्वरूप ॥

वह तो अज्ञान से ही कर्मो का कर्त्ता है ।
अज्ञान का अभाव हुआ तो अकर्त्ता है ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥१९४॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१९५)

'इस प्रकार जीव अकर्ता है तथापि उसे बन्ध होता है यह अज्ञान की महिमा है' इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते है -

शिखरिणी

अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्ध स्वरसतः
स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः ।
तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बंधः प्रकृतिभिः ।
स खल्वज्ञाननस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः ॥१९५॥

अर्थ- जो निजरस से विशुद्ध है, और जिसकी स्फुरायमान होती हुई चैतन्य ज्योतियो के द्वारा लोक का मस्त विस्तार व्याप्त हो जाता है ऐसा जिसका स्वभाव है, ऐसा यह जीव पूर्वोक्त प्रकार से अकर्ता सिद्ध हुआ, तथापि उसे इस जगत मे कर्म प्रकृतियो के साथ जो यह बन्ध होता है। सो वह वास्तव मे अज्ञान की कोई गहन महिमा स्फुरायमान है ॥१९५॥

१९५ ॐ ह्रीं चिज्ज्योतिस्वरूपाय नम।

अकर्तास्वरूपोऽहं ।

चामर

निज रसमय है विशुद्धि चैतन्य ज्योतिमय ।
लोक विस्तार व्याप्त निर्मल है ज्ञान मय ॥
ऐसा यह जीव तो पर का अकर्त्ता है ।
अज्ञान भाव की महिमा से कर्त्ता है ॥

अरहतो सिद्धो के सम हूँ मै क्षायिक चारित्र स्वरूप ।
आचार्यों सम निश्चय षड आवश्यक मेरा निश्चय रूप ॥

कर्तृत्व बुद्धि रहित ज्ञानी है वन्दनीय ।
भाव सहित दर्शनीय भाव सहित अर्चनीय ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव ह्रदय हो गया ॥१९५॥

ॐ ह्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१९६)

'इसी प्रकार भोक्तृत्व भी आत्मा का स्वभाव नही है' इस अर्थ का, आगामी गाथा का सूचक श्लोक कहते हैं -

अनुष्टुभ

भोक्वतृत्व न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्ववच्चितः ।
अज्ञानादेव भोक्तायं तदभावादवेदकः ॥१९६॥

अर्थ- कर्तृत्व की भॉति भोक्तृत्व भी इस चैतन्य का स्वभाव नही कहा है । वह अज्ञान से ही भोक्ता है, अज्ञान का अभाव होने पर वह अभोक्ता है ॥१९६॥

१९६ ॐ ह्री भोक्ताकल्पनारूपाज्ञानरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

सहजज्ञानामृतस्वरूपोऽह ।

चामर

कर्तृत्व की भाति भोक्तृत्व भी विभाव ।
चित्स्वरूप आत्मा का यह तो नहीं स्वभाव ॥
वह तो अज्ञान की महिमा से भोक्ता है ।
अज्ञान का अभाव हो तो अभोक्ता है ॥
भोक्तृत्व बुद्धि रहित ज्ञानी है वन्दनीय ।
भाव सहित दर्शनीय भाव सहित अर्चनीय ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव ह्रदय हो गया ॥१९६॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१९७)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

शार्दूल विक्रीड़ित

अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको
ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातुचिद्वेदकः ।
इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानता ॥१९७॥

अर्थ- अज्ञानी प्रकृतिस्वभाव में लीन-रक्त होने से सदा वेदक है, ज्ञानी तो प्रकृतिस्वभाव से विरक्त होने से कदापि वेदक नहीं है । इस प्रकार के नियम को भलीभांति विचार करके-निश्चय करके निपुण पुरुषो! अज्ञानीपन को छोड दो और शुद्ध-एक-आत्मामय तेज मे निश्चल होकर ज्ञानीपने का सेवन करो ॥१९७॥

१९७ ॐ ह्रीं प्रकृतिस्वभावनिरंतररहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

अवेदकस्वरूपोऽहं ।

चामर

अज्ञानी पर भाव को स्वभाव जानता ।
इसलिए वो वेदक है निज को न जानता ॥
ज्ञानी पर भाव को पर का ही जानता ।
अत वेदक नहीं निज को ही जानता ॥
ऐसा निश्चय करके अज्ञान छोड दो ।
आत्म पुंज तेज से अब निज को जोड दो ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव ह्रदय हो गया ॥१९७॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

मैं भी परम शुक्ल ध्यानमय उज्ज्वल परम समाधिस्वरूप।
आचार्यों सम मैं भी हूँ द्वादश विधितप आचार स्वरूप ॥

(१९८)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते है-

वसन्ततिलका

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म
जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावम् ।
जानन्पर करणवेदनयोरभावा-
च्छुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ॥१९८॥

अर्थ- ज्ञानी कर्म को न तो करता है और न भोगता है, वह कर्म के स्वभाव को मात्र जानता ही है । इस प्रकार मात्र जानता हुआ करने और भोगने के अभाव के कारण शुद्ध स्वभाव मे निश्चल ऐसा वह वास्तव मे मुक्त ही है ॥१९८॥

१९८ ॐ ह्रीं करणवेदनरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

शुद्धाचलोऽहं ।

चामर

ज्ञानी कर्मो को न करता न भोगता ।
कर्म के स्वभावो को मात्र कर्म जानता ॥
कर्तृत्व भोक्तृत्व के अभाव युक्त है ।
निश्चल स्वभाव लीन वास्तव मे मुक्त है ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥१९८॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(१९९)

अब, जो- जैन साधु भी-सर्वथा एकान्त के आशय से आत्मा को कर्ता ही मानते हैं उनका निषेध करते हुए, आगामी गाथा का सूचक श्लोक कहते हैं -

अनुष्टुभ्

ये तु कर्तारमात्मानं पश्यंति तमसा तताः ।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम् ॥१९९॥

अर्थ- जो अज्ञान अधकार से आच्छादित होते हुए आत्मा को कर्ता मानते हैं, वे भले ही मोक्ष के इच्छुक हो तथापि सामन्य जनो की भाँति उनकी भी मुक्ति नहीं होती ॥१९९॥

१९९ ॐ ह्रीं अज्ञानाध कारहितज्ञानस्वरूपाय नम।

बोधज्योतिस्वरूपोऽहं ।

चामर

अज्ञानतम से आच्छादित वे कर्त्ता है ।
हो मोक्ष इच्छुक पर मुक्त नहीं होते हैं ॥
जब तक अज्ञान है तब तक ही वे दुखी ।
जब ज्ञान होता है हो जाते वे सुखी ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥१९९॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२००)

अब आगे के श्लोक मे यह कहते हैं कि- 'परद्रव्य और आत्मा का कोई भी सबंध नहीं है ? इसलिये उनमें कर्ता-कर्म सबध भी नही है-

अनुष्टुभ्

नास्ति सर्वोऽपि संबंधः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः
कर्तृ कर्मत्व संबंधाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥२००॥

अर्थ- परद्रव्य और आत्मतत्त्व का संबंध नहीं है; इस प्रकार कर्तृत्व-कर्मत्व के संबंध का अभाव होने से आत्मा के परद्रव्य का कर्तृत्व कहां से हो सकता है ? ॥२००॥

आचार्यो सम निश्चय गुण छत्तीसविभूषित मेरा रूप ।
उपाध्याय सम मेरी आत्मा द्वादशागवाणी अनुरूप ॥

२०० ॐ ह्रीं कर्तृकर्मत्वसबधरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

बोधपुंजस्वरूपोऽहं ।

चामर

पर द्रव्य और आत्म द्रव्य का न नाता है ।
कर्तृत्व भोक्तृत्व नही सौख्य दाता है ॥
पर का कर्तृत्व आत्मा को रच भी नही ।
कर्त्ता अरु कर्म का सबध भी नही ॥
व्यवहार मूढ जीव पर द्रव्य का कर्त्ता ।
ज्ञानी ही जानता आत्म द्रव्य अकर्त्ता ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२००॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२०१)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते है-

वसन्ततिलका

एकस्य वस्तुन इहान्यतरेण सार्धं
संबंध एव सकलोऽपि यतो निषिद्ध : ।
तत्कर्तृकर्मघटनास्ति न वस्तुभेदे
पश्यन्त्वकर्तृ मुनयश्च जनाश्च तत्त्वम् ॥२०१॥

अर्थ- क्योंकि इस लोक मे एक वस्तु का अन्य वस्तु के साथ सपूर्ण संबध ही निषेध किया गया है, इसलिये जहा वस्तुभेद है अर्थात् भिन्न वस्तुएँ हैं वहा कर्ताकर्मघटना नहीं होती-इस प्रकार मुनिजन और लौकिकजन तत्त्व को अकर्ता देखो, ॥२०१॥

२०१ ॐ ह्रीं अन्यवस्तुसंबंधरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

निजानंतगुणस्वरूपोऽहं ।

साधु समान आत्मा मेरी वसु प्रवचन मातृका स्वरूप ।
मंगलोत्तम शरण भूत मेरी आत्मा है सहज स्वरूप ॥

चामर

एक वस्तु का न अन्य वस्तुओं से नाता है ।
अत वस्तु मे कर्त्ता कर्म नहीं घटता है ॥
हे मुनिजन लौकिक जानो यथार्थ रुढ रूप ।
वस्तु तत्त्व को सदा अकर्त्ता देखो अनूप ॥
कोई अन्य किसी का कर्त्ता तुम मत मानो ।
पर द्रव्य पर का अकर्त्ता है यह जानो ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२०१॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२०२)

' जो पुरुष ऐसा वस्तुस्वभाव का नियम नहीं जानते वे अज्ञानी होते हुए कर्म को करते हैं, इस प्रकार भावकर्म का कर्ता अज्ञान से चेतन ही होता है।'-इस अर्थ का, एव आगामी गाथाओ का सूचक कलशरूप काव्य कहते हैं -

वसन्ततिलका

ये तु स्वभावनियमं कलयंति नेम-
मज्ञानमग्नमहसो बत ते बराका: ।
कुर्वंति कर्म तत एव हि भावकर्म-
कर्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्य: ॥२०२॥

अर्थ- अरे! जो इस वस्तुस्वभाव से नियम को नहीं जानते वे बेचारे, जिनका तेज अज्ञान में डूब गया है ऐसे, कर्म को करते हैं, इसलिये भावकर्म का कर्ता चेतन ही स्वय होता है, अन्य कोई नहीं ॥२०२॥

२०२ ॐ ह्रीं अज्ञानमग्नतारहितज्ञानस्वरूपाय नम.।

बोधतेजस्वरूपोऽहं ।

पाँचों परमेष्ठी सम मेरी आत्मा है परमेष्ठि स्वरूप ।
तीर्थों के सम महातीर्थ है मेरी आत्मा तीर्थ स्वरूप॥

चामर

वस्तु का स्वभाव जो नियम से न जानते ।
वे ही अज्ञान मे डूबे है दुख पाते ॥
भाव कर्म का कर्त्ता चेतन ही होता है ।
अन्य कोई कर्म का कर्त्ता न होता है ॥
अज्ञान जाल मे जो भी परिणमता है ।
स्वय भाव कर्म का कर्त्ता वह बनता है ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव ह्रदय हो गया ॥२०२॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२०३)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते है -

शार्दूल विक्रिडित

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्कृतिः ।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः ॥२०३॥

अर्थ- जो कर्म है वह कार्य है, इसलिये वह अकृत नहीं हो सकता अर्थात् किसी के द्वारा किये बिना नहीं हो सकता । और ऐसा भी नहीं है कि वह जीव और प्रकृति दोनों की कृति हो, क्योकि यदि वह दोनों का कार्य हो तो ज्ञानरहित प्रकृति को भी अपने कार्य का फल भोगने का प्रसंग आ जाएगा । और वह एक प्रकृति की कृति भी नहीं है, क्योकि प्रकृति का तो अचेतनत्व प्रगट है अर्थात् प्रकृति तो अचेतन है इसलिये उस भावकर्म का कर्ता जीव ही है और चेतन का अनुसरण करने वाला अर्थात् चेतन के साथ अन्वय रूप ऐसा वह भावकर्म जीवका ही कर्म है क्योंकि पुद्गल तो ज्ञाता नहीं है ॥२०३॥

सिद्धों के सम महाशुद्ध है मेरी आत्मा सिद्ध स्वरूप ।
सिद्धों सम टकोत्कीर्ण निष्क्रिय ज्ञायक चिद्रूप अनूप ॥

२०३ ॐ ह्रीं अचित्प्रकृतिरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

स्वचिद्देवस्वरूपोऽहं ।

चामर

भाव कर्म कार्य है अकृत वह है नहीं ।
अन्य किसी द्वारा किया गया वह है नहीं ॥
जीव प्रकृति दोनों की कृति भी वह है नहीं ।
ज्ञान अनुसार तो कर्तृत्व है नही ॥
प्रकृति तो अचेतन जड उसकी भी कृति नहीं ।
भाव कर्म का कर्त्ता जीव है अन्य नहीं ॥
जीव का ही कर्म है पुद्गल नहीं कर्ता ।
भाव कर्म पुद्गल का कर्म नहीं हो सकता ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२०३॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२०४)

अब आगे की गाथाओं में, जो भावकर्म का कर्ता भी कर्म को ही मानते हैं उन्हें समझाने के लिए स्याद्वाद के अनुसार वस्तुस्थिति कहेंगे, पहले उसका सूचक काव्य कहते हैं -

शार्दूल विक्रीडित

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकैः क्षिप्त्वात्मनः कर्तृतां
कर्तात्मैष कथंचिदित्यचलिता कैश्चिच्छ्रुतिः कोपिता।
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुद्धये
स्याद्वादप्रतिबंधलब्धविजया वस्तुस्थितिः स्तूयते ॥२०४॥

कृत्रिम अकृत्रिम जिन भवन भाव सहित उर धार ।
मन-वच तन जो पूजते वे होते भव पार ॥

अर्थ- कोई आत्मा के घातक कर्म को ही कर्ताविचार कर आत्मा के कर्तृत्व को उडाकर, 'यह आत्मा कथचित् कर्ता है' ऐसा कहने वाली अचलित श्रुतिको कोपित करते हैं, जिनकी बुद्धि तीव्र मोह से मुद्रित हो गई है ऐसे उन आत्मघातको के ज्ञान की सशुद्धि के लिये वस्तुस्थिति कही जाती है-जिस वस्तुस्थिति ने स्याद्वाद के प्रतिबन्ध से विजय प्राप्त की है ॥२०४॥

२०४ ॐ ह्रीं उद्धतमोहमुद्रितधीररहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

शुद्धबोधस्वरूपोऽहं ।

चामर

आत्मघाति कर्म को ही कर्त्ता विचार कर ।
अज्ञान भाव से पर को निहार कर ॥
आत्मा कथचित है कर्त्ता ये कहते है ।
निर्बाध जिनवचन विराधना वे करते है ॥
बुद्धि तीव्र मोह से मुद्रित अज्ञानी की ।
स्याद्वाद से विजय होती है ज्ञानी की ॥
स्याद्वाद प्रतिबध से ही विजय पाते है ।
निर्बाधतया सिद्धपुर मे वे जाते है ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२०४॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२०५)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

शार्दूल विक्रीडित

माऽकर्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हता:
कर्तारं कलयंतु तं किल सदा भेदावबोधादध: ।

ऊर्ध्वम् तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं
पश्यन्तु च्युतकर्तृ भावमचलं ज्ञातारमेकं परम् ॥२०५॥

अर्थ- यह आर्हत् मतके अनुयायी अर्थात् जैन भी आत्मा को, सांख्यमतियों की भांति, अकर्ता मत मानो, भेदज्ञान होने से पूर्व उसे निरन्तर कर्ता मानो, और भेद-विज्ञान होने के बाद उद्धत ज्ञानधाम मे निश्चित इस स्वयप्रत्यक्ष आत्मा को कर्तृत्व रहित, अचल, एक परम ज्ञाता हो देखो ॥२०५॥

२०५ ॐ ह्रीं अवबोधामृतस्वरूपाय नम।

अचलबोधधामस्वरूपोऽहं ।

चामर

है अर्हत अनुकपा आत्मा को जानना ।
साख्यमती की तरह अकर्त्ता मत मानना ॥
भेद ज्ञान पूर्व उसे कर्त्ता मानो सदीव ।
भेद ज्ञान वाद तो कर्त्ता मत मान जीव ॥
शुद्ध ज्ञान मदिर मे ज्ञान का प्रकाश है ।
ज्ञान धाम मे तो अकर्तृत्व का निवास है ॥
कर्तृत्व रहित अचल एक परम ज्ञाता बन ।
स्वयं प्रत्यक्ष आत्मा को लख विधाता बन ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२०५॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(२०६)

आगे की गाथाओं में, 'कर्ता अन्य है और भोक्ता अन्य है' ऐसा मानने वाले क्षणिकवादी बौद्धमतियों की सर्वथा एकान्त मान्यता में दूषण बतायेंगे और स्याद्वादानुसार जिस प्रकार वस्तुस्वरूप अर्थात् कर्ताभोक्तापन है उस

तन पर्वत पर गिरे न जब तक वज्र अरे यमराज का ।
तब तक कर्म नाश करने को ले शरणा जिनराज का ॥

प्रकार कहेंगे । उन गाथाओ का सूचक काव्य प्रथम कहते हैं -

मालिनी

क्षणिकमिदमिहैक: कल्पयित्वात्मतत्त्वं
निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदम् ।
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघै:
स्वयमयमभिषिंचश्चिच्चमत्कार एव ॥२०६॥

अर्थ- इस जगत मे कोई एक तो इस आत्मतत्त्व को क्षणिक कल्पित करके अपने मन मे कर्ता और भोक्ता का भेद करते हैं उनके मोहको यह चैतन्यचमत्कार ही स्वय नित्यतारूप अमृत के ओघ के द्वारा अभिसिचन करता हुआ, दूर करता है ॥२०६॥

२०६ ॐ ह्रीं चिच्चमत्कारामृतौघस्वरूपाय नम ।

अद्भूतचित्स्वरूपोऽहं ।

चामर

आत्म तत्त्व को तो क्षणिक बुद्धमती कहते है ।
है कर्त्ता अन्य भोक्ता अन्य कहते है ॥
उनके इस मोह को ज्ञान नाश करता है ।
चैतन्य चमत्कार ही प्रकाश करता है ॥
नित्यता स्वरूप अमृत ओघ के स्व पूर लो ।
अभिसिचन करते ही मोह राग दूर हो ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२०६॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२०७)

पुन क्षणिकवादका युक्ति द्वारा निषेध करता हुआ, और आगे की गाथाओं का सूचक काव्य कहते हैं-

रुचि अनुयायी वीर्य काम करता है जैसी मति होती ।
पर भावों की रुचि त्यागे तो उरमें निज परिणति होती॥-

अनुष्टुभ

वृत्त्यंशभेदतोऽत्यंतं वृत्तिमन्नाशकल्पनात् ।
अन्यः करोति भुंक्तेऽन्य इत्येकांतश्चकास्तु मा ॥२०७॥

अर्थ- वृत्त्यशों के अर्थात् पर्याय के भेद के कारण 'वृत्तिमान् अर्थात् द्रव्य सर्वथा नष्ट हो जाता है' ऐसी कल्पना के द्वारा 'अन्य करता है और अन्य भोगता है' ऐसा एकान्त प्रकाशित मत करो ॥२०७॥

२०७ ॐ ह्रीं वृत्त्यशरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

अविनाशस्वरूपोऽहं ।

चामर

पर्याय का अभाव तत्क्षण ही होता है ।
बुद्धमती मानता द्रव्य नष्ट होता है ॥
ऐसी एकान्त मान्यता ही मिथ्यात्व है ।
पर्याय द्रव्य का मूढता से नाश है ॥
पर्यायवान ही पदार्थ ध्रौव्य होता है ।
पर्याय को उसका ही आश्रय होता है ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव ह्रदय हो गया ॥२०७॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२०८)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

शार्दूल विक्रीडित

आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकैः
कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परैः ।
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रतै-
रात्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः ॥२०८॥

बाह्य विषय तो मृग जलवत हैं उनमें स्रोत न शान्ति का।
अन्तर्नभ में क्यों छाया है बादल मिथ्या भ्रान्ति का ॥

अर्थ— आत्मा को सम्पूर्णतया शुद्ध चाहने वाले अन्य किन्हीं अधो ने बालिशजनो ने काल की उपाधि के कारण भी आत्मा मे अधिक अशुद्धि मानकर अतिव्याप्ति को प्राप्त होकर शुद्ध ऋजुसूत्रनय मे रत होते हुए चैतन्य को क्षणिक कल्पित करके, इस आत्मा को छोड़ दिया, जैसे हारके सूत्र को न देखकर मात्र मोतियो को ही देखने वाले हार को छोड देते हैं ॥२०८॥

२०८ ॐ ह्रीं कालोपाधियुक्ताशुद्धिरहितस्वरूपाय नम।

ज्ञानसौख्यस्वरूपोऽहं ।

चामर

बौद्धमती आत्मा पूर्ण शुद्ध चाहता ।
किन्तु काल की उपाधि से अशुद्धि मानता ॥
आत्मा को क्षणिक जान आत्मा को छोडता ।
जैसे मोतियो का हार मूढ जीव छोडता ॥
हार सूत्र को न देख मोती वह देखता ।
मात्र मोतियो को देख मूढ हार छोडता ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२०८॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२०९)

अब इस काव्य मे आत्मानुभव करने को कहते है-

शार्दूल विक्रीड़ित

**कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा
कर्ता वेदयिता च मां भवतु वा वस्त्वेव सचिन्त्यताम् ।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचि-
च्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्वेव नः ॥२०९॥**

निज परिणति को किया बहिष्कृत तूने अपनी भूल से।
पर परिणति का खेल रहा है खेल राग की धूल से॥

अर्थ- कर्त्ता का और भोक्ता का युक्ति के वश से भेद हो या अभेद हो, अथवा कर्ता और भोक्ता दोनो न हों; वस्तु का ही अनुभव करो। जैसे चतुर पुरुषों के द्वारा डोरे मे पिरोयी गई मणियो की माला जैसे चतुर पुरुषों के द्वारा डोरे में पिरोयी गई मणियों की माला भेदी नहीं जा सकती, उसी प्रकार आत्मा मे पिरोई गई चैतन्यरूप चिन्तामणि की माला भी कभी किसी से भेदी नहीं जा सकती, ऐसी यह आत्मारूपी माला एक ही, हमें सम्पूर्णतया प्रकाशमान हो ॥२०९॥

२०९ ॐ ह्री चिच्चितामणिस्वरूपाय नम।

ज्ञानचिंतामणिस्वरूपोऽहं ।

चामर

पर्याय से कर्त्ता भोक्ता मे भेद है ।
द्रव्य अपेक्षा से नही कोई भी भेद है ॥
भेद या अभेद छोड वस्तु का स्व अनुभव कर ।
मणि माला भाति मात्र पहिनने का सौख्य वर ॥
भेद अरु अभेद का विकल्प जाल तोड़ दे ।
आत्मा से स्वानुभव प्रकाश अभी जोड दे ॥
आप्त का कहा हुआ आगम ही वन्दनीय ।
गणधर का रचा हुआ आगम ही माननीय ॥
मुनियो का मनन किया आगम सुखदाता है ।
जीव इसे जान कर सम्यक् धन पाता है ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२०९॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२१०)

अब आगे की गाथाओं का सूचक काव्य कहते हैं-

तू विभाव के तरुओं की छाया में कब तक सोएगा।
जप तप व्रत का श्रम करके भी बीज दुखों के बोएगा॥

रथोद्धता

व्यावहारिकदृशैव केवलं
कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते ।
निश्चयेन यदि वस्तु चिंत्यते
कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥२१०॥

अर्थ- केवल व्यवहारिक दृष्टि से ही कर्ता और कर्म भिन्न माने जाते हैं , यदि निश्चय से वस्तु का विचार किया जाये, तो कर्ता और कर्म सदा एक माना जाता है ॥२१०॥

२१० ॐ ह्रीं कर्तृकर्मविकल्परहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

सिद्धोऽहं ।

चामर

व्यवहारिक दृष्टि से कर्त्ता अरु कर्म भिन्न ।
निश्चय से कर्त्ता अरु कर्म एक हैं अभिन्न ॥
निश्चय से वस्तु को विचार वस्तु कर ग्रहण ।
एक मात्र आत्म वस्तु ही है परम शरण ॥
व्यवहार से ज्ञायक पर द्रव्य जानते ।
ज्ञायक तो ज्ञायक है निश्चय यह मानते ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२१०॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२११)

अब, इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

नर्दटक

ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयत:
स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत् ।

जब सम्यक्त्व पल्लवित होता तो पवित्रता आती है।
ज्ञानोंकुर की कार्य प्रणाली में विचित्रता आती है ॥

न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः ॥२११॥

अर्थ- वास्तव में परिणाम ही निश्चय से कर्म है, और परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का ही होता है, अन्यका नहीं और कर्म कर्ता के बिना नहीं होता, तथा वस्तु की एकरूप स्थिति नहीं होती इसलिये वस्तु स्वय ही अपने परिणामरूप कर्म की कर्ता है ॥२११॥

२११ ॐ ह्रीं अन्यपरिणामरहितज्ञानस्वरूपाय नम।

ज्ञानकल्पद्रुमस्वरूपोऽहं ।

चामर

वास्तव मे परिणाम ही कर्म होता है ।
परिणाम परिणामी का ही तो होता है ॥
निज निज स्व द्रव्य के आश्रित परिणाम है ।
पर्याय का अन्य आश्रय न काम है ॥
कर्म कर्त्ता के बिना होता है नहीं कभी ।
वस्तु की एक रूप स्थिति नहीं है कभी ॥
वस्तु स्वय अपने ही कर्मो की कर्त्ता है ।
निश्चय सिद्धान्त यही शिव मगल कर्त्ता है ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२११॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२१२)

अब आगे की गाथाओं का सूचक काव्य कहते हैं -

बहिर्लुठतियद्यपि स्फुटदनंत शक्तिः स्वयं ।
तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्य वस्त्वन्तरम् ॥

आत्म क्षितिज की प्राची में सम्यक् दर्शन का सूर्य महान ।
जिसे प्रगट करने मे तू सक्षम चैतन्य नाथ भगवान

स्वभावनियतं यत: सकलमेव वस्तिष्यते
स्वभावचलनाकुल: किमिह मोहित: क्लिश्यते ॥२१२॥

अर्थ- जिसको स्वय अनन्त शक्ति प्रकाशमान है ऐसी वस्तु अन्य वस्तु के बाहर यद्यपि लोटती है तथापि अन्य वस्तु अन्य वस्तु के भीतर प्रवेश नही करती, क्योंकि समस्त वस्तुएँ अपने-अपने स्वभाव मे निश्चित हैं ऐसा माना जाता है । ऐसा होने पर भी मोहित जीव, अपने स्वभाव से चलित होकर आकुल होता हुआ, क्यो क्लेश पाता है ?॥२१२॥

२१२ ॐ ह्री स्वभावचलनाकुलरहिताचलस्वरूपाय नम ।

निराकुलबोधस्वरूपोऽहं ।

चामर

वस्तु की अनत शक्ति स्वय ही प्रकाशमान ।
अन्य वस्तु द्रव्य मे है नही प्रवेशमान ॥
निज निज स्वभाव मे वस्तु सभी निश्चित है ।
फिर भी तो अज्ञानी पर मे ही मोहित है ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२१२॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२१३)

पुन आगे की गाथाओ का सूचक दूसरा काव्य कहते हैं-

रथोद्धता

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो
येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत् ।
निश्चयोऽयमपरोऽपरस्य क:
किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि ॥२१३॥

अर्थ- इस लोक मे एक वस्तु अन्य वस्तु की नहीं है, इसलिये वास्तव में वस्तु-वस्तु है- यह निश्चय है । ऐसा होने से कोई अन्य वस्तु अन्य वस्तु के बाहर लौटती हुई

अरे विकल्पातीत अवस्था निर्विकल्प होकर पाले ।
निज अंतर में भीतर जाकर पूर्ण अतीन्द्रिय सुख पाले ॥

उसका क्या कर सकती है?॥२१३॥

२१३ ॐ ह्रीं अन्यवस्तुस्वरूपाय नम ।

निश्चलशिवस्वरूपोऽहं ।

चामर

स्व वस्तु अन्य वस्तु की कभी नहीं होती है ।
अन्य वस्तु अन्य का न काम कर सकती है ॥
फिर बोलो पुद्गल ने चेतन का क्या किया ।
मूरख ने अज्ञानी होकर के भार लिया ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२१३॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२१४)

अब, इसी अर्थ को दृढ करने वाला तीसरा काव्य कहते हैं

रथोद्धता

यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः
किंचनापि परिणामिनः स्वयम् ।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं
नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥२१४॥

अर्थ- एक वस्तु स्वय परिणमित होती हुई अन्य वस्तु का कुछ भी कर सकती है- ऐसा जो माना जाता है, वह व्यवहार दृष्टि से हीमाना जाता है। निश्चय से इस लोक में अन्य वस्तु को अन्य वस्तु कुछ भी नहीं है ॥२१४॥

२१४ ॐ ह्रीं अन्यवस्तुपरिणमनरहितानदस्वरूपाय नम ।

अकिंचनस्वरूपोऽहं ।

पुण्यमयी शुभ भावों से होता है देव आयु का बंध ।
मिश्रित भाव शुभाशुभ से होता है मनुज आयु का बध ॥

चामर

अन्य वस्तु अन्य का कुछ भी कर सकती है ।
व्यवहार दृष्टि से कथनी यह होती है ॥
अन्य वस्तु अन्य की कोई नही सुजान ।
निश्चय से अन्य वस्तु अन्य की न कभी मान ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२१४॥

ॐ ह्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२१५)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते है -

मन्दाक्रान्ता

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो
नैकद्रव्यगत चकास्ति किमपि द्रव्यांतरं जातुचित् ।
ज्ञानं ज्ञेयमवैतियत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदय:
किं द्रव्यांतरचु बनाकुलधियस्तत्त्वाच्चवंते जना: ॥२१५॥

अर्थ- जिसने शुद्ध द्रव्य के निरूपण मे बुद्धि को लगाया है, और जो तत्त्व का अनुभव करता है, उस पुरुष को एक द्रव्य के भीतर कोई भी अन्य द्रव्य रहता हुआ कदापि भासित नहीं होता । ज्ञान ज्ञेय को जानता है वह तो यह ज्ञान के शुद्ध स्वभाव का उदय है। जबकि ऐसा है तब फिर लोग ज्ञान को अन्य द्रव्य के साथ स्पर्श होने की मान्यता से आकुल बुद्धिवाले होते हुए तत्त्व से क्यो च्युत होते हैं ? ॥२१५॥

२१५ ॐ ह्रीं द्रव्यान्तरचुबनाकुलधीरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

निजगुणैश्वर्यस्वरूपोऽहं ।

चामर

शुद्ध वस्तु निरुपण में बुद्धि जो लगाता है ।
तत्त्व का स्व अनुभव कर सहज ज्ञान पाता है ॥

निश्चय रत्नत्रय के बिन तो कभी न होगा मोक्ष त्रिकाल।
केवल शुद्ध भाव से ही तू होगा पूर्ण अबंध निहाल ॥

ज्ञान और ज्ञेय सर्वथा ही भिन्न जान लो ।
आत्मा का ज्ञान दर्शन चरित्र मान लो ॥
राग द्वेष आदि जड द्रव्यो में ना होता ।
विषयों के प्रति राग ज्ञानी को ना होता ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२१५॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२१६)

पुन इसी अर्थ को दृढ करते हुए कहते हैं-

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्किं स्वभावस्य शेष-
मन्यद्द्रव्यं भवति यदि वा तस्य किं स्यात्स्वभावः ।
ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्ति भूमि-
र्ज्ञानं ज्ञेयकलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव ॥२१६॥

अर्थ- शुद्ध द्रव्य का निजरसरूप परिणमन होता है इसलिये, क्या शेष कोई अन्य, द्रव्य उस स्वभाव का हो सकता है ? अथवा क्या वह किसी अन्य द्रव्य का हो सकता है? चाँदनी का रूप पृथ्वी को उज्ज्वल करता है तथापि पृथ्वी चाँदनी की कदापि नहीं होती, इस प्रकार ज्ञान ज्ञेय को सदा जानता है तथापि ज्ञेय ज्ञानका कदापि नहीं होता ॥२१६॥

२१६ ॐ ह्रीं ज्ञानज्ञेयविकल्परहितज्ञानस्वरूपाय नम.।

ज्ञायकानंदोऽहं ।

चामर

शुद्ध द्रव्य का निज रस रूप सदा परिणमन ।
शेष कोई अन्य द्रव्य का स्वभाव ना सजन ॥
एक द्रव्य का न अन्य द्रव्य से कुछ नाता है ।
चांदनी का रूप भूमि उज्ज्वल कर जाता है ॥

अब व्यवहार दृष्टि को तज दे दृष्टि त्याग संयोगाधीन।
दृष्टि निमित्ताधीन छोड दे हो जा निश्चय दृष्टि प्रवीण ॥

पृथ्वी तो चादनी की होती कभी नही ।
ज्ञान ज्ञेय जानता ज्ञेय ज्ञान का नहीं ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२१६॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२१७)

अब आगे की गाथाओ का सूचक काव्य कहते हैं-

मन्दाक्रान्ता

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत्
ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यम् ।
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं
भावाभावौ भवति तिरयन् ये पूर्णस्वभावः ॥२१७॥

अर्थ- रागद्वेष का द्वन्द तब तक उदय को प्राप्त होता है कि जब तक यह ज्ञान ज्ञान रूप न हो और ज्ञेय ज्ञेयत्व को प्राप्त न हो । इसलिये यह ज्ञान, अज्ञान भावको दूर करके, ज्ञानरूप हो- कि जिससे भाव-अभाव को रोकता हुआ पूर्णस्वभाव प्रगट हो जाए ॥२१७॥

२१७ ॐ ह्रीं भावाभावविकल्परहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

शुद्धब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

चामर

राग द्वेष द्वद भी तब तक उदय को प्राप्त ।
जब तक यह ज्ञान ज्ञान रूप नहीं होता व्याप्त ॥
ज्ञेय ज्ञेयत्व को प्राप्त नही हो जब तक ।
ज्ञान अज्ञान को दूर करता तब तक ॥
नाश अज्ञान भाव ज्ञान रूप हो जाओ ।
ज्ञानमय स्वभाव पूर्ण अतर मे ले आओ ॥

निश्चयनय के आश्रय से जो जीव प्रवर्त्तन करते हैं ।
वे ही कर्मों का क्षय करके भव बंधन को हरते हैं ॥

सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२१७॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२१८)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

मन्दाक्रान्ता

रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावात्
तौ वस्तुत्वप्राणिहितदृशा दृश्यमानौ न किंचित् ।
सम्यग्दृष्टि क्षपयतु ततस्तत्त्वदृष्ट्यास्फुटं तौ
ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्चिः ॥२१८॥

अर्थ- इस जगत में ज्ञान ही अज्ञान भाव से रागद्वेष रूप परिणमित होता है, वस्तुत्व में स्थापित दृष्टि से देखने पर, वे रागद्वेष कुछ भी नहीं हैं इसलिये सम्यग्दृष्टि पुरुष तत्त्वदृष्टि से उन्हें स्पष्टतया क्षय करो, कि जिससे, पूर्ण और अचल जिसका प्रकाश है ऐसी सहज ज्ञानज्योति प्रकाशित हो ॥२१९॥

२१८ ॐ ह्रीं सहजज्ञानज्योतिस्वरूपाय नम।

पूर्णाचलार्चिस्वरूपोऽहं ।

चामर

राग द्वेष प्रथक द्रव्य नहीं यह जान लो ।
जीव के अज्ञान से होते हैं मान लो ॥
तत्त्व दृष्टि से तो राग द्वेष वस्तु है नहीं ॥
घाति कर्म नाश बिना कैवल्य होता नहीं ॥
घाति कर्म नाश से कैवल्य होता है ।
सम्यक् दृष्टि ही तो अरहंत होता है ॥

पुण्यभाव से ही हित होगा जिनकी है मान्यता सदा ।
वे संसार भाव में रत रह मुक्त न होंगे अरे कदा ॥

सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२१८॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२१९)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

शालिनी

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या
नान्यद्द्रव्यं वीक्ष्यते किंचनापि ।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति
व्यक्तात्यंतं स्वस्वभावेन यस्मात् ॥२१९॥

अर्थ- तत्त्वदृष्टि से देखा जाये तो, रागद्वेष को उत्पन्न करने वाला अन्य द्रव्य किंचित्मात्र भी दिखाई नहीं देता, क्योंकि सर्व द्रव्यों की उत्पत्ति अपने स्वभाव से ही होती हुई अन्तरग मे अत्यन्त प्रगट प्रकाशित होती है ।

राग द्वेष चेतन के परिणाम जान लो ।
अन्य कराते ही नहीं राग द्वेष मान लो ॥
छोड वर्त्तमान की ममता आलोचना ।
इन तीनो सहित ही चारित्र सोचना ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२१९॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२२०)

अब इसी अर्थ को का कलशरूप काव्य कहते हैं-

तू विभाव में ही तन्मय है अब इस तन्मयता को छोड़ ।
निज चैतन्य तत्व की निर्मलता से ही अब नाता जोड ॥

मालिनी

यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः
कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र ।
स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो
भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बधः ॥२२०॥

अर्थ- इस आत्मा मे जो रागद्वेषरूप दोषो की उत्पत्ति होती है उसमे परद्रव्य का कोई भी दोष नही है, वहा तो स्वय अपराधी यह अज्ञान ही फैलाता है, इस प्रकार विदित हो और अज्ञान अस्त हो जाये, मै तो ज्ञान हूँ ॥२२०॥

२२० ॐ ह्री रागद्वेषदोषप्रसूतिरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

सहजचिद्रूपोऽहं ।

आत्मा मे राग द्वेष दोष उत्पन्न हो ।
पर द्रव्य का उसमे कोई ना दोष हो ॥
वह तो यह अपराधी स्वय अज्ञान है ।
अस्त अज्ञान हो तो जीव स्वय ज्ञान है ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२२०॥

ॐ ह्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२२१)

अब इसी अर्थ को दृढ़ करने के लिए और आगामी कथन का सूचक काव्य कहते हैं -

रथोद्धता

रागजन्मनि निमित्ततां पर-
द्रव्यमेव कलयंति ये तु ते ।
उत्तरंति न हि मोहवाहिनी
शुद्धबोधविधुरांधबुद्धयः ॥२२१॥

अर्थ- जो राग की उत्पत्ति में परद्रव्य का ही निमित्तत्व मानते हैं, मोहनदी को पार न

धन वैभव तो चलती फिरती छाया है पर वस्तु है ।
उसका गुण पर्याय द्रव्य सब जड है तुझे अवस्तु है ॥

कर सकते ॥२२१॥

२२१. ॐ ह्रीं मोहवाहिनीरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

शुद्धबोधार्णस्वरूपोऽहं ।

चामर

राग उत्पत्ति मे पर द्रव्य का निमित्त ।
ज्ञान रहित मूढ़ ही मानते हैं यह निमित्त ॥
अज्ञानी मोह नदी पार नहीं करते है ।
ज्ञानी ही मोक्ष नदी शीघ्र पार करते है ॥
अपना चैतन्य चमत्कार मात्र है अभेद ।
नित्य है एक है इसमे न कही भेद ॥
राग द्वेष अपने किये से ही होते है ।
अपने मिटाने से राग द्वेष मिटते है ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२२१॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२२२)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

शार्दूलविक्रीड़ित

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोधो न बोध्यादयं
यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादिव ।
तद्वस्तुस्थितिबोधवंध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो
रागद्वेषमयीभवंति सहजां मुंचंत्युदासीनताम् ॥२२२॥

अर्थ- पूर्ण, एक, अच्युद और ज्ञान जिसकी महिमा है ऐसा यह ज्ञायक आत्मा ज्ञेय पदार्थों से किंचित् मात्र भी विक्रिया को प्राप्त नहीं होता, जैसे दीपक प्रकाश्य पदार्थों से विक्रि

आगम के अभ्यास पूर्वक श्रद्धाज्ञान चरित्र संवार ।
निज में ही सर्वोच्च भाव लाकर तू अपना रूप निहार ॥

को प्राप्त नहीं होता । तब फिर जिनकी बुद्धि ऐसी वस्तुस्थिति के ज्ञान से रहित है ऐसे यह आज्ञानी जीव अपनी सहज उदासीनता को क्यों छोडते हैं तथा रागद्वेषमय क्यों होते हैं ? ॥२२२॥

२२२ ॐ ह्रीं पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधस्वरूपाय नमः।

बोधप्रकाशस्वरूपोऽहं ।

चामर

पूर्ण एक अच्युत ही निर्विकार ज्ञान है ।
ऐसा यह ज्ञायक है ज्ञेयका भी ज्ञान है ॥
ज्ञेय से न विक्रया को ज्ञान कभी पाता है ।
ज्यो दीप घट पटादि विक्रिया न पाता है ॥
जिनकी है बुद्धि वस्तु तत्त्व ज्ञान से रहित ।
अज्ञानी जीव राग द्वेष से हुए भ्रमित ॥
अज्ञानी सहज उदासीनता क्यों छोडते ।
राग द्वेष आदि से निज को क्यों जोडते ॥
जब तक शुभ राग है तब तक प्राणी दुखी ।
देख देख होती है करुणा वह ना सुखी ॥
सर्व निंज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२२२॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२२३)

अब आगामी कथन का सूचक काव्य कहते हैं-

शार्दूलविक्रीडित

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः
पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात् ।

वस्तु स्वभाव कभी न पलटता गुण अभाव होता न कभी।
है विकार पर्याय मात्र में वस्तु विकार सहित न कभी ॥

दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चंचच्चिदर्चिर्मयीं
विंदन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य संचेतनाम् ॥२२३॥

अर्थ-जिनका तेज रागद्वेषरूपी विभाव से रहित है, जो सदा स्वभाव को स्पर्श करने वाले हैं, जो भूतकाल के तथा भविष्यकाल के समस्त कर्मों से रहित है और जो वर्तमान काल के कर्मोदय से भिन्न हैं, वे अति प्रबल चारित्र के वैभव के बल से ज्ञानकी सचेतना का अनुभव करते हैं -जो ज्ञानचेतना-चमकती हुई चैतन्य ज्योतिमय है और जिसने अपने रस से समस्त लोक को सींचा है ॥२२३॥

२२३ ॐ ह्री चैतन्यरसरूपज्ञानस्वरूपाय नम ।

चिदर्चिस्वरूपोऽहं ।

चामर

जो राग द्वेष रूप विभावो से रहित जीव ।
जो निज स्वभाव को स्पर्श करता जीव ॥
भूत और भविष्य के कर्मो से रहित हो ।
वर्त्तमान कर्मो से भी वही प्रथक हो ॥
ऐसा हो ज्ञान चारित्र के प्रभाव से ।
ज्ञान चेतना स्वरूप अनुभव स्वभाव से ॥
ज्योतिमयी ज्ञान चेतना की चमक देखिये ।
ज्ञान रुप रस से समस्त विश्व सिचिये ॥
अतीत कर्म की क्षमता छोड यही प्रतिक्रमण ।
आगामी कर्म का त्याग प्रत्याख्यान धन ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२२३॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२२४)

अब आगे की गाथाओं का सूचक काव्य कहते हैं, जिसमें ज्ञानचेतना और

जीव देह को भिन्न जानना द्वादशांग का सार है ।
है विकार से भिन्न आत्मा पूर्णतया अविकार है ॥

अज्ञानचेतना का फल प्रगट करते हैं-

उपजाति

ज्ञानस्य संचेतनयैव नित्यं
प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धम् ।
अज्ञानसंचेतनया तु धावन्
बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बंधः ॥२२४॥

अर्थ- निरन्तर ज्ञानकी सचेतना से ही ज्ञान अत्यन्त शुद्ध प्रकाशित होता है, और अज्ञान की सचेतना से बध दौडता हुआ ज्ञान की शुद्धता को रोकता है, अर्थात् ज्ञान की शुद्धता नहीं होने देता ॥२२४॥

२२४ ॐ ह्रीं शुद्धज्ञाननिधिस्वरूपाय नम ।

शुद्धबोधाचलस्वरूपोऽहं ।

चामर

सहज ज्ञान सचेतना से ज्ञान दीप्त हो ।
अज्ञान सचेतना से ही बध हो ॥
बंध ही ज्ञान की शुद्धता को रोकता ।
ज्ञान ही ज्ञान चेतना को सदा जोहता ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२२४॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२२५)

इसमे पहले, सफलकर्मों के संन्यास की भावना को नचाते हैं-

आर्या

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः ।
परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ॥२२५॥

अति आसन्न भव्य जीवों को होता निश्चय प्रत्याख्यान।
जीवों को हित रूप यही है इससे ही होता निर्वाण ॥

अर्थ- त्रिकाल के समस्त कर्म को कृतकारित-अनुमोदना से और मन-वचन-काय से त्याग करके मैं परम नैष्कर्म्य का अवलम्बन करता हूँ ॥२२५॥

२२५ ॐ ह्रीं कृतकारितानुमोदनरहितज्ञानस्वरूपाय नम.।

निष्कर्मब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

चामर

त्रिकाल के समस्त कर्म कृत कारित अनुमोदन ।
मनवच काया से त्याग हो जाऊ धन धन धन ॥
निष्कर्म दशा का अवलबन करता हू ।
कर्मो के त्याग की प्रतिज्ञा मै करता हू ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२२५॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२२६)

अब इस कथन का कलशरूप काव्य कहते हैं-

आर्या

मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते॥२२६॥

अर्थ- मैने जो मोह से अथवा अज्ञान से कर्म किये हैं, उन समस्त कर्मों का प्रतिक्रमण करके मैं निष्कर्म चैतन्यस्वरूप आत्मा मे आत्मा से ही निरन्तर वर्त रहा हूँ ॥२२६॥

२२६ ॐ ह्रीं भूतकालविषयकमोहरहितज्ञानस्वरूपाय नम।

नित्यशिवस्वरूपोऽहं ।

चामर

मोह से अज्ञान से जो जो भी कर्म किया ।
सम्यक् प्रतिक्रमण किया निष्कर्म हो लिया ॥

आत्मा में आत्मा से निरंतर ही वर्त्तता ।
इस प्रकार ज्ञानी तो आत्म अनुभव करता ॥
मोह जनित अज्ञान दुखदायी होता है ।
यह न कहीं रंच भी सुखदायी होता है ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२२६॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२२७)

अब इस कथन का कलशरूप काव्य कहते हैं-

आर्या

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥२२७॥

अर्थ- मोह के विलास से फैला हुआ जो यह उदयमान कर्म उस सबकी आलोचना करके मै निष्कर्म चैतन्यस्वरूप आत्मा मे आत्मा से ही निरन्तर वर्त रहा हूँ ॥२२७॥

२२७ ॐ ह्री मोहविलासविजृम्भितोदयरहितज्ञानस्वरूपाय नम.।

चिद्विलासस्वरूपोऽहं ।

चामर

मोह के विलास से उदयमान कर्म सब ।
उन सब की आलोचना कर रहा हू अव ॥
सर्व कर्म रहित चैतन्य शुद्ध आत्मा ।
आत्मा मे आत्मा से वर्त्तता मैं आत्मा ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२२७॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

ध्रुवधाम ध्येय की धुन में ध्रुव धाम धैर्य धर ध्याऊँ ।
शुद्धात्म धर्म ध्याता बन परमात्म परम पद पाऊँ ॥

(२२८)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

आर्या

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसंमोहः ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥२२८॥

अर्थ- भविष्य के समस्त कर्मों का प्रत्याख्यान करके, जिसका मोह नष्ट हो गया है ऐसा मै निष्कर्म चैतन्यस्वरूप आत्मा मे आत्मा से ही निरन्तर वर्त रहा हूँ ॥२२८॥

२२८ ॐ ह्रीं आगामीकालविषयकसमोहरहितज्ञानस्वरूपाय नम।

निस्पृहस्वरूपोऽहं ।

चामर

भविष्य के समस्त कर्म करता हूं त्याग मै ।
मोह नष्ट हो गया है करता न राग मै ॥
पूर्ण निष्कर्म चैतन्य रूप आत्मा ।
आत्मा मे आत्मा से वर्त्तता है आत्मा ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया ॥२२८॥

ॐ ह्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२२९)

अब समस्त कर्मों के सन्यास की भावना को नचाने के सबंध का कथन समाप्त करते हुए, कलशरूप काव्य कहते हैं -

उपजाति

समस्तमित्येवमपास्य कर्म
त्रैकालिकं शुद्धनयावलंबी ।
विलीनमोहो रहितं विकारै-
श्चिन्मात्रमात्मानमथावलंबे ॥२२९॥

पुण्य पाप आदिक विकार की रुचि से जो रहते भयभीत।
पुण्य पाप के भाव जान विषतुल्य भाव से जाते रीत ॥

अर्थ- पूर्वोक्त प्रकार से तीनो काल के समस्त कर्मों को दूर करके शुद्धनयावलंबी और विलीन मोह ऐसा मै अब विकारों से रहित चैतन्यमात्र आत्मा का अवलम्बन करता हूँ ॥२२९॥

२२९ ॐ ह्रीं विकाररहितचिन्मात्रस्वरूपाय नम।

निर्विकारबोधस्वरूपोऽहं ।

चामर

यो तीनो काल के समस्त कर्म दिए त्याग ।
शुद्धनय का अवलबन लेकर छोंड़ा है राग ॥
विलीन मोह हो गया विकारों से मुक्त हूँ ।
चैतन्य मात्र अवलबन से युक्त हूँ ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव ह्रदय हो गया ॥२२९॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२३०)

अब समस्त कर्मफल संन्यास की भावना को नचाते हैं-

आर्या

विगलंतु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव ।
संचेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानम् ॥२३०॥

अर्थ- कर्मरूपी विष वृक्ष के फल मेरे द्वारा भोगे बिना ही, खिर जाये; मै चैतन्य स्वरूप आत्मा का निश्चलतया सचेतन-अनुभव करता हूँ ॥२३०॥

२३० ॐ ह्रीं कर्मविषतरुफलभोगरहितज्ञानस्वरूपाय नम।

निजामृतस्वरूपोऽहं ।

चामर

समस्त कर्म फल की सन्यास भावना महान ।
कर्म रूपविष वृक्ष फल विषादमय वितान ॥

सम्यक् दर्शन अगर तुझे पाना है तो कर तत्वाभ्यास ।
निजस्वरूप का निर्णय करले आत्म-तत्व का कर विश्वास॥

मेरे द्वारा भोगे बिन सब खिर पाएंगे ।
चेतन स्वरूप आत्म अनुभव ही पाएगे ॥
मैं ज्ञाता दृष्टा हू जानता हू देखता ।
अतएव उनका न होता मैं भोक्ता ॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया ।
समयसार कलश का भाव ह्रदय हो गया ॥२३०॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२३१)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं

वसन्ततिलका

नि:शेषकर्मफलसंन्यसनान्ममैवं
सर्वक्रियांतरविहारनिवृत्तवृत्ते: ।
चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्त्वं
कालावलीयमचलस्य वहत्वनंता ॥२३१॥

अर्थ-पूर्वोक्त प्रकार से समस्त कर्म के फल का सन्यास करने से मैं चैतन्य लक्षण आत्मतत्त्व को अतिशयतया भोगता हूँ और उसके अतिरिक्त अन्य सर्व क्रिया मे विहार से मेरी वृत्ति निवृत्त है आत्मतत्त्व को अतिशयतया भोगता हूँ और उसके अतिरिक्त अन्य सर्व क्रिया में विहार से मेरी वृत्ति निवृत्त है आत्मतत्त्व के उपभोग के अतिरिक्त अन्य जो उपयोग की क्रिया-विभावरूप क्रिया उसमें इस प्रकार आत्मतत्त्व के उपभोग मे अचल ऐसे मुझे, यह कालकी आवली जो कि प्रवाहरूप से अनन्त है वह, आत्मतत्त्व के उपभोग में ही बहती रहे. ॥२३१॥

२३१ ॐ ह्रीं सर्वक्रियातरविहाररहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

चैतन्यलक्ष्मस्वरूपोऽहं ।

ज्ञानी को स्वामित्व राग का लेश नहीं है अंतर में ।
पूर्ण अखण्ड स्वभाव साधने का उत्साह भरा उर में ॥

छंद-राधिका

सब कर्मो के फल से सन्यास लिया है ।
चैतन्य आत्मा की ये भोग क्रिया है ॥
निज आत्म तत्त्व उपभोग कार्य है मेरा ।
काल अनंतानत यही कृत्य है मेरा ॥
निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय मे आया ।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२३१॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२३२)

अब पुन काव्य कहते हैं-

वसन्ततिलका

य: पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां
भुक्तं फलानि न खलु स्वत एव तृप्त: ।
आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं
निष्कर्मशर्ममयमेति दशांतरं स: ॥२३२॥

अर्थ- पहले अज्ञानभाव से उपार्जित कर्मरूपी विषवृक्षो के फलको जो पुरुष नहीं भोगता और वास्तव मे अपने से ही तृप्त है, वह पुरुष, जो वर्तमान काल में रमणीय है और भविष्यकाल मे भी जिसका फल रमणीय है ऐसे निष्कर्म-सुखमय दशातर को प्राप्त होता है ॥२३२॥

२३२ ॐ ह्रीं पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

ब्रह्ममृतस्वरूपोऽहं ।

छंद-राधिका

पूर्वोपार्जित कर्म विष न भोग रहा अब ।
निज आत्म तत्त्व मे तृप्त हो गया मैं अब ॥

ज्ञानी को अस्थिरता के कारण है विद्यमान कुछ राग ।
किन्तु राग के प्रति एकत्व ममत्व नहीं, है पूर्ण विराग ॥

निष्कर्म सुखमयी दशा सदैव रहेगी ।
रमणीय विद्य रमणीय सदा रहेगी ॥
निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय मे आया ।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२३२॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२३३)

वसन्ततिलका

'पूर्वोक्त रीति से कर्मचेतना और कर्मफलचेतना के त्याग की भावना करके अज्ञानचेतना के प्रलय को प्रगटतया नचाकर, अपने स्वभाव को पूर्ण करके, ज्ञानचेतनाको नचाते हुए ज्ञानीजन सदाकाल आनन्दरूप रहो'

अत्यंतं भावयित्वा विरति मविरतं कर्मणस्तत्फलाच्च
प्रस्पष्टं नाटयित्वा प्रलयन मखिलाज्ञान संचेत नाया: ।
पूर्णं कृत्वा स्वभावं स्वरसपरिगतं ज्ञानसंचेतनां स्वां
सानंदं नाटयंत: प्रशमरसमित: सर्वकालं पिबंतु ॥२३३॥

अर्थ ज्ञानी जन, अविरतपने से कर्म से और कर्मफल से विरति को अत्यन्त भा कर, और कर्म फल के प्रति अत्यन्त विरक्त भावको निरन्तर भाकर, समस्त अज्ञानचेतनाके नाश को स्पष्टतया नचाकर, निजरस से प्राप्त अपने स्वभाव को पूर्ण करके, अपने ज्ञानचेतना को आनन्द पूर्वक नचाते हुए सबसे सदाकाल प्रशमरस को पिओ अर्थात् कर्म के अभावरूप आत्मिकरस को—अमृतरस को अभी से लेकर अनन्तकाल तक पिओ ॥२३३॥

२३३ ॐ ह्रीं अज्ञानसचेतनारहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

शमाम्बुनिधिस्वरूपोऽहं ।

छंद-राधिका

तज कर्म चेतना कर्म चेतना फल को ।
अब प्रलय बता अज्ञान चेतना बल को ॥

पर का आश्रय लेने वाला नर्क निगोदादिक जाता ।
निज का आश्रय लेने वाला महामोक्ष फल को पाता ॥

निज ज्ञान चेतना से तू आनदित हो ।
त्रिभुवन के शत इन्द्रों द्वारा तू वदित हो ॥
कर्मों का नाशक निज अनुभव रस ही पीलो ।
फिर सदा आत्मीक रस में अब तुम जीलो ॥
निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय में आया ।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२३३॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२३४)

यह सर्वविशुद्धज्ञान अदिकार है, इसलिये ज्ञानको कर्तृत्वभोक्तृत्व से भिन्न बताया; अब आगे की गाथाओं में अन्य द्रव्य और अन्य द्रव्यों के भावो से ज्ञानको भिन्न बतायेंगे । पहले उन गाथाओं का सूचक काव्य कहते हैं-

वंशस्थ

इतः पदार्थप्रथनावगुंठनाद्-
विना कृतेरेकमनाकुलं ज्वलत् ।
समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयाद् -
विवेचितं ज्ञानमिहावतिष्ठते ॥२३४॥

अर्थ-यहा से अब समस्त वस्तुओं के भिन्नत्व के निश्चय द्वारा पृथक किया गया ज्ञान, पदार्थों के विस्तार के साथ गुथित होने से उत्पन्न होने वाली क्रिया उनसे रहित एक ज्ञानक्रियामात्र, अनाकुल और दैदीप्यमान होता हुआ, निश्चल रहता है ॥२३४॥

२३४. ॐ ह्रीं समस्तुवस्तुव्यतिरेकज्ञानस्वरूपाय नमः।

अनाकुलशिवस्वरूपोऽहं ।

छंद-राधिका

सब से ही तो भिन्नत्व तो ज्ञान ने जाना ।
केवल अपने से ही अपनत्व पिछाना ॥

ज्ञान ज्ञान में जब सुस्थिर हो तब होता है सम्यक् ज्ञान ।

सतत् भावना शुद्धातम की करते करते केवल ज्ञान ॥

भव क्रिया रहित हू ज्ञान क्रिया का अधिपति ।

दैदीप्यमान हू निश्चल हूँ ऐसी ही मति ॥

निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय मे आया ।

निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२३४॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२३५)

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते है-

शार्दूल विक्रीड़ित

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत्पृथग्वस्तुता-

मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम् ।

मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुरः

शुद्धज्ञानघनो यथाऽस्य महिमा नित्योदितस्थिष्ठति ॥२३५॥

अर्थ- अन्य द्रव्यो से भिन्न, अपने मे ही नियत, पृथक वस्तुत्व को धारण करता हुआ ग्रहणत्याग से रहित, यह अमल ज्ञान इस प्रकार अवस्थित अनुभव मे आता है कि जैसे आदि मध्य अन्तरूप विभागो से रहित ऐसी सहज फैली हुई प्रभा के द्वारा दैदीप्यमान ऐसी उसकी शुद्धज्ञानघनरूप महिमा नित्य-उदित रहे ॥२३५॥

२३५ ॐ ह्री सहजस्फारप्रभाभासुरज्ञानस्वरूपाय नम ।

आदानोज्झनस्वशून्योऽहं ।

छद-राधिका

पर द्रव्यो से हूँ रहित नियत्त अपने मे ।

है नही ग्रहण या त्याग कभी सपने मे ॥

रागादि मल रहित ममल ज्ञान का अनुभव ।

है आदि मध्य अरु अत रहित शिव अभिनव ॥

बहु आरंभ परिग्रह भावो से है घोर नरक गतिबंध।
मायामयी अशुभ भावो से होता गति त्रियंच का बंध ॥

नित्योदित है निज शुद्ध ज्ञान की महिमा ।
है उदय मान सर्वोकृष्ट निजगरिमा ॥
निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय मे आया ।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२३५॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२३६)

'ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा का आत्मा मे धारण करना सो यही ग्रहण करने योग्य सब कुछ ग्रहण किया और त्यागने योग्य सब कुछ त्याग कया है'-इस अर्थ का काव्य कहते हैं-

उपजाति

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्
त्तथात्तमादेयमशेषतस्तत् ।
यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः
पूर्णस्य संधारणमात्मनीह ॥२३६॥

अर्थ- जिसने सर्व शक्तियो को समेट लिया है ऐसे पूर्ण आत्मा का आत्मा मे धारण करना वही छोडने योग्य सब कुछ छोडा है और ग्रहण करने योग्य सब ग्रहण किया है ॥२३६॥

२३६ ॐ ह्रीं परिपूर्णानंदस्वरूपाय नम ।

कृतकृत्योऽहं ।

चामर

जो सर्व शक्तियँा को उर में समेट लेता ।
आत्मा को आत्मा मे पूर्ण धार सुख लेता ॥
छोड़ने योग्य सभी छोड दिया है उसने ।
जो ग्रहण योग्य वह ग्रहण किया है उसने ॥

यह जीवन दीपक निस्तेज अवश्य एक दिन होगा ही।
तन यौवन धन परिजन सबसे ही वियोग क्षण होगा ही॥

अब तो कृतकृत्य हो गया है सदा को ज्ञान।
वह ही हुआ जिसने यह निजात्मा ली जान॥
सर्व निज विशुद्धि ज्ञान आज उदय हो गया।
समयसार कलश का भाव हृदय हो गया॥२३६॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि।

(२३७)

ऐसे ज्ञान को देह ही नहीं है- इस अर्थ का, आगामी गाथा का सूचक श्लोक कहते हैं-

अनुष्टुप्

व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेवं ज्ञानमवस्थितम्।
कथमाहारकं तत्स्याद्येन देहोऽस्य शंक्यते॥२३७॥

अर्थ- इसप्रकार ज्ञान परद्रव्य से पृथक् अवस्थित है, वह आहारक कैसे हो सकता है कि जिससे उसके देह की शका की जा सके?॥२३७॥

२३७ ॐ ह्री कर्मनोकर्माहाररहितज्ञानस्वरूपाय नम।

निर्देहस्वरूपोऽहं।

चामर

अतएव ज्ञान परद्रव्य पृथक निश्चित है।
आत्मावस्थित है आहार रहित है॥
नो कर्म कर्म आहार नहीं करता है।
ज्ञान तो आहारक कभी न हो सकता है॥
ना ज्ञान को देह आहार करे क्यों।
परभाव पर द्रव्य का विचार करे क्यों॥
निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय में आया।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया॥२३७॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि।

पुण्य पुण्य है पाप पाप है कहते सब कर्मात्मा ।
पुण्य कर्म भी पाप कर्म है कहते हैं धर्मात्मा ॥

(२३८)

जबकि आत्मा के देह है ही नहीं, इसलिये पुद्‌गलमय देहस्वरूप लिंग मोक्ष का कारण नहीं है-इस अर्थ का, आगामी गाथाओं का सूचक काव्य कहते हैं-

अनुष्टुभ्

एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते ।
ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिंगं मोक्षकारणम् ॥२३८॥

अर्थ- इस प्रकार शुद्धज्ञान के देह ही नहीं है, इसलिए ज्ञाता को देहमय चिन्ह मोक्षका कारण नहीं है ॥२३८॥

२३८ ॐ ह्रीं शुद्धज्ञानदेहस्वरूपाय नम ।

शुद्धबोधशरीरोऽहं ।

चामर

पुद्‌गल जड देह रूप है ना शिव सुख कारण ।
है शुद्ध ज्ञान को देह नहीं दुख दारुण ॥
ज्ञाता को, देह नही मोक्ष हित में सक्षम ।
मुनि लिग आदि से मोक्ष मान्यता विभ्रम ॥
निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय में आया ।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२३८॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२३९)

अब इसी अर्थ को दृढ़ करने वाली आगामी गाथा का सूचक श्लोक कहते हैं-

जब तक नहीं स्वसन्मुख है तू तेरा शास्त्र ज्ञान भी व्यर्थ।
ग्यारह अग पूर्व नौ तक का आगम ज्ञान सभी है व्यर्थ॥

अनुष्टुभ्

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्वमात्मनः।
एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ॥२३९॥

अर्थ- आत्मा का तत्त्व दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मक है इसलिये मोक्ष के इच्छुक पुरुष को मोक्षमार्ग एक ही सदा सेवन करने योग्य है ॥२३९॥

२३९ ॐ ह्रीं दर्शनज्ञानचारित्रमयाखण्डचिदानन्दस्वरूपाय नम।

सहजज्ञानभास्करोऽहं।

चामर

दर्शन चारित्र ज्ञान त्रयात्मक आत्मा।
शिव सुख इच्छुक को परम सेव्य आत्मा॥
जो मोक्ष मार्ग का ही सेवन करते है।
वे अल्प काल मे सर्व बंध हरते है॥
निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय मे आया।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२३९॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि।

(२४०)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

एको मोक्ष पथोय एष नियतो दृग्ज्ञप्ति वृत्त्यात्मक-
स्तत्रैव स्थिति मेतियस्त मनिशं ध्यायेच्चतं चेतति॥
तस्मिन्नेव निरंतरं विहरति द्रव्यांतराण्यस्पृशन्
सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विंदति ॥२४०॥

अर्थ- दर्शनज्ञान चारित्रस्वरूप जो यह एक नियत मोक्षमार्ग है, उसीमें जो पुरुष स्थिति प्राप्त करता है अर्थात् स्थित रहता है, उसकी का निरन्तर ध्यान करता है, उसीको चेतता है-उसीका अनुभव करता है, और अन्य द्रव्यो को स्पर्श न करता हुआ उसमें निरन्तर

परम तत्व का सार न समझा गति-गति में करता नर्तन।
शुष्क ज्ञान की चादर ओढे करता विषयों में वर्तन ॥

विहार करता है, वह पुरष, जिसका उदय नित्य रहता है ऐसे समय के सार को अल्पकाल मे ही अवश्य प्राप्त करता है अर्थात् उसका अनुभव करता है ॥२४०॥

२४० ॐ ह्रीं द्रव्यान्तरस्पर्शरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

अस्पृष्टस्वरूपोऽहं ।

चामर

जो दर्शन ज्ञान चारित्र आत्म परिणाम ।
वह मोक्षमार्ग है उसमे ही हो विराम ॥
उसका ही अनुभव कर उसमे करो प्रवर्त्तन ।
फिर अन्य द्रव्य मे करो न कभी भी वर्त्तन ॥
व्यवहार मूढ बनने की आदते छोडो ।
निश्चय शुद्धात्म तत्त्व से ही नाता जोडो ॥
निश्चय शिव पथ के सेवन से अल्प समय में ।
हो जाता मोक्ष प्राप्त निज के ही निर्णय में ॥
निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय मे आया ।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२४०॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२४१)

यहां प्रथम उसका सूचक काव्य कहते हैं -

शार्दूल विक्रीडित

ये त्वेनं परिहृत्यसंवृतिपथप्रस्थापितेनात्मना
लिंगे द्रव्यमये वहन्ति ममतां तत्त्वावबोधच्युता: ।
नित्योद्योतमखंडमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभा-
प्राग्भारं समयस्य सारममलं नाद्यापि पश्यंति ते ॥२४१॥

अर्थ- जो पुरुष इस पूर्वोक्त परमार्थ स्वरुप मोक्षमार्ग को छोडकर व्यवहार मोक्षमार्ग

सिद्ध समान परम पद अपना, यह निश्चय कब लाओगे।
द्रव्यदृष्टि बन निज स्वरूप को, कब तक अरे सजाओगे॥

स्थापित अपने आत्मा के द्वारा द्रव्यमय लिंग में ममता करते हैं वे पुरुष तत्त्व के यथार्थ ज्ञान से रहित होते हुए अभी तक समयसार को नहीं देखते- अनभव नहीं करते । वह समयसार शुद्धात्मा कैसा है? नित्य प्रकाशमान है अखण्ड है एक है अर्थात् पर्यायो से अनेक अवस्थारूप होने पर भी जो एकरूपत्व को नहीं छोड़ता, अतुल प्रकाशवाला है स्वभाव प्रभा का पुंज है अमल है ॥२४१॥

२४१ ॐ ह्रीं अमलसमयसाराय नम ।

निर्ममबोधस्वरूपोऽहं ।

चामर

जो भी परमार्थ रूप मोक्ष पद तजता है ।
जो द्रव्यलिंग में बस ममता करता है ॥
तत्त्वार्थ ज्ञान बिना आत्मा न लख पाता ।
निज समयसार शुद्धात्मा नहीं पाता ॥
निर्मल अखंड नित्योद्योत आत्मा ।
अनुपमेय सूर्य पुज के समान आत्मा ॥
बिन अनुभव निश्चय कारण स्व समयसार का ।
तो फिर असभव है कार्य समयसार का ॥
निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय में आया ।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२४१॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२४२)

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

वियोगिनी

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयंति नो जनाः ।
तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयंतीह तुषं न तंदुलम् ॥२४२॥

आत्म स्वरूपवलंबन भावों, से विभाव परिहार करो ।
रत्नत्रय का वैभव पाकर, भव दुख सागर पार करो ॥

अर्थ- जिनकी दृष्टि व्यवहार में ही मोहित है ऐसे पुरुष परमार्थ नहीं जानते, जैसे जगत मे जिनकी बुद्धि तुषके ज्ञान में ही मोहित है ऐसे पुरुष तुषको ही जानते हैं, चावल को नहीं जानते ॥२४२॥

२४२ ॐ ह्रीं तुषबोधविमुग्धबुद्धिरहितज्ञानस्वरूपाय नमः।

निर्मलानंदस्वरूपोऽहं ।

चामर

जिनकी है अध दृष्टि व्यवहार से मोहित ।
परमार्थ जानते नही स्वय से द्रोहित ॥
परमार्थ जान रहा जो केवल तुष को ही ।
तंदुल की प्राप्ति नहीं होती है उसको ही ॥
जड शरीर आदि पर द्रव्य आत्मा माना ।
परमार्थ रूप निज आत्मा को ना जाना ॥
निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय में आया ।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२४२॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२४३)

अब आगामी गाथा का सूचक काव्य कहते हैं-

स्वागता

द्रव्यलिंगममकारमीलितै-
र्दृश्यते समयसार एव न ।
द्रव्यलिंगमिह यत्किलान्यतो
ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वतः ॥२४३॥

अर्थ- जो द्रव्यलिंग में ममकार के द्वारा अंध-विवेक रहित हैं, वे समयसार को ही नहीं देखते, कारण कि इस जगत में द्रव्यलिंग तो वास्तव में अन्य द्रव्य से होता है, मात्र यह ज्ञान ही निज से होता है॥२४३॥

संवरभाव जगाओगे तो, आस्रव बंध रुकेगा ही ।
भाव निर्जरा अपनायी तो, कर्म निर्जरित होगा ही ॥

२४३ ॐ ह्रीं द्रव्यलिगममकाररहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

अलिङ्गस्वरूपोऽहं ।

चामर

जो द्रव्य लिंग मे रत ममता के द्वारा ।
वह है विवेक रहित अध मूढ बेचारा ॥
निज समयसार को नही देखता पल भर ।
वह द्रव्यलिग मे है सदैव ही तत्पर ॥
यह द्रव्यलिग नही आत्म द्रव्य से होता ।
एकमात्र ज्ञान ही आत्म द्रव्य से होता ॥
निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय मे आया ।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२४३॥

ॐ ह्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(२४४)

अधिक कथन से क्या, एक परमार्थ का ही अनुभवन करो- इस अर्थ का काव्य कहते हैं-

मालिनी

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै-
रयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेकः ।
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रा-
न्न खलु समयसारादुत्तरं किंचिदस्ति ॥२४४॥

अर्थ-बहुत कथन से और बहुत दुर्विकल्पों से बस होओ, बस होओ, यहा मात्र इतना ही कहना है कि इस एकमात्र परमार्थ का ही निरन्तर अनुभव करो, क्योकि निजरस के प्रसार से पूर्ण जो ज्ञान उनके स्फुरायमान होने मात्र जो समयसार उससे उच्च वास्तव मे दूसरा कुछ भी नहीं है ॥२४४॥

शुद्धातम ही परमज्ञान है, शुद्धातम पवित्र दर्शन ।
यही एक चारित्र परम है यही एक निर्मल तप धन ॥

२४४ ॐ ह्रीं अजितल्पानल्पदुर्विकल्परहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

परमसमयसारोऽहं ।

अब बहुत कथन क्या करे अरे बस हो लो ।
विविध दुर्विकल्पों से अब तो तुम बस हो लो ॥
करो एकमात्र परमार्थ निंरंतर अनुभव ।
निज समयसार ही सार भूत है अभिनव ॥
निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय मे आया ।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२४४॥

ॐ ह्री सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(२४५)

अब अन्तिम गाथा मे यह समयसार ग्रन्थ के अभ्यास इत्यादि का फल कहकर आचार्य भगवान इस ग्रन्थ को पूर्ण करते हैं; उसका सूचक श्लोक पहले कहा जा रहा है-

अनुष्टुभ्

इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम् ।
विज्ञानघनमानंदमयमध्यक्षतां नयत् ॥२४५॥

अर्थ- आनन्दमय ज्ञानघन को प्रत्यक्ष करता हुआ, यह एक अक्षय चक्षु पूर्णता को प्राप्त होता है ॥२४५॥

२४५ ॐ ह्रीं विज्ञानघनानदाय नम ।

अक्षयबोधसौधस्वरूपोऽहं ।

चामर

आनंदमयी विज्ञान ज्ञान घन देखो ।
प्रत्यक्ष करो निज समयसार उर लेखो ॥

दर्शनीय श्रवणीय आत्मा, वंदनीय मननीय महान ।
शान्ति सिन्धु सागर अनुपम ध्रुव नव तत्वों में श्रेष्ठ प्रधान॥

यह अद्वितीय चक्षु अक्षय निज ज्ञान मयी ।
मिलता समयसार पूरा स्वध्यानमयी ॥
यह समयसार प्राभृत महान मगलमय ।
ध्रुव सौख्य रूप है सर्वोत्तम है शिव मय ॥
निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय मे आया ।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२४५॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२४६)

अब इस सर्वविशुद्धज्ञान के अधिकार की पूर्णता का कलशरूप श्लोक कहते है-

अनुष्टुप्

इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितम् ।
अखंडमेकमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम् ॥२४६॥

अर्थ- इस प्रकार यह आत्मा का तत्त्व ज्ञानमात्र निश्चित हुआ कि जो ज्ञानमात्रतत्त्व अखण्ड है एक है, अचल है , स्वसवेद्य है और अबाधित है ॥२४७॥

२४६. ॐ ह्रीं अखण्डैकाचलज्ञानस्वरूपाय नम ।

ज्ञानसौधस्वरूपोऽहं ।

चामर

यह आत्म तत्त्व ही ज्ञान अखडमयी है ।
इसमे न खड है संसारजयी है ॥
यह कर्मों से ही तो खड खड दिखलाता ।
पर है अखंड स्वसवेद्य ध्रुव का ज्ञाता ॥
अपने स्वभाव से चलित नहीं यह होता ।
ज्ञातव्य यही है ज्ञेय रूप ना होता ॥

भव बीजांकुर पैदा करने वाला, राग द्वेष हरलूं ।
वीतराग बन साम्यभाव से, इस भव का अभाव करलूं ॥

निर्मल विशुद्धि का ज्ञान हृदय मे आया ।
निज समयसार रस कलश आज भर पाया ॥२४६॥

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धिज्ञान अधिकार समन्वत श्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

महाअर्घ्य

वीरछंद

तीन काल तीनो लोको में समकित सम कोई न समर्थ।
समकित ही सत्यार्थ ज्ञानमय समकित ही चारित्र यथार्थ॥
समकित के बिन सकल तपस्या शून्य समान सदा दुखमय ।
समकित हो तो यही तपस्या देती परम सौख्य शिवमय॥
सम्यक् ज्ञान इसी से शोभित होता रहता तीनो काल ।
सम्यक् चारित भी शोभायमान होता है परमविशाल ॥
श्रेष्ठ प्रयोजनीय है समकित शुद्ध मुक्ति सुखदाता है।
मुक्ति मार्ग की युक्ति बताता यह त्रिभुवन का त्राता है॥

ॐ ह्रीं सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार समन्वित श्री समयसार कलश शास्त्राय महाअर्घ्यं नि ।

जयमाला

पंचचामर

स्वप्न आया है मुझे सिद्ध हो गया हूं मैं ।
मोह राग द्वेष तज शुद्ध हो गया हूं ॥
गुण अनंतपति हू मैं अष्ट गुण युक्त हूं ।
परम शुद्ध भाव मध्य पूर्ण खो गया हूं मैं॥
मेरा कैवल्य ज्ञान धन मेरे पास है ।
लोकालोक प्रकाशी बुद्ध हो गया हूं मैं ॥

निज अनुभव अभ्यास अध्ययन से होता है ज्ञान यथार्थ।
पर का अध्यवसान दुखमयी चारों गति दुखमयी परार्थ॥

मेरा ज्ञायक स्वरूप पूर्ण प्रकट हुआ है ।
ध्रुव ज्ञायक देख कर मुग्ध हो गया हू मैं ॥
स्वप्न भग होते ही ऑख मेरी खुल गयी ।
पुन संसार आग से ही जल गया हू मै ॥
फिर से पुरुषार्थ किया सम्यक्त्व घन लिया ।
पल मे ही राग द्वेष रहित हो गया हू मै ॥
सवर की शक्ति मेरी जाग गयी आज ही।
आस्रव के भाव जीत शुद्ध हो गया हूँ मै ॥
निर्जरा ने आके मेरी लाज बचायी है आज ।
इसीलिए पूर्णत प्रबुद्ध हो गया हू मै ॥
परिशिष्ट आत्म ख्याति पा लिया है मैने आज ।
था अशुद्ध किन्तु अब विशुद्ध हो गया हू मै ॥

ॐ ह्री समयसारप्राभृतग्रन्थे सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारे कलशस्वरूपज्ञानस्वरूपाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

आशीर्वाद

सरसी

सर्व विशुद्धि अधिकार की महिमा आयी आज ।
बिना परिश्रम हो गया त्वरित भाव जिनराज ॥
भव भावो से विलक्षण मेरा आत्म स्वभाव ।
सिद्ध स्वपद पाऊँ प्रभो कर ससार अभाव ॥

इत्याशीर्वाद :

जन्म जरा मरणादि व्याधि से रहित आत्मा ही अद्वैत ।
परम भाव परिणामो से भी विरहत कहीं इसमे द्वैत ॥

स्याद्‌वाद अधिकार

समयसार परिशिष्ट पूजन

स्थापना

छद-दोहा

स्याद्‌वाद अधिकार ही समयसार परिशिष्ट ।
समयसार निजआत्मा ही परमोत्तम इष्ट ॥
समयसार परिशिष्ट की पूजन करूँ महान ।
समयसार का प्राप्त कर पाऊँ पद निर्वाण ॥
अमृतचद्राचार्य ने लिखा समय परिशिष्ट ।
आत्मज्ञान की प्राप्ति हित यह अधिकार विशिष्ट ॥

ॐ ह्री समयसार कलश परिशिष्ट समन्वित श्री समयसार अत्र अवतर अवतर सवोषट्।
ॐ ह्रीं समयसार कलश परिशिष्ट समन्वित श्री समयसार अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापनं।
ॐ ह्री समयसार कलश परिशिष्ट समन्वित श्री समयसार अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छद-हरिगीत

समयसार महान का ही सार मगलमयी है ।
ज्ञानसम्यक् जल प्रदाता पूर्णत भवजयी है ॥
अमृतचद्राचार्य ने कल्याण निजपर का किया ।
समय का परिशिष्ट रच शुद्धात्मादर्शा दिया ॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश परिशिष्ट समन्वित श्री समयसाराय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

समयसार महान की ही गंध मंगलमयी है ।
ज्ञान चंदन की प्रदाता पूर्णत भवजयी है ॥

पापों की जड पर प्रहार कर, पुण्य मूल भी छेद करो।
मोक्ष हेतु संवर के द्वारा, आश्रव का उच्छेद करो॥

अमृतचद्राचार्य ने कल्याण निजपर का किया।
समय का परिशिष्ट रच शुद्धात्मादर्शा दिया॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश परिशिष्ट समन्वित श्री समयसाराय ससारताप विनाशनाय चदनं नि।

समयसार महान का ही ज्ञान मगलमयी है।
शुद्ध अक्षत पद प्रदाता पूर्णत भवजयी है॥
अमृतचद्राचार्य ने कल्याण निजपर का किया।
समय का परिशिष्ट रच शुद्धात्मादर्शा दिया॥

ॐ ह्री समयसार कलश परिशिष्ट समन्वित श्री समयसाराय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत नि।

समयसार महान का ही पुष्प मगलमयी है।
कामबाण विनाशकर्त्ता पूर्णत भवजयी है॥
अमृतचद्राचार्य ने कल्याण निजपर का किया।
समय का परिशिष्ट रच शुद्धात्मादर्शा दिया॥

ॐ ह्री समयसार कलश परिशिष्ट समन्वित श्री समयसाराय कामबाण विनाशनाय पुष्प नि।

समयसार महान की ही लक्ष्य मगलमयी है।
क्षुधारोग विनाशकर्त्ता पूर्णत भवजयी है॥
अमृतचद्राचार्य ने कल्याण निजपर का किया।
समय का परिशिष्ट रच शुद्धात्मादर्शा दिया॥

ॐ ह्री समयसार कलश परिशिष्ट समन्वित श्री समयसाराय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि।

समयसार महान की ही दीप मगलमयी है।
ज्ञानकेवल ज्योति दाता पूर्णत भव जयी है॥

बार-बार तू डूब रहा है बैठ उपल की नावों में ।
शिव सुख सुधा समुद्र स्वयं में, खोज रहा पर भावों में॥

अमृतचंद्राचार्य ने कल्याण निजपर का किया ।
समय का परिशिष्ट रच शुद्धात्मादर्शा दिया ॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश परिशिष्ट समन्वित श्री समयसाराय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

समयसार महान का ही ध्यान मगलमयी है ।
अष्टकर्म विनष्टकर्त्ता पूर्णत भवजयी है ॥
अमृतचद्राचार्य ने कल्याण निजपर का किया ।
समय का परिशिष्ट रच शुद्धात्मादर्शा दिया ॥

ॐ ह्री समयसार कलश परिशिष्ट समन्वित श्री समयसाराय शास्त्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

समयसार महान का ही स्वफल मगलमयी है ।
मोक्षफल अनुपम प्रदाता पूर्णत भवजयी है ॥
अमृतचद्राचार्य ने कल्याण निजपर का किया ।
समय का परिशिष्ट रच शुद्धात्मादर्शा दिया ॥

ॐ ह्री समयसार कलश परिशिष्ट समन्वित श्री समयसाराय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि.

समयसार महान का उद्देश मंगलमयी है ।
पद अनर्घ्य प्रदानकर्त्ता पूर्णत भवजयी है ॥
अमृतचद्राचार्य ने कल्याण निजपर का किया ।
समय का परिशिष्ट रच शुद्धात्मादर्शा दिया ॥

ॐ ह्री समयसार कलश परिशिष्ट समन्वित श्री समयसाराय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि ।

अर्घ्यावलि

परिशिष्ट

(२४७)

यहा तक भगवन्त कुन्दकुन्दाचार्य की ४१५ गाथाओंका विवेचन टीकाका

ज्ञानी स्वगुण चिन्तवन करता, अज्ञानी पर का चिन्तन ।
ज्ञानी आत्म मनन करता है, अज्ञानी विभाव मथन ॥

श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव ने किया है, और उस विवेचन में कलशरूप तथा सूचनिकारूप से २४६ काव्य कहे हैं। अब टीकाकार आचार्यदेव विचारते हैं कि-इस शास्त्र मे ज्ञान को प्रधान करके आत्मा को ज्ञानमात्र कहते आये है, इसलिये कोई यह तर्क करे कि-'जैनमत तो स्याद्वाद है, तब क्या आत्मा को ज्ञानमात्र कहने से एकान्त नही हो जाता? अर्थात् स्याद्वाद के साथ विरोध नहीं आता? और एक ही ज्ञान मे उपायतत्व तथा उपेयतत्व दोनों कैसे घटित होते है?' ऐसे तर्क का निराकरण करने के लिए टीकाकार आचार्यदेव यहा सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार के अन्त मे परिशिष्ट रूप से कुछ कहते हैं। उसमे प्रथम श्लोक इस प्रकार है ।

अनष्टुभ्

अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः ।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिन्त्यते ॥२४७॥

अर्थ- यहा स्याद्वाद की शुद्धि के लिए वस्तुतत्व की व्यवस्था और उपाय उपेयभाव का जरा फिर से भी विचार करते है ॥२४७॥

२४७ ॐ ह्रीं उपायोपेयभावरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

सहजशुद्धोऽहं ।

छंद-राधिका

इस वस्तु तत्त्व की सकल व्यवस्था जानो।
स्याद्वाद शुद्धि के लिए सुतत्त्व पिछानो ॥
क्या है उपेय अरु क्या उपाय है जानो ।
साधक अरु साध्य भाव को भी पहचानो ॥
अब समयसार परिशिष्ट अध्ययन कर लो ।
अपना निज समयसार रस निज मे भरलो ॥२४७॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

मिथ्यातम के जाए बिन, सच्ची सुख शान्ति नहीं होती ।
सम्यक् दर्शन हो जाने पर, फिर भव भ्रान्ति नहीं होती॥

(२४८)

यहा निम्न प्रकार से चौदह काव्य भी कहे जा रहे हैं-

शार्दूल विक्रीड़ित

बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवद्
विश्रान्तं पररूप एव परितो ज्ञानं पशोः सीदति ।
यत्तत्तदिह स्वरूपतः इति स्याद्वादिनस्तत्पुन-
र्दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्णं समुन्मज्जति ॥२४८॥

अर्थ- बाह्य पदार्थों के द्वारा सम्पूर्णतया पिया गया अपनी व्यक्ति को छोड देने से रिक्त हुआ, सम्पूर्णतया पररूप मे ही विश्रांत ऐसे पशुका ज्ञान नाश को प्राप्त होता है, और स्याद्वादीका ज्ञान तो, जो तत् है वह स्वरूप से तत् है ऐसी मान्यता के कारण अत्यन्त प्रगट हुए ज्ञानघनरूप स्वभाव के भार से, सम्पूर्ण उदित होता है ॥२४८॥

२४८ ॐ ह्रीं पररूपविश्रान्तरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

ब्रह्मारामस्वरूपोऽहं ।

चामर

जो बाह्य के पदार्थ द्वारा लय हुआ है ।
पर को आधार मान स्वय शून्य हुआ है ॥
पशुवत एकान्ती का ज्ञान नाश को पाता ।
स्याद्वादी का सदा उदय ज्ञान का पाता ॥
एकान्त वादी का ज्ञान ज्ञेय पी जाते ।
स्याद्वादी ज्ञान रूप शुद्ध प्रगट मे आते ॥
वे ज्ञान तत्त्व को नही छोडते पल भर ।
है अनेकान्त का निज स्वरूप अति सुन्दर ॥
समयसार कलश परिशिष्ट अध्ययन करो ।
अपने निज समयसार का नित्य मनन करो ॥२४८॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

सह अस्तित्व समन्वय होगा, संयममय अनुशासन से।
सत्य अहिंसा अपरिग्रह अस्तेय शील के शासन से॥

(२४९)

अब दूसरे भग का कलशरूप काव्य कहते हैं -

शार्दूल विक्रीड़ित

विश्वं ज्ञानमिति प्रत्यक्वर्य सकलं दृष्टवा स्वतत्तवाशया
भूत्वा विश्वमयः पशुः पशुरिव स्वच्छन्दमाचेष्टते।
यत्तत्परररूपतो तदिति स्याद्वाददर्शी पुन--
विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्य स्वतत्त्वं स्पृशेत् ॥२४९॥

अर्थ- पशु अर्थात्, सर्वथा एकान्तवादी अज्ञानी, 'विश्व ज्ञान है' ऐसा विचार करके सबको निजतत्व की आशा से देखकर विश्वमय होकर, पशु की भाति स्वच्छदतया चेष्टा करता है-प्रवृत्त होता है, और स्याद्वाद का देखने.वाला तो यह मानता है कि ' जो तत् है वह पररूप से तत् नही है , इसलिये विश्व से भिन्न ऐसे तथा विश्व से रचित होने पर भी विश्व रूप न होने वाले ऐसे ज्ञेय वस्तु से भिन्न ऐसा अपने तत्वका स्पर्श अनुभव करता है ॥२४९॥

२४९ ॐ ह्री स्वच्छन्दचेष्टारहितज्ञानस्वरूपाय नम।

शिवमंगलस्वरूपोऽहं।

चामर

पशुवत अज्ञानी तो ज्ञेयो मे मोहित है।
ज्ञेय पदार्थ आत्मा है इससे ही दूषित है॥
पशु सम ज्ञेयो मे यह सदा चेष्टा करता।
तत् अतत् जानता नहीं व्यर्थ दुख भरता॥
स्यादवादी ने तो तत् स्वरूप स्वयं का जाना।
पर से है अतत्पना यह भी है पहचाना॥
वह ज्ञेय वस्तु से सदा भिन्न रहता है।
अपने स्वतत्त्व का ही अनुभव वो करता है॥

कष्टों से भरपूर सर्वथा यह संसार असार है ।
निज स्वभाव के द्वारा मिलता शिव सुख अपरंपार है ॥

समयसार कलश परिशिष्ट अध्ययन करो ।
अपने निज समयसार का नित्य मनन करो ॥२४९॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२५०)

अब तीसरे भग का कलशरूप काव्य कहते हैं -

शार्दूलविक्रीड़ित

बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विष्वग्विचित्रोल्लस-
ज्ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुटयन्पशुर्नश्यति ।
एकद्रव्यतया सदाप्युदितया भेदभ्रमं ध्वंसयन्नेकं
ज्ञानमबाधितानुभवनं पश्यत्यनेकांतवित् ॥२५०॥

अर्थ- पशु अर्थात एकातवादी अज्ञानी, बाह्य पदार्थों को ग्रहण करने के स्वभाव की अतिशयता के कारण, चारो ओर प्रगट होने वले अनेक प्रकार के ज्ञेयाकारों से जिसकी शक्ति विशीर्ण हो गई है ऐसा होकर सम्पूर्णतया खण्ड-खण्डरूप होता हुआ नष्ट हो जाता है, और अनेकान्त का जानकार तो, सदा उदित एक द्रव्यत्व के कारण भेद के भ्रमको नष्ट करता हुआ जो एक है और जिसका अनुभवन निर्बाध है ऐसे ज्ञान को देखता है-अनुभव करता है ॥२५०॥

२५० ॐ ह्रीं अबाधितज्ञानस्वरूपाय नम.।

भेदभ्रमरहितोऽहं ।

चामर

अज्ञानी ही पदार्थ बाह्य ग्रहण करता है ।
अपने स्वभाव को वह विशीर्ण करता है ॥
वह ज्ञान शक्ति को खंड खड करता है ।
ज्ञेयो मे ज्ञान मान कष्ट सदा भरता है ॥
पर अनेकान्त का जानकार तो सम्यक् ।
भेदो के भ्रम को क्षय करता है श्रुत सम्यक् ॥

भावलिंग बिन द्रव्यलिंग का तनिक नहीं कुछ मूल्य है ।
अविरत चौथा गुणस्थान भी शिवपथ में बहुमूल्य है ॥

इसका अनुभव ही निर्बाध ज्ञान को लखता ।
भेदो के भ्रम विनाश परम सौख्य उर भरता ॥
समयसार कलश परिशिष्ट अध्ययन करो ।
अपने निज समयसार का नित्य मनन करो ॥२५०॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२५१)

अब चौथे भग कलशरूप काव्य कहा जाता है-

शार्दूलविक्रीड़ित

ज्ञेयाकारकलकमेचकचिति प्रक्षालनं कल्पय-
न्नेकाकारचिकीर्षया स्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति ।
वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगत ज्ञानं स्वतः क्षालितं
पर्यायैस्तदनेकतां परिमृशन् पश्यत्यनेकांतवित् ॥२५१॥

अर्थ पशु अर्थात् सर्वथा एकान्तवादी अज्ञानी, ज्ञेयाकार-रूपी कलक से मलिन ऐसा चेतन मे प्रक्षालन की कल्पना करता हुआ एकाकार करने की इच्छा से ज्ञान को-यद्यपि वह ज्ञान अनेकाकार रूप से प्रगट है तथापि-नहीं चाहता और अनेकान्त का जानने वाला तो, पर्यायो से ज्ञान की अनेकता को जानता हुआ, विचित्र होने पर भी अविचित्रता को प्राप्त ऐसे ज्ञान के स्वत क्षालित अनुभव करता है ॥२५१॥

२५१ ॐ ह्री ज्ञेयाकारकलकमेचकरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

निष्कलंकबोधस्वरूपोऽहं ।

चामर

पशु सम एकान्ती तो ज्ञेयाकार स्व करता ।
ज्ञेयाकार रहित एक आकार वह करता ॥
करता है ज्ञान का अभाव मूढता द्वारा ।
निज का प्रक्षाल कर पाता है भव कार ॥

दृष्टि अपेक्षा से तो सम्यक दृष्टि सदा ही मुक्त है ।
शुद्ध त्रिकाली ध्रुव स्वरूप निज गुण अनंत से युक्त है ॥

किन्तु अनेकान्ती अनेकता को जाने ।
पर्यायों से ज्ञान की अनेकता माने ॥
यह है विचित्र पर अविचित्रता पाता ।
निज शुद्ध ज्ञान का अनुभव कर सुख पाता ॥
समयसार कलश परिशिष्ट अध्ययन करो ।
अपने निज समयसार का नित्य मनन करो ॥२५१॥

ॐ ह्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२५२)

अब पाँचवे भग का कलशरूप काव्य कहते हैं-

शार्दूलविक्रीड़ित

प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावंचित:
स्वद्रव्यानवलोकनेन परित: शून्य: पशुर्नश्यति ।
स्वद्रव्यास्तितया निरूप्यनिपुणं सद्य: समुन्मज्जता
स्याद्वादा तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन् जीवति ॥२५२॥

अर्थ-पशु अर्थात् सर्वथा एकान्तवादी अज्ञानी, प्रत्यक्ष आलिखित ऐसे प्रगट और स्थिर परद्रव्यो के अस्तित्व से ठगाया हुआ, स्वद्रव्य को नहीं देखता होने से सम्पूर्णतया शून्य होता हुआ नाश को प्राप्त होता है, स्याद्वादी तो, आत्मा को स्वद्रव्य रूप से अस्तिपने से निपुणतया देखता है इसलिये तत्काल प्रगट विशुद्ध ज्ञानप्रकाश के द्वारा पूर्ण होता हुआ जीता है नाश को प्राप्त नहीं होता ॥२५२॥

२५२ ॐ ह्रीं शुद्धबोधतेजस्वरूपाय नम:।

बोधसागरोऽहं ।

चामर

अज्ञानी ज्ञेय पदार्थों मध्य प्रवर्त्तता ।
निज का अस्तित्व भूल ज्ञान नाश को पाता ।

केवल निज परमात्म तत्व की श्रद्धा ही कर्त्तव्य है ।
आत्म तत्व श्रद्धानी का ही तो उज्ज्वल भवितव्य है ॥

ज्ञानी स्व क्षेत्र मे स्वय सदैव वर्त्तता ।
स्व ज्ञेय जानता फिर भी निज मे रहता ॥
निज में ही जीता है नाश नही पाता है ।
अस्तित्व अपना ही धारण यह करता है ॥
समयसार कलश परिशिष्ट अध्ययन करो ।
अपने निज समयसार का नित्य मनन करो ॥२५२॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२५३)

अब छट्ठे भग का कलशरूप काव्य कहते हैं-

शार्दूलविक्रीड़ित

सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासित:
स्वद्रव्यभ्रमत: पशु: किल परद्रव्येषु विश्राम्यति ।
स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां
जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत् ॥२५३॥

अर्थ- पशु अर्थात् सर्वथा एकान्तवादी अज्ञानी, दुर्वासना से वासित होता हुआ, आत्मा को सर्वद्रव्यमय मानकर, स्वद्रव्य के भ्रम से परद्रव्यो मे विश्रान्त करता है, और स्याद्वादी तो, समस्त वस्तुओं मे परद्रव्य स्वरूप से नास्तित्व को जानता हुआ, जिसकी शुद्धज्ञान महिमा निर्मल है ऐसा वर्तता हुआ, स्वद्रव्य का ही आश्रय करता है ॥२५३॥

२५३ ॐ ह्रीं दुर्वासनारहितज्ञानस्वरूपाय नम।

निर्मलशुद्धबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

ज्ञेय पदाथो के निमित्त से चेतन मे जो हो आकार ।
उन्हें छोडकर अज्ञानी पशुवत करता अपना सहार ॥
किन्तु स्याद्‌वादी स्व क्षेत्र में रहता पर से है नास्तित्व।
वह चैतन्याकार न तजता निर्मल है इसका अस्तित्व ॥

वस्तु त्रिकाली निरावरण निर्दोष सिद्ध सम शुद्ध है ।
द्रव्य दृष्टि बनने वाला ही होता परम विशुद्ध है ॥

समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज में आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर में लाओ ॥२५३॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२५४)

अब सातवें भंग कलशरूप काव्य कहते हैं-

शार्दूलविक्रीड़ित

भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः सदा
सीदत्येव बहिः पतंतमभितः पश्यन्मपुमांसं पशुः ।
स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः स्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनिखातबोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन् ॥२५४॥

अर्थ-पशु अर्थात् एकान्तवादी अज्ञानी, भिन्न क्षेत्र में रहे हुए ज्ञेयपदार्थों मे जो ज्ञेय ज्ञायक सबध रूप निश्चित व्यापार है उसमे प्रवर्तता हुआ, आत्मा को सम्पूर्णतया बाहर पडता देखकर सदा नाश को प्राप्त होता है, और स्याद्वाद के जानने वाले तो स्वक्षेत्र से अस्तित्व के कारण जिसका वेग रुका हुआ है ऐसा होता हुआ आत्मा मे ही आकाररूप हुए ज्ञेयों मे निश्चित व्यापार की शक्तिवाला होकर, जीता है ॥२५४॥

२५४ ॐ ह्रीं भिन्नक्षेत्रबोध्यनियतव्यापारनिष्ठत्वरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

सर्वज्ञत्वशक्तिस्वरूपोऽहं ।

छंद-चामर

अज्ञानी पर ज्ञेय मे ही प्रवर्तता ।
इस प्रकार आत्मा का नाश वह खुद करता ॥
स्याद्वादी ज्ञानी तो निज मे पवर्तता ।
निज की शक्ति से ही जीता है सुख पाता ॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो ।
अपने निज समयसार का नित्य मनन करो ॥२५४॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

जो चारित्र भ्रष्ट है वह तो एक दिवस तर सकता है ।
पर श्रद्धा से भ्रष्ट कभी भव पार नहीं कर सकता है ॥

(२५५)

अब आठवे भग का कलशरूप काव्य कहते हैं-

शार्दूलविक्रीडित

स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्
तुच्छीभूय पशुः प्रणश्यति चिदाकारान् सहार्थैर्वमन् ।
स्याद्वादी तु वसन् स्वधामनि परक्षेत्रे विदन्नास्तितां
त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षी परान् ॥२५५॥

अर्थ- पशु अर्थात् सर्वथा एकान्तवादी अज्ञानी, स्वत्रक्षेत्र मे रहने के लिये भिन्न-भिन्न परक्षेत्र में रहे हुए ज्ञेय पदार्थों को छोडने से, ज्ञेय पदार्थों के साथ चैतन्य के आकारो का भी वमन करता हुआ तुच्छ होकर नाश को प्राप्त होता है, और स्याद्वादी तो स्वक्षेत्र मे रहता हुआ, परक्षेत्र में अपना नास्तित्व जानता हुआ ज्ञेय पदार्थों को छोड़ता हुआ भी वह पर पदार्थों से चैतन्य के आकारो को खींचता है इसलिये तुच्छता को प्राप्त नहीं होता ॥२५५॥

२५५ ॐ ह्रीं निजचिदानन्दधामस्वरूपाय नम ।

ब्रह्मधामस्वरूपोऽहं ।

चामर

एकान्तवादी तो तुच्छनाश पाता है ।
चैतन्याकार वमन करके दुख पाता है ॥
स्यादवादी जीव तो स्वक्षेत्र मे ही रहता है ।
चैतन्याकार को खीच सौख्य लहता है ॥
समयसार कलश परिशिष्ट अध्ययन करो ।
अपने निज समयसार का नित्य मनन करो ॥२५५॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२५६)

अब नव में भग का कलशरूप काव्य कहते हैं-

चौरासी के चक्कर से बचना है तो निज ध्यान करो।
नव तत्वों की श्रद्धापूर्वक स्वपर भेद विज्ञान करो॥

शार्दूल विक्रीड़ित

पूर्वालंबितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्
सीदत्येव न किंचनापि कलयन्नत्यंततुच्छः पशुः।
अस्तित्वं निजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः
पूर्णस्तिष्ठति बाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि ॥२५६॥

अर्थ- पशु अर्थात् सर्वथा एकान्तवादी अज्ञानी पूर्वालम्बित ज्ञेय पदार्थों के नाश के समय ज्ञान का भी नाश जानता हुआ, और इस प्रकार ज्ञान को कुछ भी न जानता हुआ अत्यन्त तुच्छ होता हुआ नाश को प्राप्त होता है, और स्याद्वाद का ज्ञाता तो आत्मा का निज काल से असित्त्व जानता हुआ, बाह्य वस्तुए बारम्बार होकर नाश को प्राप्त होती हैं, फिर भी स्वय पूर्ण रहता है ॥२५६॥

२५६ ॐ ह्री ज्ञानविनाशरहितज्ञानस्वरूपाय नम।

ब्रह्मज्ञानस्वरूपोऽहं।

ताटंक

अज्ञानी तो ज्ञेय नाश होने पर ज्ञान नाश जाने।
नही ज्ञान को वस्तु मानता मात्र ज्ञेय निज को माने॥
यह अत्यंत तुच्छ होकर के सदा नाश को होता प्राप्त।
ज्ञेय ज्ञान कुछ नहीं समझता दुख होता जीवन में व्याप्त॥
किन्तु स्याद्‌वाद का ज्ञाता निज अस्तित्व जानता है।
बाह्‌य वस्तुऍं ही क्षय होतीं स्वयं पूर्ण ही रहता है॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज मे आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर में लाओ॥२५६॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि.।

(२५७)

अब दशवें भंग का सलशरूप काव्य कहते हैं-

भेदज्ञान के बिना न मिलता मिथ्याभ्रम का अंत रे ।
भेदज्ञान से सिद्ध हुए हैं जीव अनंतानंत रे ॥

शार्दूल विक्रीड़ित

अर्थालंबनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य सत्त्वं बहि-
र्ज्ञेयालंबनलालसेन मनसा भ्राम्यन् पशुर्नश्यति ।
नास्तित्वं परकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुञ्जीभवन् ॥२५७॥

अर्थ- पशु अर्थात् अज्ञानी एकान्तवादी, ज्ञेयपदार्थों के आलम्बन काल मे ही ज्ञान का अस्तित्व जानता हुआ, बाह्य ज्ञेयो के आलम्बन की लालसा वाले चित्त से भ्रमण करता हुआ नाश को प्राप्त होता है, और स्याद्वादका ज्ञाता तो पर काल से आत्मा का नास्त्वि जानता हुआ, आत्मा मे दृढतया रहा हुआ नित्य सहज ज्ञान के पुजरूप वर्तता हुआ टिकता है- नष्ट नही होता ॥२५७॥

२५७ ॐ ह्रीं ज्ञेयालबनलालसारहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

सहजज्ञानैकपुंजस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

ज्ञेय पदार्थो के आलंबन काल ज्ञान का है अस्तित्व ।
अज्ञानी यह जान रहा है पर से मेरा है अस्तित्व॥
बाहय ज्ञेय को आलबन की है लालसा ह्रदय भीतर ।
बाहर भ्रमण किया करता है और नाश पाता मर मर ॥
स्याद्वाद का ज्ञाता तो पर कालो से नास्तित्व पिछान।
आत्मा मे दृढता से रहता ज्ञान पुज है प्रकाशवान ॥
यह तो नष्ट नहीं होता है है अस्तित्व स्वगुण उर व्याप्त ।
ज्ञेयो से हैं भिन्न ज्ञान का पुंज आत्मा में है प्राप्त ॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज मे आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर मे लाओ ॥२५७॥

ॐ ह्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

निज में जागरूक रह पंच प्रमादों पर तुम जय पाओ ।
अप्रमत्त बन निज वैभव से सहज पूर्णता को लाओ ॥

(२५८)

अब ग्यारहवे भंग का कलशरूप काव्य कहते हैं-

शार्दूल विक्रीडित

विश्रान्तः परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु
नश्यत्येव पशुः स्वभावमहिमन्येकांतनिश्चेतनः ।
सर्वस्मान्नियतस्वभावभवनज्ञानाद्विभक्तो भवन्
स्याद्वादी तु न नाशमेति सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः ॥२५८॥

अर्थ-अर्थात् एकान्तवादी अज्ञानी परभावो भवन को ही जानता है इसलिये सदा बाह्य वस्तुओ मे विश्राम करता हुआ, स्वभाव की महिमा मे अत्यन्त निश्चेतन वर्तता हुआ, नाश को प्राप्त होता है, और स्याद्वादी तो नियत स्वभाव के भवनस्वरूप ज्ञान के कारण सब से भिन्न वर्तता हुआ, जिसने सहज स्वभाव का प्रतीतिरूप ज्ञातृत्व स्पष्ट-प्रत्यक्ष अनुभवरूप किया है ऐसा होता हुआ, नाश को प्राप्त नही होता ॥२५८॥

२५८ ॐ ह्री परभावभावकलनरहितज्ञानस्वरूपाय नम·
सदाशिवस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

अज्ञानी परभावो से अपना अस्तित्व मानता है ।
सदा बाह्य वस्तु मे कर विश्राम नाश को पाता है ॥
स्वभाव की महिमा में हो निश्चेतन शून्य वर्तता है ।
नाश आत्मा का करता है दुक्ख भयकर भरता है॥
स्याद्वादि तो नियत स्वभाव भवन स्वरूप ही रहता है।
परभावो से भिन्न वर्तता ज्ञान रूप ही रहता है ॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज में आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर में लाओ ॥२५८॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

जो निवृत्ति की परम भक्ति में रहते हैं तल्लीन सदा ।
सिद्ध वधू के दिव्य मुकुट पर होते हैं आसीन सदा ॥

(२५९)

अब बारहवें भग का कलशरूप काव्य कहते हैं -

शार्दूलविक्रीडित

अध्यास्यात्मनि सर्वभावभवनं शुद्धस्वभावच्युतः
सर्वत्राप्यनिवारितो गतभयः स्वैरं पशुः क्रीडति ।
स्याद्वादी तु विशुद्ध एव लसति स्वस्य स्वभावं भरा-
दारूढःपरभावभावविरहव्यालोकनिष्कंपितः ॥२५९॥

अर्थ- पश अर्थात् अज्ञानी एकान्तवादी, सर्व भावरूप भवन का आत्मा में अध्यास करके शुद्ध स्वभाव से च्युत होता हुआ, किसी परभाव को शेष रखे बिना सर्व परभावो मे स्वच्छन्दता पूर्वक निर्भयता से क्रीडा करता है, और स्याद्वादी तो अपने स्वभाव मे अत्यन्त आरूढ होता हुआ, परभावरूप भवन के अभाव की दृष्टि के कारण निष्कम्प वर्तता हुआ, शुद्ध ही विराजित रहता है ॥२५९॥

२५९ ॐ ह्री निजपरमेश्वरस्वरूपाय नम।

निष्कंपज्ञानज्योतिस्वरूपोऽहं ।

अज्ञानी तो सबभावो का आत्मा मे करता अध्यास ।
शुद्ध भाव निज से च्युत होता परभावो में निर्भय वास ॥
स्याद्वादि अपने स्वभाव मे होता है अत्यंतारूढ ।
परभावो के अभाव से निष्कर्म वर्त्तता शुद्ध स्वरूप ॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज में आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर में लाओ ॥२५९॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२६०)

अब तेरहवें भग का कलशरूप काव्य कहते हैं -

संयम तप वैराग्य न जागा तो फिर तत्व मनन कैसा ।
निज आतम का भानु न जागा तो फिर निज चिंतन कैसा॥

शार्दूलविक्रीडित

प्रादुर्भावविराममुद्रितवहज्ज्ञानांशनानात्मना
निर्ज्ञानात्क्षणभङ्गसङ्गपतितः प्रायः पशुर्नश्यति ।
स्याद्वादी तु चिदात्मना परिमृशंश्चिद्वस्तु नित्योदितं
टंकोत्कीर्णघनस्वभावमहिम ज्ञानं भवन् जीवति ॥२६०॥

अर्थ- पशु अर्थात् एकान्तवादी अज्ञानी, उत्पाद्-व्यय से लक्षित ऐसे बहते हुए ज्ञान के अशरूप अनेकात्मक के द्वारा ही निर्णय अर्थात् ज्ञान करता हुआ, क्षणभग के सग मे पड़ा हुआ, बहुलता से नाश को प्राप्त होता है, चैतन्यात्मकता के द्वारा चैतन्य वस्तु को नित्य-उदित-अनुभव करता हुआ, टकोत्कीर्णघनस्वभाव जिसकी महिमा है ऐसा ज्ञानरूप वर्तता हुआ, जीता है ॥२६०॥

२६० ॐ ह्री क्षणभङ्गसङ्गरहितज्ञानस्वरूपाय नम।

टङ्कोत्कीर्णघनस्वरूपोऽहं ।

ताटक

अज्ञानी ज्ञेयो के आधारानुसार ज्ञान करता ।
अनित्य पर्यायो को लख कर अपने को विनष्ट करता ॥
स्याद्वादि तो ज्ञान ज्ञेय अनुसार जानता व्यय उत्पाद ।
नित्य उदय चैतन्य भाव का अनुभव करता लेता स्वाद॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज मे आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर मे लाओ ॥२६०॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२६१)

अब चौदहवे भग का कलशरूप काव्य कहते हैं -

शार्दूलविक्रीडित

टंकोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया
वाञ्छत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नं पशुः किंचन ।

निज स्वरूप में थिर होना ही है सम्यक् चारित्र प्रधान।
परम ज्योति आनद पूर्णत है सम्यक् चारित्र महान ॥

ज्ञानं नित्यमनित्यतापरिगमेऽप्यासादयत्युज्ज्वलं
स्याद्वादीतदनित्यतां परिमृशंश्चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात् ॥२६१॥

अर्थ- पशु अर्थात् एकान्तवादी अज्ञानी, टकोत्कीर्ण विशुद्ध ज्ञान के विस्ताररूप एक-आकार आत्मतत्त्व की आशा से, उछलती हुई निर्मल चैतन्य परिणति से भिन्न कुछ चाहता है और स्याद्वादीतो, चैतन्य वस्तु की वृत्ति के क्रम द्वारा उसकी अनित्यता का अनुभव करता हुआ, नित्य ऐसे ज्ञान को अनित्यता से व्याप्त होने पर भी उज्ज्वल मानता है अनुभव करता है ॥२६१॥

२६१ ॐ ह्री टङ्कोत्कीर्णशुद्धबोधात्मस्वरूपाय नम ।

नित्यावबोधसौधस्वरूपोऽहं ।

वीरछद

टकोत्कीर्ण विशुद्ध ज्ञान विस्तार रूप है एकाकार ।
अज्ञानी चेतन परिणति से भिन्न चाहता आत्मा सार ॥
किन्तु विचार आत्म तत्त्व ऐसा न कही है रे मतिमान ।
व्यर्थ खेद खिन्न होता है करता है अपना अवसान ॥
स्याद्वादी चैतन्य वस्तु की वृत्ति के क्रम के द्वारा ।
अनित्यता का अनुभव करता किन्तु वस्तु अपरपारा ॥
नित्य ज्ञान को अनित्यता से व्याप्त जानकर भी निर्मल।
अनुभव करता है स्वज्ञान का और मानता है उज्ज्वल॥
द्रव्यापेक्षा ज्ञान नित्य है तो भी व्यय उत्पाद अनित्य ।
वस्तु स्वभाव यही है जानो शुद्ध आत्मा त्रिकाल नित्य॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज मे आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर मे लाओ ॥२६१॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२६२)

पूर्वोक्त प्रकार से अनेकात, अज्ञान से मूढ हुए जीवो को ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व

जीव स्वयं ही कर्म बांधता कर्म स्वयं फल देता है ।
जीव स्वय पुरुषार्थ शक्ति से कर्म बध हर लेता है ॥

प्रसिद्ध कर देता है-समझा देता है इस अर्थ को काव्य कहा जाता है -

अनुष्टुप्

इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसाधयन्
आत्मतत्त्वमनेकांत: स्वयमेवानुभूयते ॥२६२॥

अर्थ-इस प्रकार अनेकान्त अर्थात् स्याद्वाद अज्ञानमूढ प्राणियो को ज्ञानमात्र आत्मतत्व प्रसिद्ध करता हुआ स्वयमेव अनुभव मे आता है ॥२६२॥

२६२ ॐ ह्री आत्मारामस्वरूपाय नम ।

शिवारामस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

इस प्रकार से अनेकान्त या स्याद्वाद कथनी करता।
वह अज्ञान मूढ प्राणी को आत्म तत्त्व प्रसिद्ध करता ॥
अपने द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव से सत्स्वरूप आत्मा ।
पर के द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव से असत् रूप आत्मा॥
नित्य अनित्य स्वरूप जानकर धर्म स्वरूप करो प्रत्यक्ष।
अनुभव गोचर कर प्रतीति में लाओ सम्यक् ज्ञान समक्ष॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज मे आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर मे लाओ ॥२६२॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२६३)

पूर्वोक्त प्रकार से वस्तु का स्वरूप अनेकान्तमय हो से अनेकान्त अर्थात् स्याद्वाद सिद्ध हुआ इस अर्थ का काव्य अब कहा जाता है

अनुष्टुप्

एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन् स्वयम् ।
अलंघयं शासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थित: ॥२६३॥-

पुण्य मार्ग तो सदा बहिर्मुख धर्म मार्ग अतर्मुख है ।
पुण्यो का फल जगत भ्रमण दुख और धर्म फल शिव सुख है॥

अर्थ- इस प्रकार अनेकान्त कि जो जिनदेव का अलघ्य शासन है वह वस्तु के यथार्थ स्वरूप की व्यवस्थिति द्वारा स्वय अपने आपको स्थापित करता हुआ स्थित हुआ-निश्चित हुआ-सिद्ध हुआ ॥२६३॥

२६३ ॐ ह्री निजमगलदेवस्वरूपाय नम ।

सहजसौख्यसागरोऽह ।

वीरछद

जिनवर का यह अनेकान्त तो है अलध्य शासन सुविशाल ।
वस्तु स्वरूप यथार्थ व्यवस्थित स्वय सिद्ध है सदा त्रिकाल ॥
अनेकान्त ही जिनमत का निर्बाध यथार्थ रूप कहता ।
असत् कल्पना का प्रलाप यह नही कथन आगम करता॥
शक्ति अनतो है आत्मा मे सैतालीस मुख्य जानो ।
जीवत्वादिक स्वस्वामित्वमय निज सबध शक्ति मानो ॥
अत निपुण पुरुषो तुम जानो भली भाति से करो विचार।
प्रत्यक्ष अरु अनुमान प्रमाण से अनुभव कर पाओ भव पार ॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज मे आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर मे लाओ ॥२६३॥

ॐ ह्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(२६४)

इत्यादि अनेक शक्तियो से युक्त आत्मा है तथापि वह ज्ञानमात्रता को नहीं छोडता-इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं-

वसन्ततिलका

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि
यो ज्ञानमात्रमयता न जहाति भावः
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं
तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ॥२६४॥

सम्यक् दर्शन से विहीन है तो व्रत पालन मे है कष्ट ।
गज पर चढ़ ईंधन ढोने जैसा दुर्मति होता मति भृष्ट ॥

अर्थ- इत्यादि अनेक् निज शक्तियो से भलीभाति परिपूर्ण होने पर भी जो भाव ज्ञानमात्रमयता को नही छोडता, ऐसा वह, पूर्वोक्त प्रकार से क्रमरूप और अक्रमरूप से वर्तमान विवर्त् से अनेक प्रकार का द्रव्य पर्यायमय चैतन्य इस लोक मे वस्तु है ॥२६४॥

२६४ ॐ ह्रीं अनेकनिजशक्तिसपत्रचिद्रूपाय नम ।

अनंतवीर्यस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

सैतालीस शक्ति से गर्भित है अनत शक्तिया महान ।
जो भी भाव ज्ञान मात्र समता को ना तजता अमलान॥
क्रम अक्रम रूपी विवर्त्त से है परिणमन अनेक प्रकार ।
द्रव्य सदा पर्यायमयी चैतन्य वस्तु लोक मे सार ॥
ज्ञान असाधारणभावी है ये उसको नहीं छोडता है ।
सर्व अवस्था ज्ञानमयी है परमे नही दौडता है ॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज मे आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर मे लाओ ॥२६४॥

ॐ ह्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

सोरठा

सिद्ध अनतानत महाशक्तिशाली सभी ।
शक्ति सर्वकर व्यक्त सभी हुए परमात्मा ॥
सब जीवो के पास सभी शक्ति अव्यक्त है ।
सैतालीस सुमुख्य शोभित प्रभु पूजन करूँ ॥

(२६५)

इस अनेकस्वरूप-अनेकान्तमय-वस्तुको जो जाते हैं, श्रद्धा करते हैं और अनुभव करते हैं, वे ज्ञानस्वरूप होते हैं-इस आशय का, स्याद्वाद का फल बतलाने वाला काव्य कहते हैं-

ज्ञानानन्द स्वरूप स्वरस ही पीने का करना पुरुषार्थ ।
मुनि पद पाने का उद्यम करता है सफल सकल परमार्थ॥

नैकांतसंगतदृशा स्वयमेव वस्तु-
तत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः ।
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य संतो
ज्ञानीभवंति जिननीतिमलंघयन्तः ॥२६५॥

अर्थ- ऐसी वस्तुतत्व की व्यवस्थिति को अनेकान्त-सगत दृष्टि के द्वारा स्वयमेव देखते हुए, स्याद्वाद की अन्यन्त शुद्ध को जानकर, जिन नीतिका उल्लघन न करते हुए सत्पुरुष ज्ञानस्वरूप होते है ॥२६५॥

२६५ ॐ ह्रीं सहजचिदमरवृक्षस्वरूपाय नम ।

अनंतदर्शनस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

अनेकान्तात्मक है वस्तु तत्त्व व्यवस्थित सब जानो ।
अनेकान्त के सग सुदृष्टि के द्वारा निज को पहचानो॥
स्याद्वाद की शुद्धि जान जिन नीति न करता उल्लघन।
ज्ञान स्वरूप आत्मा मे ही सतत वर्तना चेतन मन ॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज मे आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर मे लाओ ॥२६५॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२६६)

अबइस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं -

वसन्ततिलका

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकम्पां
भूमिं श्रयंति कथमप्यपनीतमोहाः ।
ते साधकत्वमधिगम्य भवंति सिद्धा
मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमंति ॥२६६॥

भव का भार बढ़ाने वाला निश्चय बिन है यह व्यवहार।
कितना भी सयम अगीकृत करले होगा कभी न पार ॥

अर्थ- जो पुरुष किसी भी प्रकार से जिनका मोह दूर हो गया है ऐसा होता हुआ, ज्ञानमात्र निज भावमय अकम्प भूमका का आश्रय लेते हैं वे साधकत्व को प्राप्त करके सिद्ध हो जाते हैं, परन्तु जो मूढ हैं वे इस भूमिका को प्राप्त न करके ससार मे परिभ्रमण करते हैं ॥२६६॥

२६६ ॐ ह्री अकम्पज्ञानमात्राय नम ।

अमूढस्वरूपोऽहं ।

ताटक

जिनका मोह दूर है वे ही ज्ञान मात्र निज भावमयी ।
भूमि अकपित का आश्रय ले जो होते ससार जयी ॥
वे ही साधकत्व को पाते परम सिद्ध हो जाते है ।
मोही अज्ञानी प्राणी ही भव परिभ्रमण बढाते हैं ॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज मे आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर मे लाओ ॥२६६॥

ॐ ह्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२६७)

इस भूमिका का आश्रय करने वाला जीव कैसा होता है सो अब कहते हैं

वसन्ततिलका

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां
यो भावयत्यहरहः स्वमिहोयुक्तः ।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री-
पात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ॥२६७॥

अर्थ- जो पुरुष, स्याद्वाद मे प्रवीणता तथा सुनिश्चल सयम इन दोनों के द्वारा अपने में उपयुक्त रहता हुआ प्रतिदिन अपने को भाता है वही एक ज्ञाननय और क्रियानय की परस्पर तत्र मैत्री का पात्र रूप होता हुआ, इस भूमिका का आश्रय करता है ॥२६७॥

मुनिपद तो निग्रन्थ भावना का प्रतीक है शिव सुखकार।
अतरग में तथा बाह्य में नहीं परिग्रह का कुछ भार ॥

२६७ ॐ ह्रीं ज्ञानक्रियानयविकल्परहितज्ञानस्वरूपाय नम।

अखण्डबुद्धोऽहं ।

ताटंक

स्यादवाद मे प्रवीण होकर निश्चल सयम के द्वारा ।
अपने मे उपयुक्त हुआ प्रतिदिन निज गुण भाता सारा ॥
सतत ज्ञाननय तथा क्रियानय की मैत्री का पात्र हुआ।
भावमयी निजभूमि आश्रय युक्त पात्र यह मात्र हुआ ॥
मात्र ज्ञाननय ग्रहण क्रियानय छोड प्रमादी जो होता ।
तथा क्रियानय ग्रहण ज्ञानमय छोड मूढता को जोता ॥
शुभ कर्मो से सतुष्टित हो वह निष्कर्म न हो पाता ।
रागादिक अशुद्ध परिणति त्यागी निष्कर्म दशा लाता ॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज मे आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर मे लाओ ॥२६७॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२६८)

इस प्रकार जो पुरुष इस भूमिका का आश्रय लेता है, वही अनन्त चतुष्टमय आत्मा को प्राप्त करता है- इस अर्थ का काव्य कहते हैं-

वसन्ततिलका

चित्पिण्डचंडिमविलासिविकासहासः
शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः ।
आनंदसुस्थितसदास्खलितैकरूप-
स्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥ २६८॥

अर्थ- जो पुरुष, स्याद्वाद में प्रवीणता तथा सुनिश्चल संयम इन दोनों के द्वारा अपने मे उपयुक्त रहता हुआ प्रतिदिन अपने को भाता है वही एक, ज्ञानय और क्रियानय की परस्

ऐसे मुनियों के दर्शन कर हृदय कमल खिल जाता है ।
जो अनादि से कभी न पाया वह शिव पथ मिल जाता है ॥

तीव्र मैत्री का पात्ररूप होता हुआ, इस भूमिका का आश्रय करता है ॥२६८॥

२६८ ॐ ह्री शुद्धप्रकाशनिर्भरज्ञानस्वरूपाय नम ।

चित्पिण्डस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

पूर्वोक्त विधि से जो भी निज भूमि आश्रय लेता है ।
निज चैतन्य विकास प्राप्त कर पूर्णतया वह खिलता है ॥
अतिशय शुद्धकाश प्राप्त कर सुप्रभात निज पाता है।
निजानद मे सुस्थित होता लक्ष्य असीमित पाता है ॥
जिसकी ज्योति अचल निश्चल है उसका उदय प्राप्त करलूँ।
वीर्य अनत प्रगट करके निज शाश्वत सौख्य व्याप्त करलूँ।
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज मे आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर में लाओ ॥२६८॥

ॐ ह्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२६९)

इस प्रकार जो पुरुष इस भूमिका का आश्रय लेता है, वही अनन्तचतुष्टयमय आत्मा को प्राप्त करता है- इस अर्थ का काव्य कहते हैं-

वसन्ततिलका

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे
शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति ।
किं बंधमोक्षपथपातिभिरन्यभावै-
र्नित्योदयःपरयं स्फुरतु स्वभावः ॥२६९॥

अर्थ- उसीके चैतन्यपिंड के निरर्गल विलसित विकासरूप जिसका खिलना है शुद्ध प्रकाश की अतिशयता के कारण जो सुप्रभात के समान है, आनंद में सुस्थित ऐसा जिसका स

पंच महाव्रत पंच समिति त्रय गुप्ति सहित विचरण करते।
अट्ठाईस मूल गुण पूरे निरतिचार धारण करते ॥

अस्खलित एक रूप है और जिसकी ज्योति अचल है ऐसा यह आत्मा उदय को प्राप्त होता है ॥२६९॥

२६९ ॐ ह्री बंधमोक्षविकल्परहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

सदाब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

स्याद्वाद द्वारा प्रदीप्त है जगमग जिसका तेज प्रधान ।
जिसमे शुद्ध स्वरूप महिम है उज्ज्वल ज्ञान प्रकाश महान ॥
यह प्रकाश जब मुझमे हुआ उदय को प्राप्त पूर्ण निष्काम।
तो फिर बंध मोक्ष मे आए परभावो का है क्या काम ॥
अन्य भाव से मुझे प्रयोजन क्या है मै हू इनसे दूर ।
नित्य उदय रहने वाला मेरा चैतन्य चतुष्टय पूर ॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज मे आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर मे लाओ ॥२६९॥

ॐ ह्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२७०)

अब, यह कहते हैं कि ऐसा ही आत्मस्वभाव हमे प्रगट हो-

वसन्ततिलका

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा
सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखंडयमानः ।
तस्मादखंडमनिराकृतखंडमेक-
मेकांतशांतमचलं चिदहं महोऽस्मि ॥२७०॥

अर्थ- अनेक प्रकार की निज शक्तियों का समुदायमय यह आत्मा नयो की दृष्टि से खड खडरूप किये जाने पर नाश को प्राप्त होता है; इसलिये मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि जिसमें से खण्डो को निराकृत नहीं किया गया है तथापि जो अखण्ड है, एक है, एकान्त शांत है और अचल है ऐसा चैतन्यमात्र तेज मैं हूँ ॥२७०॥

मूर्च्छा भाव नहीं है मुझमें सर्व शल्य से हूँ निः शल्य ।
आत्म भावना के अतिरिक्त नहीं है मुझमें कोई शल्य ॥

२७० ॐ ह्रीं शांतस्वरूपचिदमृतस्वरूपाय नम।

अचलप्रशांतोऽहं ।

ताटंक

विविध प्रकार आत्म शक्तियो का समुदाय आत्मा है ।
नय दृष्टि से खड खड करने पर नाश न आत्मा है ॥
जिसमे से कुछ खड निराकृत नहीं हुए जो पूर्ण अखड।
एक शान्त एकान्त भावमय अचलतेज मै पूर्णप्रचड ॥
सर्व शक्तिमय ज्ञानमात्र अनुभव करता है आत्म स्वरूप।
इसमे नही विरोध कही है ऐसा ही है वस्तु स्वरूप ॥
समयसार परिशिष्ट कलश अध्ययन करो निज मे आओ।
अपने ही निज समयसार की महिमा को उर मे लाओ ॥२७०॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२७१)

ज्ञानमात्र भाव स्वय ही ज्ञान है, स्वय ही अपना ज्ञेय है और स्वय ही अपना ज्ञाता है- इस अर्थ को काव्य कहते हैं -

मालिनी

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव ।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥२७१॥

अर्थ- जो यह ज्ञानमात्र भाव मै हूँ वह ज्ञेयो क ज्ञानमात्र ही नहीं जानना चाहिये, ज्ञेयों के आकार से होने वाले ज्ञान की कल्लोलों के रूप मे परिणमित होता हुआ वह ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय वस्तुमात्र जानना चाहिये ॥२७१॥

२७१ ॐ ह्रीं ज्ञानज्ञेयज्ञाताविकल्परहित ज्ञानानंदज्ञानस्वरूपाय नम।

ज्ञानमात्रोऽहं ।

जिनके मन में अभिलाषा है होती उनको सिद्धि नहीं ।
अभिलाषा वाले को होती शुद्धभाव की बुद्धि नहीं ॥

वीरछंद

ज्ञान मात्र हू मै तो ज्ञान क्रिया युत उत्तम ज्ञान स्वरूप ।
भिन्न ज्ञान से ज्ञेय रूप है ज्ञान ज्ञेय का नहीं स्वरूप ॥
ज्ञेयो के आकार ज्ञान की कल्लोलो का लेते रूप ।
वस्तु ज्ञान ज्ञेय ज्ञातामय स्वय ज्ञान ही ज्ञेय अनूप ॥
ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता रूपी त्रयभाव युक्त है वस्तु स्वरूप ।
वस्तु मात्र सामान्य विशेषात्मक है ऐसा वस्तु स्वरूप ॥
समयसार परिशिष्ट अध्ययन करो आत्मा को ध्याओ।
समयसार का मनन करो निज समयसारमय हो जाओ ॥२७१॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२७२)

आत्मा मेचक, अमेचक इत्यादि अनेक प्रकार से दिखाई देता है तथापि यथार्थ ज्ञानी निर्मल ज्ञानको नही भूलता-इस अर्थ का काव्य कहते है-

पृथ्वी

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकामेचकं
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम ।
तथापि न विमोहयत्यमलमेघसां तन्मनः
परस्पर सुसंहत प्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत् ॥२७२॥

अर्थ- मेरे तत्त्व का ऐसा स्वभाव ही है कि कभी तो वह मेचक दिखाई देता है, कभी मेक-अमेचक दोनो रूप मे दिखाई देता है और कभी अमेचक दिखाई देता है, तथापि परस्पर सुसहत प्रगट शक्तियो के समूह रूप से स्फुरायमान वह आत्मतत्त्व निर्मल बुद्धिवालो क मन को विमोहित नहीं करता ।

२७२ ॐ ह्रीं सहज परमतत्त्व स्वरूपाय नम ।

निजशक्तिचक्रोऽहं ।

इच्छा से चिन्ता होती है चिन्ता से होता है क्लेश ।
मुझे न कोई भी चिन्ता है मुझमें चिन्ता कहीं न लेश ॥

ताटंक

आत्म तत्त्व का यह स्वभाव है कभी मेचक दिखता है।
आत्म तत्त्व ही कभी अमेचक मेचक जैसा लगता है ॥
आत्म तत्त्व ही कभी अमेचक जैसा दिखलाई देता ।
यही सुसहत प्रगट शक्ति से स्फुरायमान ही होता ॥
जिनकी निर्मल बुद्धि उन्हें ये भ्रमित विमोहित ना करता।
ज्ञान मात्र से च्युत ना होता जैसा का तैसा रहता ॥
समयसार परिशिष्ट अध्ययन करो आत्मा को ध्याओ ।
समयसार का मनन करो निज समयसारमय हो जाओ ॥२७२॥

ॐ ह्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२७३)

आत्मा का अनेकान्तस्वरूप वैभव अद्भुत है-इस अर्थ का काव्य कहते हैं-

पृथ्वी

इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता-
मितः क्षणविभंगुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात् ।
इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजै-
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम् ॥२७३॥

अर्थ- अहो ! आत्मा का तो यह सहज अद्भुत वैभव है कि- एक ओर से देखने पर वह अनेकता को प्राप्त है और एक ओर से देखने पर सदा एकता को धारण करता है, एक ओर से देखने पर क्षणभगुर है और एक ओर से देखने पर सदा उसका उदय होने से ध्रुव है, एक ओर से देखने परम विस्तृत है और एक ओर से देखने पर अपने प्रदेशों से ही धारण कर रखा हुआ है ॥२७३॥

२७३ ॐ ह्री सहजाद्भूतवैभवस्वरूपाय नम।

परमशक्तिसंभोऽहं ।

पर से प्रथग्भूत होने पर ज्ञान भावना जगती है ।
निज स्वभाव से सजी साधना देख कलुषता भगती है ॥

वीरछंद

अहो आत्मा का यह वैभव अदभुत सहज विशाल स्वरूप।
एक ओर से देखो तो यह अनेकता को प्राप्त अनूप ॥
एक ओर से देखो तो एकता धारता इसका रूप ।
एक ओर से देखो तो क्षण भगुर इसका नश्वर रूप ॥
एक ओर से देखो तो यह सदा उदय है ध्रौव्य स्वरूप।
एक ओर से देखो तो यह अनेकान्त का सिन्धु अनूप ॥
एक ओर से देखो तो अपने प्रदेश धारण करता ।
ऐसा अनुभव वस्तु स्वरूप सदाही किल्लोले करता ॥
समयसार परिशिष्ट अघ्ययन करो आत्मा को ध्याओ ।
समयसार का मनन करो निज समयसारमय हो जाओ ॥२७३॥

ॐ ह्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२७४)

पुन इसी अर्थ को काव्य कहते है -

कषायकलिरेकत: स्खलति शांतिरसत्येकतो
भवोपहतिरेकत: स्पृशति मुक्तिरप्येकत: ।
जगत्त्रितयमेकत: स्फुरति चिच्चकास्त्येकत:
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुत: ॥२७४॥

अर्थ- एक ओर से देखने पर कषायो का क्लेश दिखाई देता है और एक ओर से देखने पर शाति है, एक ओर से देखने पर भव की पीडा दिखाई देती है और एक ओर से देखने पर मुक्ति भी स्पर्श करती है, एक ओर से देखने पर तीनों लोक स्फुरायमान होते हैं और एक ओर से देखने पर केवल एक चैतन्य ही शोभित होता है। ऐसी आत्मा की अद्भुत स्वभाव महिमा जयवन्त वर्तती है ॥२७४॥

२७४ ॐ ह्रीं कषायकलिरहितज्ञानस्वरूपाय नम ।

निष्कलिस्वरूपोऽहं ।

भ्रम से क्षुब्ध हुआ मन होता व्यग्र सदा पर भावों से ।
अनुभव बिना भ्रमित होता है जुड़ता नहीं स्वभावो से ॥

एक ओर से देखो तो दिखता है क्लेश कषायों का ।
एक ओर से शान्त भाव है सर्व अभाव कषायों का ॥
एक ओर से देखो तो भव पीडा दिखलायी देती ।
एक ओर से देखो तो मुक्ति भी सुस्पर्शित करती ॥
एक ओर से देखो तो इसमे त्रयलोक प्रकाशित है ।
एक ओर से देखो तो चैतन्य सदैव सुशोभित है ॥
आत्मा की अदभुत स्वभाव महिमा जयवत वर्त्तती है ।
नहीं किसी से बाधित होती ऐसी गरिमा धरती है ॥
समयसार परिशिष्ट अध्ययन करो आत्मा को ध्याओ ।
समयसार का मनन करो निज समयसारमय हो जाओ ॥२७४॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२७५)

अब टीकाकार आचार्यदेव अन्तिम मङ्गल के अर्थ इस चित्चमत्कार को ही सर्वोत्कृष्ट कहते हैं ।

मालिनी

जयति सहजतेजः पुंजमज्जत्त्रिलोकी-
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः ।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भः ।
प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥२७५॥

अर्थ- सहज तेज पुञ्ज मे त्रिलोक के पदार्थ मग्न हो जाते हैं इसलिये जिसमें अनेक भेद होते हुए दिखाई देते हैं तथापि जिसका एक ही स्वरूप है । जिसमें निजरस के विस्तार से पूर्ण अच्छिन्न तत्त्वोपलब्धि है और जिसकी ज्योति अत्यन्त नियमित है ऐसा यह चैतन्य चमत्कार जयवन्त वर्तता है ॥२७६॥

२७५ ॐ ह्रीं सहजज्ञानतेजस्वरूपाय नमः।

परमतेजस्वरूपोऽहं ।

निज अनुभव अभ्यास अध्ययन से होता है ज्ञान यथार्थ।
पर का अध्यवसान दुखमयी चारों गति दुखमयी परार्थ॥

वीरछन्द

श्री आचार्य देव अतिम मगल कहते हैं भली प्रकार ।
निर्मलतम चित्चमत्कार ही है सर्वोकृष्ट शिवकार ॥
सहज स्वभाव तेज पुज मे तीनो लोक मग्न होते ।
भेद अनेक दिखायी देते ऐसा ही स्वरूप कहते ॥
एक स्वरूप सतत निज रस विस्तार पूर्ण है सदा अछिन्न।
कर्म अभाव हुआ पर नहीं स्वानुभव का अभाव है धन्य॥
तत्त्वोपलब्धि हुई है जिसकी है अत्यत ज्योति नियमित।
जो निष्कर्म अनत वीर्य से रहता है उज्ज्वल ज्योतित ॥
ऐसा यह प्रत्यक्ष सदा अनुभव गोचर सदैव जयवत ।
यह चैतन्य चमत्कार ही विद्यमान है परम समत ॥
समयसार परिशिष्ट अध्ययन करो आत्मा को ध्याओ ।
समयसार का मनन करो निज समयसारमय हो जाओ ॥२७५॥

ॐ ह्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२७६)

अब इस श्लोक मे टीकाकार आचार्यदेव आत्मा को आशीर्वाद देते है और साथ ही अपना नाम भी प्रगट करते हैं -

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म-
न्यनवरतनिमग्नं धारयद् ध्वस्तमोहम ।
उदित ममृत चंद्रज्योति रेतत्ससमंता ।
ज्ज्वलतु विमलपूर्णं निःसपल स्वभावम् ॥

अर्थ- जो अचल चेतनास्वरूप आत्मा मे आत्मा को अपने आप ही निरन्तर निमग्न रखती है, जिसने मोहका नाश किया है, जिसकास्वभाव नि सपत्न है, जो निर्मल है और पूर्ण है, ऐसी यह उदय को प्राप्त अमृतचन्द्र ज्योति सर्वत जाज्वल्यमान रहो ॥२७६॥

जन्म जरा मरणादि व्याधि से रहित आत्मा ही अद्वैत।
परम भाव परिणामो से भी विरहत कही न इसमे द्वैत ॥

२७६ ॐ ह्रीं अविचलचिद्राज्यस्वरूपाय नम।

पूर्णविमलबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

अचल चेतना रूप आत्मा आत्मा मे है सतत निमग्न ।
जिसने मोह विनाश किया है जिसका है स्वभाव नि. सपत्न॥
जो निर्मल है और पूर्ण है सतत उदय को प्राप्त महान।
अमृतचद्र ज्योति आत्मा जाज्ज्वल्य सर्वत प्रधान ॥
जिस का मरण नही होता है नही अन्य का होता नाश।
वह अमृत स्वादिष्ट सातिशय अमृत कहलाता स्व प्रकाश॥
समयसार परिशिष्ट अध्ययन करो आत्मा को ध्याओ ।
समयसार का मनन करो निज समयसारमय हो जाओ ॥२७६॥

ॐ ह्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(२७७)

अज्ञानदशा मे आत्मा स्वरूप को भूलकर रागद्वेष मे प्रवृत्त होता था, परद्रव्य की क्रिया का कर्ता बनता था, क्रिया के फलका भोक्ता होता था,- इत्यादि भाव करता था, किन्तु अब ज्ञानदशा मे वे भाव कुछ भी नही हैं ऐसा अनुभव किया जाता है । इसी अर्थ का प्रथम श्लोक कहते है

शार्दूलविक्रीडित

यस्माद् द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः ।
भुंजाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किंचिन्न किंचित्किल ॥२७७॥

अर्थ- जिससे प्रथम अपना और परका द्वैत हुआ, द्वैतभाव होने से जिससे स्वरूप मे अन्तर पड गया, स्वरूप मे अन्तर पडने पर जिससे रागद्वेष का ग्रहण हुआ, रागद्वेष का ग्रहण

यदि समता परिणाम नहीं है तो स्वभाव की प्राप्ति नहीं।
यदि स्वभाव की प्राप्ति नहीं तो होती सुख की व्याप्ति नहीं॥

होने पर जिससे क्रिया के कारक उत्पन्न हुए, कारक उत्पन्न होने पर जिससे अनुभूति क्रिया के समस्त फलको भोगती हुई खिन्न हो गई वह अज्ञान अब विज्ञानघन समूह में मग्न हुआ, इसलिए अब वह सब वास्तव मे कुछ भी नहीं है ॥२७७॥

२७७ ॐ ह्रीं विज्ञानघनौघस्वरूपाय नम ।

अविकारज्ञानस्वरूपोऽहं ।

ताटक

पर सयोग से ज्ञान हुआ था जब अज्ञान रूप परिणत ।
पृथक वस्तु अज्ञान नहीं था जो विरुद्ध होता परिणत ॥
यही जीव जब ज्ञान रूप परिणमित हुआ अज्ञान गया ।
राग द्वेष कर्तृत्व आदि भोक्तृत्व भाव का विलय हुआ ॥
इसीलिए अब आत्मा अपने पर के त्रिकालवर्त्ती भाव ।
जान रहा है देख रहा है ज्ञाता दृष्टा हुआ स्वभाव ॥
सारा ही अज्ञान हुआ विज्ञान ज्ञानधन समूह मग्न ।
ज्ञान रूप परिणमित हुआ है निज स्वरूप मे ही सलग्न॥
समयसार परिशिष्ट अध्ययन करो आत्मा को ध्याओ ।
समयसार का मनन करो निज समयसारमय हो जाओ ॥२७७॥

ॐ ह्रीं समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(२७८)

पूर्वोक्त प्रकार से ज्ञानदशा मे परकी क्रिया अपनी भासित न होने से, इस समयसार की व्याख्या करने की क्रिया भी मेरी नहीं है, शब्दों की है- इस अर्थ का, समयसार की व्याख्या करने की अभिमानरूप कषाय के त्याग का सूचक श्लोक अब कहते हैं -

उपजाति

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वै-
र्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः ।

आगम के अभ्यास पूर्वक श्रद्धाज्ञान चारित्र सवर ।
निज में ही सकल भाव लाकर तू अपना रुप निहार ॥

स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति
कर्तव्यमेवामृतचंद्रसूरेः ॥२७८॥

अर्थ- जिनने अपनी शक्ति से वस्तु तत्त्व को भलीभाँति कहा है ऐसे शब्दो ने इस समय की व्याख्या की है, स्वरूप गुप्त अमृतचन्द्रसूरिका कुछ भी कर्तव्य नहीं है ॥२७८॥

२७८ ॐ ह्रीं ज्ञानामृतचद्रस्वरूपाय नम ।

स्वचैतन्यशक्तिसंपन्नोऽहं ।

वीरछंद

वस्तु तत्त्व को पदार्थ रूप से कहने वाले तो हैं शब्द ।
आत्म तत्त्व का व्याख्यान पर समय व्याख्या करते शब्द॥
मै तो मात्र स्वरूप गुप्त हू मेरा कुछ मंतव्य नहीं ।
अमृतचद्र सूरि का इसमे अणुभर भी कर्त्तव्य नहीं ॥
पुद्गल शब्द वर्ण वाक्य पद रूप परिणमित होते हैं।
जिसमे वस्तु स्वरूप कथन की शक्ति शब्द वे होते हैं ॥
क्योकि शब्द का और अर्थ का सदावाच्यवाचक सम्बंध।
इस प्रकार द्रव्य श्रुत रचना शब्दों ने की है निर्द्वंद ॥
आत्मा तो अमूर्तिक ही है तथा आत्मा ज्ञान स्वरूप ।
वह मूर्त्तिक पुद्गल की रचना कैसे कर सकता अनुरूप॥
शब्दो ने की है यह टीका मैं तो हूं स्वरूप में लीन।
निरभिमान आचार्य देव तो हैं स्वभाव रस में तल्लीन ॥
यह निमित्त नैमित्तक है व्यवहार कहा जाता है यह ।
अमुक पुरुष ने कार्य किया है कहा अमुक का जाता यह॥
इसी न्याय से आत्म ख्याति टीका के कर्त्ता अमृतचंद्र।
हम उपकार मानते उनका वे ही हैं श्रद्धा के चद्र ॥
इसके पढने सुनने से निज आत्मरूप का होता ज्ञान ।
तद्नुसार श्रद्धान सहित होता है दृढ चारित्र महान ॥

पर कर्तृत्व विकल्प त्याग कर, संकल्पों की मति दे त्याग।
सागर की चचल तरग सम तुझे डुबो देगी तू भाग ॥

परपरा से मोक्ष प्राप्त होता है यह निश्चत लो जान ।
सतत निरतर इसका ही अभ्यास करो निज को लो जान॥
ज्ञान स्वरूप आत्मा देखो निजानद रस पाओगे ।
बिना रुके ही मोक्ष महल मे ज्ञानी होकर जाओगे ॥
यह विधान हो गया पूर्ण अब विमल भावना के अनुसार।
आत्म तत्त्व की प्रतीति जागी उर आनदित हुआ अपार॥
समयसार परिशिष्ट अध्ययन करो आत्मा को ध्याओ।
समयसार का मनन करो निज समयसार हो जाओ॥२७८॥

ॐ ह्री समयसार कलश शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

महाअर्घ्य

गीत

मोक्ष का मार्ग पाके जो भी सभल जाएगा ।
राज्य शिवपुर का पा के मुक्ति सौख्य पाएगा ॥
होके निर्दोष शुद्ध नित्य निरजन होगा ।
ज्ञान कैवल्य पा के सिद्ध स्व पद पाएगा ॥
मूल मे भूल की तो भ्रमेगा चतुर्गति मे ।
मार्ग से भटकेगा तो जाने कहाँ जाएगा ॥
शुद्ध सम्यक्त्व शुद्ध ज्ञान सहित है चारित्र ।
बीन रत्नत्रयी दिन रात ये बजायेगा ॥
आत्म श्रद्धा के बिना मार्ग नहीं मिलता है ।
मोक्ष पाएगा जो श्रद्धान उर सजाएगा ॥

दोहा

समयसार परिशिष्ट को सादर पूजा आज ।
महाअर्घ्य अर्पण करूँ हे प्रभु निज हितकाज ॥

जो अकषाय भाव के द्वारा सर्व कषायें लेता तू जीत ।
मुक्ति वधू उसका वरने आएगी उर में धर कर प्रीत ॥

वीरछंद

विषरस कलश रागरस पूरित पीता आया हूँ दिनरात ।
जिसके फल मे पाये चारो गतियो के ही झझावात ॥
बिन जिव्हा पर मिश्री रक्खे स्वाद न उसका आ सकता।
त्यों ही आत्मज्ञान बिन स्वादअतीन्द्रिय कभी न आ सकता॥
जो मन से निर्मल नरच है वह सयम क्या धारेगा ।
वह तो अविरति के कुचक्र मे निज को ही सहारेगा ॥
जो अन्तर्मन से उज्ज्वल है वह ही सयम धारेगा ।
अविरति क्षयकर अपनी तरणी भव के पार उतारेगा ॥
शुद्ध समय की धारा का भी जिसको ज्ञान नहीं है अल्प।
वह सकल्प विकल्पो मे रह करता विविध भाति के जल्प॥
शुद्धसमय की धारा से जो जुडता वह होता अविकल्प ।
उसको तो उत्पन्न न होता अतर मे सकल्प विकल्प ॥

ॐ ह्री समयसार कलश परिशिष्ट समन्वित श्री समयसाराय महक्षर्घ्यं नि ।

जयमाला

दोहा

समयसार परिशिष्ट की अब गाऊँ जयमाल ।
सारसमय का ग्रहण कर पाऊँ ज्ञान विशाल ॥

ताटंक

समयसार प्ररिशिष्ट ध्यान से पढ़ने वाले सुख पाते ।
आत्मज्ञान की कला प्राप्त कर मुक्तिमार्ग पर वे आते॥
रागमद्य के कारण लगती शुद्ध आत्मा बहुत कठिन ।
रागमद्य सम्पूर्ण त्याग दो तो निजात्मा नहीं कठिन ॥

पर द्रव्यो में कहीं न सुख है तज इनमे सुख की आशा।
धन शरीर परिवार बधु सब ही दुख की हैं परिभाषा ॥

ज्यो मुट्ठी मे रखे स्वर्ण को परमे खोज रहा है मूढ ।
त्यों अज्ञानी आत्मसौख्य की परमे करता खोज विमूढ़ ॥
सपना तो सपना होता है नयन खुले अरु नष्ट हुआ ।
इन सपनो को सुथिर मान क्यो वर्त्तमान से भ्रष्ट हुआ॥
काम भोग बधन के दृश्य सदा देखे हैं हमने नाथ ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य रूपदेखा न कभी भी त्रिभुवन नाथ॥
करना धर्मी जीवो की जयकार पुरानी आदत है ।
किन्तु न धर्मी बनने का पुरुषार्थ किया प्रभु अब तक है॥
चिदानद चिन्मय भगवान हमारा मुट्ठी में है बद ।
पर हम खोज रहे हैं परमे ऐसे है अज्ञानी अध ॥
शुद्ध भावना समयसारमय जो भी प्राणी भाते हैं ।
मोक्षमार्ग का पाकर वे ही आत्म सौख्य को पाते है ॥

ताटंक

सम्यक भूमि बिना चेतन व्रतरूपी वृक्ष नहीं होता ।
सम्यकज्ञान न हो तो फिर सम्यक्चारित्र नहीं होता ॥
यदि सम्यक् चारित्र न हो तो क्षय कषाय होतीं न कभी।
क्षय कषाय के बिना कभी भी केवल ज्ञान नहीं होता ॥
भाव द्रव्य मुनिलिग न होतो फिर मुनि पद कैसा बोलो॥
केवल ज्ञान प्रकाश बिना सिद्धत्व प्रकाश नहीं होता ।
रत्नत्रय के बिना कभी भी आत्मविकास असंभव है।
भावलिग बिन द्रव्यलिग है तो भव नाश नहीं होता ॥
पाप पुण्य का नाश न हो तो निर्मलता कैसे होगी ।
स्वपर विवेक नही जागे तो आतमज्ञान नहीं होता ॥

पूर्णानन्द स्वरूप स्वय तू निज स्वरूप का कर विश्वास।
ज्ञान चेतना में ही बसजा कर्म चेतना का कर नाश ॥

आत्मज्ञान के बिना कभी भी निज कल्याण नही होगा ।
बिन रागों का राग गए मिथ्यात्व अभाव नही होता ॥
जब तक मोह दुष्ट बैठा है आत्म स्वभाव न जागेगा ।
सम्यक्दर्शन के बिन आत्मस्वभाव प्रकाश नहीं होता ॥

ॐ ह्री समयसारप्राभृतग्रन्थे परिशिष्टे कलशस्वरूपसहजानदस्वरूपाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

आशीर्वाद

दोहा

समयसार परिशिष्ट पढ करू आत्म कल्याण ।
सार समय का आत्मा शुद्ध बुद्ध भगवान ॥
चिन्मय चेतन जीव ही निपरम शुद्ध चिद्रूप ।
शुद्ध समय की प्राप्ति कर पाऊँ मोक्ष अनूप ॥

इत्याशीर्वाद :

राग की बात मुझे अब न भली लगती है ।
अब तो मुझको निगोद की ये गली लगती है ॥
भेद विज्ञान की कृपा से मुझे ज्ञान हुआ ।
आत्मा राग से मुझको जली लगती है ॥
विभाव भाव की परिणति ने दिया है धोखा ।
मोह मिथ्यात्व की छाया में पली लगती है ॥
नाश करना है इसे ज्ञान भाव के द्वारा ।
स्वभाव परिणति इस बार फली लगती है ॥

अतरंग बहिरग परिग्रह तजने का ही कर अभ्यास ।
इसके बिना नही तु होगा साधु कभी भी कर विश्वास ॥

सर्वसिद्ध परमेष्ठी पूजन

(सैंतालीस शक्ति पूजन)

स्थापना

वीरछद

श्री जिनेन्द्र प्रभु शक्ति अनतो के स्वामी निजगुण सम्पन्न।
ऐसी पावन शक्ति अनतानत करूँ मै भी उत्पन्न ॥
अरहतो सिद्धो ने अपनी शक्ति अनत प्रकाशित कर ।
निजानद रस का समुद्र पाया निज आत्म विकासित कर ॥१॥
इन्ही शक्तियो से होता है प्रगट आत्म वैभव अनुपम ।
सिद्धशिला पर सदा विराजित होते प्राणी कर उद्यम ॥
गुण अनत है शक्ति अनतानत जीव के भीतर हैं ।
मुख्य शक्तियॉ सैतालीस प्रगट होती शिव सुखकर है ॥२॥

छंद-राधिका

सिद्धत्व शक्ति का सिधु सहज अविनाशी ।
है असिद्धत्व भावो का पूर्ण विनाशी ॥
निज अनुभव रस धारा का स्रोत मधुरतम ।
है ज्ञानानद स्वरूप स्वय मे सक्षम ॥३॥
सद्धर्म तत्त्व कथनी का अर्थ न जाना ।
अपना विपरीत स्वरूप सदा ही माना ॥
इसलिए भ्रमा चारो गतियो मे स्वामी ।
मिथ्यात्व मोह अब जीतू अतर्यामी ॥४॥
मै अकर्तृत्व की शक्ति सदैव जगाऊँ ।
कर्तृत्व भाव को पूरा नाथ मिटाऊँ ॥

सर्व चेष्टा रहित पूर्ण निष्क्रिय हो तू कर निज का ध्यान।
दृश्य जगत के भ्रम को तज दे पाएगा उत्तम निर्वाण ।

यह महा शक्ति मेरे जीवन मे जागे ।
प्रभु दुष्प्रवृत्ति मेरी सारी ही भागे ॥५॥
तुव पूजन कर शक्तिया अनत प्रकाशूँ ।
सपूर्ण शक्ति की व्यक्ति महान विकासूँ ॥
है सैतालीस शक्तियां मुख्य हमारी ।
मुझको सुबुद्धि दो हे जिनवर अविकारी ॥६॥

ॐ ह्रीं अनतानत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिन् अत्र अत्र अवतर अवतर सवौष्ट अह्वानन ।

ॐ ह्री अनतानत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं अनतानत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मंडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिन् अत्र ममसन्निहितो भवभव वषट् सन्निधिकरण ।

अष्टक

छंद ताटंक

सहजज्ञान गगा के जल से सर्व कर्म रज धोऊँगा ।
सम्यक दर्शन का सुबीज ही अब इस भव मे बोऊगा ॥
सैतालीस शक्तियाँ अद्भुत प्रगट करूँगा हे जिन राज ।
विमल भाव उर मे जागा हैं पाऊँगा मैं निज पद राज ॥१॥

ॐ ह्रीं अनतानत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिन् जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलनिर्वपामीति स्वाहा ॥

सहज ज्ञान गगा का शीतल चदन भवातापहारी ।
निज स्वभाव की शक्ति प्रगट कर हो जाऊँगा अविकारी॥
सैंतालीस शक्तियाँ अद्भुत प्रगट करूँगा हे जिनराज ।
विमल भाव उर में जागा है पाऊँगा मै निजपदराज ॥२॥

ॐ ह्रीं अनतानत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मंडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिभ्यो ससारताप विनाशनाय चदनम् नि ।

ध्रौव्य तत्त्व का निर्विकल्प बहुमान हो गया उसी समय ।
भव वन में रहते-रहते भी मुक्त हो गया उसी समय ॥

निज अनुभव के अनुपम अक्षत भव समुद्र शोषित करते।
अक्षय पद की प्राप्ति कराते सर्व विभाव भाव हरते ॥
सैतालीस शक्तियाँ अद्भुत प्रगट करूँगा हे जिनराज ।
विमल भाव उर मे जागा है पाऊँगा मै निजपदराज ॥३॥

ॐ ह्री अनतानंत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिभ्यो अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत नि ।

सहज ज्ञान उपवन मे आकर पाऊँगा मै ज्ञान सुमन ।
काम बाण विध्वस करूँगा निर्मल होगा अतर्मन ॥
सैतालीस शक्तियाँ अद्भुत प्रगट करूँगा हे जिन राज ।
विमल भाव उर मे जागा हैं पाऊँगा मै निज पद राज ॥४॥

ॐ ह्रीं अनतानत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिभ्यो काम बाण विध्वसनाय पुष्पं नि ।

सहज ज्ञान नेवैद्य तृप्ति मय अतुल शक्ति प्रगटाते है ।
क्षुधावेदना को विनाशकर सहज स्वभाव सजाते है ॥
सैतालीस शक्तियाँ अद्भुत प्रगट करूँगा हे जिन राज ।
विमल भाव उर में जागा हैं पाऊँगा मै निज पद राज ॥५॥

ॐ ह्री अनतानंत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिभ्यो क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यम् नि ।

सहजज्ञान के दीप अनूठे जगा मोह भ्रम तम हर लूँ ।
लोकालोक ज्ञान में युगपत झलके ऐसा श्रम करलूँ ॥
सैतालीस शक्तियाँ अद्भुत प्रगट करूँगा हे जिन राज ।
विमल भाव उर में जागा हैं पाऊँगा मैं निज पद राज ॥६॥

ॐ ह्रीं अनतानत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिभ्यो मोहअधकार विनाशनायदीपम् नि ।

भौतिक सुख की चकाचौंध में जीवन बीत रहा है ।
भावमरण प्रति समय हो रहा जीवन रीत रहा है ॥

सहज ज्ञान की धर्ममयी पावन पाऊँगा निज ध्रुव धूप ।
नित्य निरंजनपद पाऊँगा निरखूँगा निज आत्म स्वरूप॥
सैतालीस शक्तियाँ अद्‌भुत प्रगट करूँगा हे जिन राज ।
विमल भाव उर में जागा है पाऊँगा मै निज पद राज ॥

ॐ ह्रीं अनतानत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिन्

सहज ज्ञान तरुफल अपूर्व ले महामोक्ष फल पाऊँगा ।
सादि अनत सौख्य पाने को सिद्ध शिलापर जाऊँगा ॥
सैतालीस शक्तियॉ अद्‌भुत प्रगट करूँगा हे जिनराज ।
विमल भाव उर मे जागा हैं पाऊँगा मै निजपदराज ॥८॥

ॐ ह्रीं अनंतानत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल नि ।

सहजज्ञान के अर्घ्य बनाऊँगा मै निज स्वभावभज कर।
पद अनर्घ्य स्वयमेव प्राप्त होगा सारे भव बधनहर ।
कर्म शक्ति को छिन्न-भिन्न करने का जागा उर में भाव।
जो विभाव के बादल छाये कर डालू मै पूर्ण अभाव ॥
सैंतालीस शक्तियाँ अद्‌भुत प्रगट करूँगा हे जिनराज ।
विमल भाव उर में जागा हैं पाऊँगा मैं निजपदराज ॥९॥

ॐ ह्री अनंतानत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं अनर्घ्यपद प्राप्तये नि ।

महाअर्घ्य

(सैंतालीस शक्ति)

दोहा

१ जीवत्व शक्ति

सहज शक्ति जीवत्व से मै सदैव जीवंत ।
एक चेतना प्राण से मै हूँ महिमावंत ॥१॥

अचेतन द्रव्य जड संयोग सुख दुख के नहीं दाता ।
सयोगी भाव करके तू स्वय दुखवान हो जाता ॥

२ चिति शक्ति

चेतन की चिति शक्ति का चेतनत्व है नाम ।
सदा सदा अजड़त्व है परम पूज्य निष्काम ॥२॥

३ दृशि शक्ति

दर्शनमय दृशि शक्ति से भरा हुआ आपूर्ण ।
इसी शक्ति की व्यक्ति से हुआ अदर्शन चूर्ण ॥३॥

४ ज्ञान शक्ति

सकल ज्ञेय ज्ञाता सहज ज्ञान शक्ति भरपूर ।
है त्रिकाल अज्ञान से लाखो योजन दूर ॥४॥

५ सुख शक्ति

निज सुख शक्ति विशाल है सहज निराकुलरूप ।
पूर्ण अनत सदा सुखी है चेतन चिद्रूप ॥५॥

६ वीर्य शक्ति

विद्यमान है आत्म मे वीर्य शक्ति सुविशाल ।
रचना रचती आपनी अमित अडोल त्रिकाल ॥६॥

७ प्रभुत्व शक्ति

शक्ति प्रभुत्व महान है सब जीवो केपास ।
त्रिभुवन पति स्वयमेव है निज मै सदा निवास ॥७॥

८ विभुत्व शक्ति

व्यापक है सब भाव मे शक्ति विभुत्व महान ।
तीनो काल स्वतत्र है पराधीन मत जान ॥८॥

९ सर्वदर्शित्व शक्ति

शक्ति सर्वदर्शित्व ही दर्शन मयी प्रसिद्ध ।
अखिल विश्व को देखती लेश न पर से विद्ध ॥९॥

१० सर्वज्ञत्व शक्ति

युगपत सबको जानती यही शक्ति सर्वज्ञ ।
निश्चय से तो सर्वदा निजस्वभाव आत्मज्ञ ॥१०॥

जिस घड़ी निज आत्म की अनुभूति होती है ।
उस घड़ी सम्यक्त की सुविभूति होती है ॥

११ स्वच्छत्व शक्ति

शुद्ध शक्ति स्वच्छत्व है दर्पणवत अमलान ।
बाह्यान्तर निर्मल दशा प्रगटाती गुणवान ॥११॥

१२ प्रकाश शक्ति

शक्ति प्रकाश अखड है ज्ञान ज्योति का पुज ।
है विकार इसमे नहीं उज्ज्वल शात निकुज ॥१२॥

१३ असंकुचित विकासत्व शक्ति

शक्ति विकास असकुचित करती आत्म विकास।
इसके बल से जीव सब पाते मुक्ति निवास ॥१३॥

१४ अकार्य कारणत्व शक्ति

अकार्यकारण शक्ति का प्राणी है भडार ।
पर कारण पर कार्य से भिन्न सदैव उदार ॥१४॥

१५ परिणम्य परिणामकत्व शक्ति

परिणम्य परिणामात्मक शक्ति प्रसिद्ध महान ।
स्वपर ज्ञेय को जानती होता क्षय अज्ञान ॥१५॥

१६ त्योगपादान शून्य शक्ति

त्यागोपादान शून्य है शक्ति समर्थ प्रसिद्ध ।
ग्रहणत्याग कुछ भी नहीं जीव स्वय है सिद्ध ॥१६॥

१७ अगुरुलघुत्व शक्ति

अगुरुलघुत्व स्व शक्ति से रहती एक समान ।
वृद्धि हानि षडगुण मयी कभी न हो असमान ॥१७॥

१८ उत्पादव्ययध्रुवत्व शक्ति

व्यय उत्पाद ध्रुवत्व से सत्‌स्वरूप पहचान ।
परिणत होती प्रति समय निज स्वरूप मे जान ॥१८॥

१९ परिणाम शक्ति

महाशक्ति परिणाम है द्रव्य स्वभाव स्वरूप ।
पर परिणाम विहीन है निज चेतन चिद्रूप ॥१९॥

जब तक मिथ्यात्व ह्रदय में है संसार न पल भर कम होगा।
जब तक पर द्रव्यों से प्रतीति भव भार न तिल भर कम होगा॥

२० अमूर्तत्व शक्ति

अमूर्तत्व निज शक्ति ही निज मे भरी महान ।
जड पुद्‌गल रूपी प्रथक भिन्न आत्मा जान ॥२०॥

२१ अकर्तृत्व शक्ति

अकर्तृत्व की शक्ति ही कर्त्ता पन से दूर ।
जीव अकर्त्ता है सदा चिदानद गुण पूर ॥२१॥

२२ अभोक्तृत्व शक्ति

अभोक्तृत्व की शक्ति निज सदा अभोक्तारूप ।
निज स्वभाव का भोक्ता ज्ञानमयी चिद्रूप ॥२२॥

२३ निष्क्रियत्व शक्ति

निष्क्रियत्व की शक्ति से होते कर्मरि क्षीण ।
निष्पदता स्वरूप है कपन योग विहीन ॥२३॥

२४ नियत प्रदेशत्व शक्ति

नियत प्रदेश स्वशक्ति से लोक प्रमाण प्रदेश ।
तिल पर भी घट बढ नही ऐसा शुद्ध स्वदेश ॥२४॥

२५ स्वधर्म व्यापकत्व शक्ति

स्वधर्म व्यापकत्व शक्ति से है स्वधर्म मे व्याप्य ।
आत्मधर्म को छोड कर अन्य धर्म अप्राप्य ॥२५॥

२६ साधारण असाधारण साधारणासाधारण धर्मत्व शक्ति

साधारण असाधारण है धर्म शक्ति त्रय रूप ।
स्व पर विवेक विचार से होता त्रिभुवन भूप ॥२६॥

२७ अनत धर्मत्व शक्ति

शक्ति अनत धर्मत्व की सदा अनादि अनत ।
भिन्न भिन्न जो धर्म है मडित चेतन वत ॥२७॥

२८. विरुद्धधर्मत्व शक्ति

शक्ति विरुद्ध धर्मत्व से अस्ति नास्ति का मेल ।
अतदरूप तदरूप है ज्ञानी जन का खेल ॥२८॥

नए वर्ष का प्रथम दिवस ही नूतन दिन कहलाता है ।
पर नूतन दिन वही कि जिस दिन तत्त्व बोध हो जाता है॥

२९ तत्त्व शक्ति

तत्व शक्ति तद्‌रूप है सदा स्वतत्र प्रसिद्ध ।
निज में परिणमती सदा होते प्राणी सिद्ध ॥२९॥

३० अतत्त्व शक्ति

शक्ति अतत्व सुजानिये चेतन चेतन रूप ।
पलभर भी जड हो नहीं यही अतत्त्व अरूप ॥३०॥

३१ एकत्व शक्ति

महा शक्ति एकत्व ही व्यापक सवपर्याय ।
एक द्रव्य मयता सदा शाश्वत शिव सुखदाय ॥३१॥

३२ अनेकत्व शक्ति

अनेकत्व की शक्ति से हो पर्याय अनत ।
एक द्रव्य से व्याप्त है, गरिमा महिमावत ॥३२॥

३३ भाव शक्ति

भाव शक्ति चैतन्य की पर का सदा अभाव ।
ज्ञानभाव परिणमन कर पाता शुद्ध स्वभाव ॥३३॥

३४ अभाव शक्ति

शक्ति अभाव पिछानिये अविद्यमान को जान ।
परभावो का स्वय में है अभाव मतिवान ॥३४॥

३५ भाव अभाव शक्ति

भावाभाव स्व शक्ति का जगत प्रसिद्ध महत्व ।
उदय तथा व्यय को सदा जान रही अजडत्व ॥३५॥

३६. अभाव भाव शक्ति

अभावभाव की शक्ति से पर का सदा अभाव ।
निज स्वभाव का भाव है ऐसा आत्म स्वभाव ॥३६॥

३७. भाव भाव शक्ति

भाव भाव मय शक्ति से सदा भाव अनुरूप ।
लेशन कही अभाव है एकमात्र चिन्‍रूप ॥३७॥

धीर वीर गभीर शल्य से रहित सयमी साधु महान ।
इनके पद चिन्हो पर चलकर तू भी अपने को पहचान॥

३८ अभाव अभाव शक्ति

शक्ति अभावाभाव की सदा विशेष विचित्र ।
नहीं विभावो के कही इसमे छाया चित्र ॥३८॥

३९ भवन भावमयी शक्ति

भाव शक्ति चैतन्य की है त्रिकाल विद्यमान ।
विभावादि पर भाव का रच न कही प्रमाण ॥३९॥

४० किर्या शक्ति

क्रिया शक्ति से पूर्ण है निज की क्रिया सजीव ।
पर की क्रिया विहीन है पर है पूर्ण अजीव ॥४०॥

४१ कर्म शक्ति

कर्म शक्ति निजभाव मय करती है निजरूप ।
पर का कुछ करती नही है सदैव चिद्रूप ॥४१॥

४२ कर्तृत्व शक्ति

कर्तृत्व शक्ति की मुख्यता निजकर्तृत्वस्वरूप ।
अकर्तृत्व परद्रव्य की है स्वभाव अनुरूप ॥४२॥

४३ करण शक्ति

करण शक्ति साधन स्वय साधक है स्वयमेव ।
नहीं किसी का आश्रय अमित अनत अमेव ॥४३॥

४४ सप्रदान शक्ति

सप्रदान की शक्ति से जीव स्वय ही पात्र ।
अपने को ही दे रहा अपना वैभव मात्र ॥४४॥

४५ उपादान शक्ति

अपादान की शक्ति से लाभ हानि से दूर ।
स्वय शक्ति सपन्न है निजानद भरपूर ॥४५॥

४६ अधिकरण शक्ति

भाव भाव मय शक्ति से सदाभाव अनुरूप ।
लेश न कहीं अभाव है एकमात्र चिन्रूप ॥४६॥

समकित का दीप जला अँधियारा दूर हुआ ।
अज्ञान तिमिर नाशा भ्रम तम चकचूर हुआ ॥

४७ स्वस्वामित्वमयी सबध शक्ति

सहज शक्ति स्वामित्व ही निज ध्रुव से सबध ।
द्रव्य सदैव स्वतत्र है नही कर्म से बध ॥४७॥
शुद्ध आत्म वैभव प्रभो उत्तम महा महान ।
शक्ति अनतानत युत चेतन द्रव्य प्रधान ॥

ॐ ह्रीं अनंतानत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिभ्यो महाअर्घ्य नि ।

जयमाला

सोरठा

शक्ति अनतानत प्रगट करूँ निज शक्ति से ।
पूजन करूँ महान शीघ्र आत्म वैभव मिले ॥

वीरछद

शक्ति अनतो से भूषित प्रभु सभी जीव हैं सिद्ध समान।
शक्ति प्रगट करने मे बाधक एकमात्र निज का अज्ञान ॥१॥
जब स्वरूप से परिचय होता तब होता है निज का भान।
पा लेते ध्रुव धाम शाश्वत नित्य निरजन पद निर्वाण ॥२॥
ध्रुव जीवत्व आदि शक्ति की जिनको अभी नहीं पहचान।
पर से ही सबध कर रहे भ्रमित मोह वश निपट अजान ॥३॥
स्वर्गादिक के मोह जाल मे फसे भूल अपना कल्याण ।
नर्क निगोदादिक दुख पाते कभी न मिलता दुख से त्राण॥४॥
एकमात्र निज समय सार वैभव का यदि ये कर ले ज्ञान।
तो फिर ये अंत मुहूर्त में होगे वीतराग भगवान ॥५॥
पुण्य भाव में धर्म मानकर करते रागों का आह्वान ।
जड आस्रव से राग बढ़ाकर कर्म बध करते मतिमान ॥६॥
कुन्दकुन्द जैसे ऋषि हारे इन्हें कौन समझाए आन ।
एक अरूपी दर्शन ज्ञानमयी ध्रुव निज वस्तुत्व महान ॥७॥

राग पर का छूट जाए जब स्वय का भान हो ।
ध्रुव अचल अनुपम स्वगति पा स्वय ही भगवान हो ॥

इसलिए मै शक्ति अनतो की महिमा लूँ अब तो जान ।
सिद्ध स्वपद प्रगटाऊँगा मै कर सारा भव दुख अवसान ॥८॥
सब सिद्धों को वदन करके अरहतो को करूँ प्रणाम ।
शक्ति अनत प्रगट कर अपनी पाऊँगा मै निज ध्रुव धाम ॥९॥
सैतालीस शक्तियाँ अद्‌भुत प्रगट करूँगा हे जिनराज ।
विमल भाव उर मे जागा है पाऊँगा मै निजपदराज ॥१०॥

ॐ ह्री अनतानत शक्ति समन्वित सप्त चत्वारिंशक्ति मडित श्री सर्वसिद्ध परमेष्ठिभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं नि ।

आशीर्वाद

दोहा

निजस्वरूप की शक्तियाँ मुझमे भरी महान ।
शक्तिव्यक्त करके प्रभो पाऊँ पद निर्वाण ॥

इत्याशीर्वाद :

मुझे तो मिल गया समकित नहीं है अब मुझे कुछ भय ।
स्वपर का ज्ञान पाया है हुआ शुद्धात्मा निर्भय ॥
अनेकों भव बिताए है सदा ही कष्ट से मैने ।
कृपा सद्‌गुरु की पायी तो किया है तत्त्व का निर्णय ॥
मोक्ष का मार्ग पाया है स्वरूपाचरण भी पाया ।
बड़ी कठिनाई से मैने शुद्ध नय का लिया आश्रय ॥
सहज मन हो गया है अब विषमता दूर भागी है ।
मुक्ति सुख मेरा निश्चित है हुआ है आज यह निश्चय ॥

पुण्य से सवर अगर होता तनिक भी ।
तो भ्रमण का कष्ट फिर मिलता न भव का ॥

अंतिम महाअर्घ्य

वीरछंद

राग प्रभजन जीत चुका है नहीं मोहका झंझावात ।
रच विभाव नहीं है उर मे उदित हुआ सम्यक्त्व प्रभात॥
ज्ञान ऊर्मियां केलि कर रही है चारित्र प्रधान प्रसिद्ध।
सकल कर्म आरि जय करता है हो जाता कुछ दिन में सिद्ध॥
ऐसे निर्मल आत्म ध्यानरत ज्ञानी ही को वदन है ।
भावद्रव्य नो कर्म रहित होने में कही न बधन है ॥
अप्रमत्त या प्रमत्त भी ये नही मात्र ये ज्ञायक है ।
स्वपर प्रकाशक केवलज्ञान रश्मियों का यह नायक है॥
दर्शन ज्ञान चरित्र आदि का भेद नही इसके मन मे ।
यह अभेद का परम उपासक पूर्णानद सदामन मे ॥
यथाख्यातपति शुक्ल ध्यानपति परम पवित्र परम धन है।
भावमोक्ष का स्वामी है यह सचमुच ही आनदघन है ॥
एकमात्र निज शद्धआत्मा सर्वोत्तम है प्रकाशरूप।
इसके प्रति उन्मुख होने वाले ही होते मुक्त स्वरूप ॥
यह चेतन चिन्मय शिवरूपी परमसौख्यपति ध्रुवचिद्रूप ।
इसके भीतर भरा हुआ है शुद्ध ज्ञानघन सिद्ध स्वरूप॥
यही आत्मा परम श्रेष्ठ मगलमय गुण अनत स्वामी ।
एकमात्र है यही आत्मा परमोत्तम त्रिभुवननामी ॥
इसका ही आराधन करने से होता है प्राणी मुक्त ।
यही एक है सकल विश्व में शक्ति अनतों से संयुक्त ॥

अन्तर्जल्पों मे जो उलझा निज पद न प्राप्त कर पाता है।
सकल्प विकल्प रहित चेतन निज सिद्ध स्वपद पा जाता है ॥

छंद-सरसी

ज्ञान चेतना धन है जिनका धन धन वे मुनिराज ।
कर्म चेतना नाशकर चुके होगे ये जिनराज ॥
सकल विभाव भाव के नाशक निज स्वभाव सम्राट ।
महिमाशाली रत्नत्रयपति इनका रूप विराट ॥
रागनाश करने मे सक्षम वीतराग है भाव ।
इसी भाव के बल से करते है ससार अभाव ॥
चिदानद चिद्रूप चिदकित शुद्धभाव सम्पन्न ।
रागभाव कणमात्र नही होने देते उत्पन्न ॥
मुक्ति मार्ग के स्वामी है ये निर्मल ध्यान स्वरूप ।
ये ही केवल निधि पाएगे उत्तम ज्ञान स्वरूप ॥
यशोकाक्षा कही न अणुभर निकांक्षित है पूर्ण ।
अपरिग्रही अनिच्छुक मुनिवर गुण अनत आपूर्ण ॥
इनको सतत नमन है मेरा ये मेरे आधार ।
इनकी पदरज पाकर मै भी करूँ आत्म उद्धार ॥

ॐ ह्रीं श्री समयसार कलश शास्त्राय महाअर्घ्यं नि ।

महाजयमाला

वीरछंद

भिन्न देह से ज्ञान शरीरी तन ही निज परमात्म स्वरूप।
कर्म रहित चैतन्य शुद्धध्रुव महिमामय है परम अनूप ॥
निर्विकल्प शुद्धात्म तत्त्व के गुण अनंत मे सुस्थिर हो ।
समभावी सामायिक करके निजानद के सग बहो ॥
प्रथम सिद्ध सस्तवन वदना फिर तीर्थंकर नमन महान।
दोषनाश हित करो प्रतिक्रमण करना प्रत्याख्यान प्रधान॥

अगर जगत में सुख होता तो तीर्थंकर क्यों इसको तजते।
पुण्यों का आनंद छोडकर निज स्वभाव चेतन क्यों भजते॥

मुद्राकायोत्सर्ग धारकर शुद्धआत्म भावना करो ।
इस प्रकार सामायिक करके रागद्वेष परिणाम हरो ॥
यह षट आवश्यक का भेद महान श्रेष्ठ कल्याणमयी ।
भावो को उज्ज्वल करता है देता पद निर्वाणमयी ॥
यदि ससार जयी बनना है तो सामायिक नित्य करो ।
उत्तम मध्यम जघन्य करके कर्म कलुष सपूर्ण हरो ॥
धन में भी आसक्ति घटाओ सीमित करो परिग्रहआप ।
धर्ममार्ग उत्कृष्ट प्राप्त कर हरो सकल जग का संताप॥
तज विषयानुराग निर्वांछक होने का ही करो प्रयास ।
आत्म प्रभाव प्रकट कर अपना सफल करो रत्नत्रय वास॥
शुद्ध आचरण से ही होती है प्रभावना सुखदायी ।
बाह्य आचरण यदि अशुद्ध है तो प्रभावना दुखदायी ॥
सबके प्रति वात्सल्य भाव हो गौ बछडे जैसी हो प्रीत।
धर्म मार्ग से डिगने वाले को तुम सुथिर करो बन मीत॥
बाह्य धर्म पालन अशुद्ध है तो फिर आत्म धर्म कैसा ।
क्यों अपयश की वृद्धि कर रहा अन्तर्मन निर्मल कैसा॥
यदि व्यवहार धर्म सम्यक हो तो फिर उत्तम निश्चय धर्म।
बिन निश्चय के यह व्यवहार धर्म भी होता केवल कर्म॥
ज्ञानी को अपने स्वभाव का ही सदैव अवलबन है ।
ध्रौव्य त्रिकाली लक्ष्य हृदय में है समभावी जीवन है ॥
बंध मोक्ष या शत्रुमित्र या कचन कॉच समान जिसे ।
लाभ अलाभ समान जानता साम्य भाव है पूर्ण जिसे ॥
नहीं किसी अतिशय से होता कभी प्रभावित क्षणभर भी।
मत्र तत्र ऋद्धियॉ सिद्धियॉ इसे न भातीं पलभर भी ॥

अपने स्वरूप में रहता तो यह प्राणी परमेश्वर होता ।
ज्ञायक स्वभाव के आश्रय से यह जीव स्वभावेश्वर होता॥

यह तो आत्म ध्यान मे रत है मुक्ति पथिक अतिपावन है।
इसका जीवन ही जीवन है जो सबको मन भावन है ॥

छन्द-हरिगीत

समयसार सु कलश पूजन युत किया है यह विधान ।
आत्म हित की बात समझी हो गया निज आत्म भान ॥
पूर्वरग प्रधान द्वारा मार्ग जिन प्रभो।
रग भव का नष्ट कर के शरण मे आया विभो ॥
जीव और अजीव को मैने अभी जाना प्रभो ।
मै त्रिकाली जीव ध्रुव हूँ आज ही माना विभो ॥
प्रभो कर्त्ता कर्म का अधिकार वस्तु स्वरूप है ।
नही है कर्तृत्व पर का अकर्तृत्व स्वरूप है ॥
पुण्य पाप अधिकार पढकर भय हुआ ससार से ।
इसे क्षय कर मै जुडूगा आत्म सौख्य अपार से ॥
आस्रव अधिकार पढ शुभ अशुभ का जाना स्वरूप ।
शुद्धभाव बिना नही है आत्मा का शुद्धरूप॥
अधिकार सवर जानकर मै हो गया सवर स्वरूप ।
आस्रव से रहित हूँ मैं सर्वथा चैतन्यरूप ॥
निर्जरा अधिकार समझा मन प्रसन्न हुआ महान ।
पाऊँगा मै है सुनिश्चित बध हीन दशा प्रधान ॥
मोक्ष का अधिकार ही अधिकार मेरा है प्रभो ।
शुद्ध मोक्ष महान पाऊ भावना जागी विभो ॥
सर्वज्ञान विशुद्धि पाकर ज्ञानमय हो जाऊँगा ।
पूर्ण शुद्ध विशुद्ध चिन्मय त्वरित ही हो जाऊंगा ॥
समझकर परिशिष्ट अंतिम शिष्ट मैं बन जाऊंगा ।
भव अनिष्ट विनाश करके इष्ट पद निज पाऊंगा ॥

पाप पुण्य तज जो निजात्मा को ध्याता है ।
वही जीव परिपूर्ण मोक्ष सुख विलसाता है ॥

समयसार सुकलश पूजन हो गई है भाव से ।
मात्र फल यह चाहता हूँ जुड़ूँ आत्म स्वभाव से ॥
कुन्दकुन्द महान श्री आचार्य को वन्दन करूँ ।
विनय से आचार्य बल पा समयसार कलश भरूँ ॥
आत्म अनुभव स्वरस पीकर सर्व भव बधन हरूँ ।
ज्ञान बल से परावर्त्तन पंच के क्रन्दन हरूँ ॥
समयसार कलश विधान विशेष यह पूरा हुआ ।
ज्ञान जागा निजतर मे आत्मा निर्मल हुआ ॥
सभी का कल्याण हो प्रभु भावना यह है महान ।
मुक्तिपथ का विधाता यह समयसार कलश विधान ॥

ॐ ह्री समयसार कलश शास्त्राय महाजयमाला पूर्णार्घ्यं नि ।

आशीर्वाद

समयसार निजकलश का पूरा हुआ विधान ।
समयसार निज प्राप्त हो दो स्वामी वरदान ॥
कुन्दकुन्द आचार्य की कृपा मुझे हो प्राप्त ।
अमृतचद्राचार्य का कथन रहे उरव्याप्त ॥

इत्याशीर्वाद :

जाप्यमंत्र- ॐ ह्रीं श्री स्व समयसाराय नमः

शान्ति पाठ

दोहा

अखिल विश्व मे शान्ति हो सुखी रहें सब जीव ।
परम सौख्य की प्राप्ति हो दुख हो नहीं कदीव ॥
ज्ञानभाव रस कलश पा जएगें ज्ञानानद ।
भेदज्ञान की कृपा से मिट जाएं भवद्वंद ॥

जिय कब तक उलझेगा ससार विजल्पों में ।
कितने भव बीत चुके सकल्प विकल्पो में ॥

ईतिमीति या युद्ध का कही न हो प्रभुनाम ।
प्राणिमात्र निजबुद्धि से पाए शिवसुख धाम ॥
सदाचरण से सब रहे करे न कुछ उत्पात ।
श्री जिन धर्म प्रताप से पाए ज्ञान प्रभात ॥
परमशान्ति हो हे प्रभो हो समृद्ध यह देश ।
पूर्ण शान्ति की प्राप्ति का पूरा हो उद्देश ॥

ॐ शान्ति पुष्पांजलि क्षिपामि

नौ बार णमोकार मत्र का जाप्य करें ।

क्षमापना

दोहा

भूलचूक कर दो क्षमा दो प्रभु ज्ञान महान ।
बोधिलाभ हो हे प्रभो करे आत्मकल्याण ॥
इस विधान का फल मिले हे सर्वज्ञ जिनेश ।
आत्मज्ञान की प्राप्ति हो यही एक उद्देश ॥

पुष्पाजलि क्षिपामि

शुद्ध स्वरूपाचरण प्राप्ति का ही पुरुषार्थ महान है ।
यह सम्यक्त्व शक्ति से भूषित रत्नत्रय का यान है ॥
एक मात्र इससे ही होता मुक्ति मार्ग प्रारंभ है ।
यही मुक्ति का द्वार खोलता जो अनादि स बंद है ॥
इसको जो हृदयंगत करता पाता मुक्ति विहान है ।
शुद्ध स्वरूपाचरण प्राप्ति का ही पुरुषार्थ महान है ॥

पर्यायों के भवर जाल में उलझा स्वंय दुख पाता है ।
निज स्वरूप से सदा अपरिचित रह भव कष्ट उठाता है॥

ॐ

जीवन दायी श्री पवैया जी

विलक्षण स्मरण शक्ति के धनी, शुद्ध खादी से शोभित सावला रग प्रसन्न मुद्रा लिये चालीस से अधिक महत्वपूर्ण विधान ढाई सौ से अधिक पूजन एव दस हजार से अधिक आध्यत्मिक गीतो के रचयिता देखने में एक दम सीधे सादे व्यक्ति हैं। देख कर विश्बास ही नही होता कि हम किसी महाकवि के सामने खड़े हैं । मृदु स्वाभावी हसमुख सदैव प्रसन्नता से सज्जित रहते हैं। आर्थिक स्थिति से मध्यम वर्गीय होते हुए भी अपने को परम सुखी मानते हैं। व्यापार आदि से मुक्त है। भाग्यशाली हैं अपनी चौथी पीढी के बच्चो के साथ मनोरजन करते हैं । पढना लिखना यही एक कार्य शेष है इनके पास जब जी चाहता है पढ लेते हैं जब जी चाहता है लिख लेते हैं। सन् १९३२ से लिखते आ रहे हैं । सन् १९३४ में भगवान महावीर पुस्तक छपी और भी भी अनेक पुस्तके छपी। समाचार पत्रों मे भी छपते रहते हैं। अपना फोटो नहीं छपने देते हैं। कर्त्तापन तो है ही नहीं पूरे लेखन को आचार्यों की देन मानते है, अनेक सस्थाओं से सबधित है। विविध पदो पर है। सन् १९६२ - ६३ में भारत चीन युद्ध के समय वीररस पूर्ण काव्य सग्रह जीवनदान छपा जिससे आपको अखिल भारतीय ख्याति मिली। राजनीति से बचपन से ही सबध रहा है। उस क्षेत्र मे भी उल्लेखनीय कार्य किया, आज भी काग्रेस के कर्मठ सदस्य है। मध्य प्रदेश स्वतंत्रता सग्राम सैनिक सध के कई वर्षों से सरक्षक हैं। लिखने का अभिमान भी नहीं छू पाया। इसलिये इतना अधिक लिख सके है । शिक्षा विशेष नहीं है। मात्र सातवीं कक्षा से स्कूल छोडा और शीघ्र ही विवाह बधन में बध गये। व्यापार अपने पिताजी के साथ करते रहे। मालदार इतने है कि बहु धंधी होते हुए भी अपना घर का मकान भी नहीं बनवा सके। आज भी किराये के मकान मे मस्त होकर रहते हैं। कोई खेद नहीं है, लाखों कमाए लाखों गवाए पास कुछ नहीं रहा भारत भर का आपने भ्रमण किया है प्राय सभी तीर्थो का अपनी सहयोगिनी के साथ भ्रमण किया है। पत्नी श्री तारादेवी

द्वारा जयपुर मे प्रथम इन्द्रध्वज विधान के कलश की स्थापना कराके उसे अन्तिम विदाई जयपुर मे ही दे दी । कोई शोक नहीं धीरज साहस से भोपाल आए और उनकी स्मृति मे ग्रथमाला की स्थापना की अनेको विधान प्रकाशित कर सस्था को अमत्व प्रदान किया। समाज के सभी वर्गो का सहयोग प्राप्त है। आपकी दो पुत्रिया एव एक पौत्री है जो समृद्ध परिवार मे है । अपने एकमात्र सुपुत्र भरत कुमार एम काम एल एल बी है। जो पूरा सहयोग देते रहते हैं। पुत्रवधू एव पौत्र वधू आपकी सुख सुविधा का पूरा ध्यान रखती हैं। दोनो पौत्र चि उपेन्द्र और चि नगेन्द्र सेवा करते रहते है।

लिखना आपके बाए हाथ का खेल है। आप कहते है कि मुझे लिखने में अल्प भी शारीरिक या मानसिक श्रम नही करना पडता अपितु ऊर्जा प्राप्त होती है । कोई अदृश्य शक्ति लिखती है मै नही लिखता हू। ८० वर्ष की आयु मे भी सदाबहार है। व्रतियो के प्रति आस्था है, कितु शोधियो से घबराते हैं। लिखने पढने के अतिरिक्त कोई शौक नही है नाम भी नही चाहते आप अपने ऊपर सर्वाधिक प्रभाव अपनी जननी फूलाबाईजी एव जनक श्रीपाल जी के बाद अपनी पत्नी का ही मानते है । जिसने आपको बारह वर्ष के कठिन श्रम के बाद धर्म मार्ग पर लगाया ।

दूसरा प्रभाव पूज्य कानजी स्वामी का है जिन्होने इनकी दृष्टि बदली एव उत्साह प्रदान किया। पूज्य स्वामी जी ने इनकी पाच पुस्तिकाओ का विमोचन भी किया हिन्दी अपूर्व अवसर पर स्वामी जी फिदा थे। पंच कल्याणको मे तप कल्याणक पर वे इसी का पाठ करते थे।

तीसरा प्रभाव आप पर आचार्य कुन्द कुन्द का है। अपना लेखन आचार्य कुन्द कुन्द का ही प्रताप मानते हैं। आज तक सब मिलाकर सौ से अधिक पुस्तके लिख चुके हैं। जिसमें से ८० से अधिक प्रकाशित हो चुकी हैं। शेष भी शीघ्र प्रकाशित करना चाहते हैं। भारत भर में समाज आपका सम्मान करती रहती है। श्रवणवेल गोल, धर्म स्थल, देवलाली, इन्दौर, भोपाल, अजमेर, मुरार, भिण्ड, गुना, विदिशा

तत्वों के सम्यक् निर्णय का यह स्वर्णिम अवसर आया है ।
संसार दुखो का सागर है दिन दो दिन नश्वर काया है॥

बीना, सोनागिर रतलाम आदि में आपका विशेष सम्मान हुआ है आर्थिक भेट भी मिली है। भेट की राशि ग्रथमाला को दे देते हैं। जयपुर टोडरमल स्मारक से भी आपकी अनेक पुस्तके छपी है। षट्खडागम, कसाय पाहुड, पच परमागम आदि आगमग्रथो पर आपने अनेक विधान लिखे हैं।

देश के चोटी के नेताओ एवं प्रतिष्ठित साहित्यकारों से आपके मधुर संबंध रहे हैं। हजारों पुस्तकें आपने पढी है, विचारधारा क्रान्तिकारी एव सुधारवादी है रूढियो के कट्टर विरोधी हैं। वीतरागता के दास हैं। बेफ्रिक इतने हैं कि चिन्ता पास आने से कतराती है। सब प्रंकार से निश्चिन्त हैं आज भी लिखने मे सलग्न है। आपने अपने मरण के बाद अपनी देह को मेडिकल कॉलेज को दान देने की इच्छा व्यक्त की है। इस प्रकार आपने अपना जीवन दान ही दे दिया है। मै आपको बधाई देता हुआ आपके दीर्घ जीवी होने की कामना करता हू। उनका यह विधान अन्य विधानों की भाति सबको मगलमय हो यही कामना है ।

इत्यलम् ।

१५/६/९६

डॉ कपूर चंद्र जैन 'कौशल'
सी - ७० कोहेफिजा भोपाल

लोकाकाश प्रमाण असख्य प्रदेशी जीव त्रिकाली है ।
जो ऐसा मानता जीव वह अनुपम वैभवशाली है ॥

पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणासी के मुख पत्र श्रमण का अभिमत

डॉ. बशिष्ठनारायण सिन्हा

श्री परमात्म प्रकाश विधान के रचयिता श्री राजमल पवैया है। उन्होने जैन दर्शन से सम्बन्धित एक सौ से भी अधिक पुस्तके लिखी है। परमात्म प्रकाश विधान का मूल रूप ग्रन्थ परमात्म प्रकाश के नाम से जाना जाता है। इसकी रचना आचार्य योगीम्दु देव ने की थी जब उनके शिष्य मुनि श्री प्रभाकर भट्ट ने परमात्म तत्त्व को विवेचित करने के लिए कहा था। अब तक की उपलब्ध अपभ्रश रचनाओ मे इसे सबसे प्राचीन माना जाता है। ग्रन्थ तीन अधिकारो मे विभाजित है। प्रथम अधिकार मे बहिरात्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्मा को विश्लेषित किया गया है तथा दूसरे और तीसरे अध्यायो मे मोक्ष, मोक्ष--फल और मोक्षमार्ग का विवेचन है। राजमल पवैया ने परमात्म प्रकाश को हिन्दी मे छन्दबद्ध करके प्रस्तुत किया है-

" मिथ्यात्वी रागादि रूप परिणत बहिरात्मा ।
वीतराग भावो से परिणत अतरात्मा ॥
भाव द्रव्य नो कर्मो से विरहित परमात्मा ।
देहमान जो मूढ वही प्राणी बहिरात्मा॥"

तत्त्वमीमासी समस्याओ के समाधानो को सरल एव सुरुचिपूर्ण भाषा मे प्रस्तुत करके पवैया जी ने सामान्य पाठको का बडा ही उपकार किया है। इससे विद्वानो को समुचित लाभ होगा। पुस्तक के प्रारम्भ मे पूजनविधि का विवेचन भी बहुत उपयोगी है। इसके लिए श्री पवैया जी को बधाई है। इसके प्रकाशक का प्रयास भी सराहनीय है। पुस्तक की छपाई साफ सुथरी है इससे सामान्य एव विद्वान पाठक दोनों ही लाभान्वित होंगे और इसका स्वागत करेंगे।

पाप पुण्य का फल बधन है शुद्ध भाव से होता मुक्त ।
शुद्ध भाव से जो सुदूर है वही जीव पर से सयुक्त ॥

जीवंत अक्षर पुरुष पवैया

समग्र जैन समाज के सर्वोत्तम मासिक पत्र तीर्थंकर का अभितम 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश' का काव्य-संस्करण

श्री पवैया अब सिर्फ नाम नहीं हैं, वरन् जीवन्त अक्षर-पुरुष हैं। उन्होंने जैन पूजा-परम्परा को एक नया रचनात्मक, स्वच्छ और स्वस्थ मोड दिया है। जो कर्मकाण्ड किन्हीं कारणों से अध्यात्म-शून्य हुआ था, विद्वान् रचनाकार ने उसमे चिन्तन के प्राण फूँके हैं और उसे सीधी-सरल भाषा-शैली मे आम श्रावक तक पहुँचाया है। उन्होंने दिगम्बर जैन वाड्मय से चुन-चुन कर शीर्ष सिद्धान्त-ग्रन्थों को विधान का रूप प्रदान किया है, जो किसी भी आराधक को कृतकृत्य कर सकता है। पवैयाजी अब तक 37 विधान लिख चुके हैं, आलोच्य विधान उनका अडतीसवॉ विधान है। उनका अगला पडाव 'गोम्मटसार' है। वे रससिद्ध कवि हैं। उन्हे परम्परा को अपरम्परित करने मे जो आनद आता है, वह अप्रतिम है, अनुकरणीय है । प्रस्तुत विधान में श्री पवैया जी ने आचार्य धरसेन को सरल भाषा मे सपूर्णतया के साथ पेश किया है। संक्षेप में, हम उनके सम्पूर्ण विधान-साहित्य को 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष' का पद्य-सस्करण निरूपित करेंगे ।

-डॉ. नेमिचंद जैन संपादक तीर्थंकर

निन्दा करने वाले का उपकार मानता समभावी ।
निज में सावधान रहता है होता कभी न भव भावी ॥

मोह का तूफाने आतिश

मोह का तूफाने आतिश कर रहा खाना ख़राब ।
इल्म का तूफान ला बेबाक कर इसका हिसाब ॥
जिस अंधेरे में उजाले का गुमां करता है तू ।
उस अंधरे को मिटा दे तोड़ कर सारा हिजाब ॥
ख्वाहिशें पूरी न होंगी आखिरी दम तक तेरी ।
रूह की ताकत से अब तू इनको कर दे बेनकाब ॥
अपने आईने मे ही अपने खुदा को देख ले ।
फिर नजर आएँगी तुझको यार खुशियाँ बेहिसाब ॥
रगे गुल महफिल मिटा दे जो नहीं तेरी कभी ।
अपनी महफिल को जमा ले और बन जा माहेताब ॥
रही है नफरत तुझे अपनी खुदी से आज तक ।
इस खुदी में ही छुपा है रूहे मुत्लक आफताब ॥

स्वभावों की दुनियां में

स्वभावो की दुनिया मे रहता चलाचल ।
विभावो की दुनिया से बचकर चलाचल ॥
तेरा आत्मा पर से है भिन्न पूरा ।
निजातम की महिमा के बल से चलाचल ॥
कही कोई परभाव इसमे नही है ।
अनंतों गुणो के ही संग मे चलाचल ॥
तेरी शक्ति सर्वोच्च महिमा मयी है ।
इसी शक्ति से मुक्ति पथ पर चलाचल ॥
चलाचल चलाचल तू निज मोक्ष तीरे ।
तू रागों की दुनियां को छलता चलाचल ॥
शपथ तुझको है अपने शुद्धात्मा की ।
जरा देर मत कर चलाचल चलाचल ॥

ज्ञानमयी वैराग्य भाव उपयुक्त हो गया उसी समय ।
द्रव्य दृष्टि से सदा शुद्ध निज भाव हो गया उसी समय ॥

वज्र गिरे गिरा करे

वज्र गिरे गिरा करे आग लगे लगाकरे ।
कितनी भी हो प्रतिकूलता समता स्व रस पिया करे ॥
इष्टका यदि वियोग से तन में असाध्यरोग हो ।
आँधी हो या तूफान हो चिन्ता नहीं किया करे ॥
जीव अजीव आस्रव बंध का रूप जान ले ।
जो नहीं जानता स्वभाव बंध अभाव क्या करे ॥
संवर निर्जरा समझ मुक्ति का जो उपाय है ।
साधन स्वभाव के बिना मोक्ष स्वरूप क्या करे ॥
द्रव्य स्वतंत्र एक एक गुण स्वतंत्र एक एक ।
पर्यायें क्रम बद्ध हैं निश्चय यही किया करे ॥
तत्त्व पदार्थ द्रव्य का ज्यों का त्यों श्रद्धान कर ।
वस्तु स्वभाव जानकर तत्त्व मनन किया करे ॥
लाभ अलाभ मान अमान जन्म मरण कि यश अयश ।
तेरे नहीं अधीन हैं काहे दुखी जिया करे ॥
सकटो में धैर्य धर पहाड़ भी गिरे अगर ।
होनी तो होनहार है विवेक यह हिया करे ॥
विषय कषाय छोड़ दे शल्य को तू मरोड़ दे ।
मोह की पाश तोड़ दे राग को मत छिया करे ॥
अष्टकरम का काफिला अनादि से पलापला ।
ज्ञान की ज्योति ले जला कर्म का क्षय किया करे ॥
वस्तु स्वरूप की समझ जीवन में एक बार हो ।
सादि अनंत हो सुखी नित्यानंद लिया करे ॥

समता स्वरस पिया करे

जीव तत्त्व का आलबन सवर निर्जरा मोक्ष हित रूप ।
है आलबन अजीव तत्त्व का आस्रव बध अहित दुख रूप ॥

इन्सान की नजरों में

इन्सान की नज़रों में इन्सान ही दुश्मन है ।
ये कैसा जमाना है आपस में ही अनबन है ॥
किस पर करें भरोसा क्या इत्मनान लाएं ।
ऊपर से जो रहबर है अंदर से वह दुश्मन है ॥
ये कैसा गजब ढाया इन बदगुमानियों ने ।
खण्डहर बने महल हैं बरबाद नशेमन है ॥
ये जिन्दगी सुकू से चलने नहीं पाती है ।
जो भी है परेशां है जो भी है पशेमन है ॥
आपस में हो मुहब्बत सबसे हो भाईचारा ।
हो दिल में दर्द फिर क्यों जब अपना खुशवतन है ॥
जो जानता न खुद को वह गैर को क्या जाने ।
खुद की खुदी से खुद ही जब तक जला वतन है ॥
जो खुद के उसूलों पर कुरबान हो गया हो ।
उससे जहाँ रोशन है गुलजार ये चमन है ॥

ज्ञानादिक गुण संपदा

ज्ञानादिक गुण संपदा तुझमे भरी अपार ।
एक बार तो सजग हो अपना रूप निहार ॥
स्याद्वाद की शक्ति है सत्ता है निज रूप ।
पुण्य पाप से रहित है निर्मल शुद्ध स्वरूप ॥
अजर अमर अविकल्प हूँ कोई नहीं विकल्प ।
संकल्पों से रहित हूं है न कहीं भी जल्प ॥
परम अतीन्द्रिय सौख्य का तू ही महा निधान ।
मुक्त स्वरूप सदैव है तू अनंत गुणवान ॥